कलाकार कौशिक........

ज़मींदार थे; उन्होंने किसान के व्यक्तित्व को निकट से देखा। वे नगर में अच्छी-खासी जायदाद के मालिक थे, अतएव किरायेदारों के संपर्क में जीवन भर रहे। वे समाज-सुधारक थे, अतएव नगर की संस्थाओं से उनका गहरा संबंध था। वे लोकप्रिय थे अतएव मित्रों का उन्हें अभाव न था। वे कट्टर हिन्दू होते हुए भी राष्ट्रपिता की आवश्यकता का महत्व जानते थे, अतएव हिन्दू-मुसलिम समस्या का उन्होंने गहरा अध्ययन किया। वे मानव-धर्म के अनुयायी थे, अतएव जीवन की कोमलताओं से परिचित थे।

'कल्लोल' की कहानियाँ इन्हीं अनुभूतियों का निचोड़ है। इन कहानियों में आप पायेंगे ज़मींदार-किसान समस्या, नागरिकता-संबंधी उलझनों का हल, संस्थाओं की अकर्मण्यता का परिहास, मैत्री-संबंधी घात प्रतिघात तथा हिन्दू-मुसलिम ऐक्य के साधन। 'कल्लोल' उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानियों का संग्रह।



(१५ कहानियों का संग्रह)

लेखक :—

स्व० पं० विशम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक'

प्रकाशक :—

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा.

प्रथमबार | जुलाई १९४९ | मूल्य ३)

प्रकाशक—
विनोद पुस्तक मन्दिर,
हास्पिटल रोड,
आगरा।

मुद्रक
दयाल प्रेस, आगरा।

विषय-सूची

विनो

कर्तव्य-बल

जबसे हशमत अली खाँ मुकुन्दपुर नामक क़स्बे के थानेदार होकर आये तब से क़स्बे पर एक आतंक सा छा गया। क्या बदमाश और क्या भले आदमी सब उसके नाम से काँपते थे। हशमत अली खाँ दीर्घकाय हृष्ट पुष्ट तथा बलवान आदमी था। उसका सिर यथेष्ट बड़ा था-आंखें भी बड़ी बड़ी तथा रक्तवर्ण थीं। घनी काली दाढ़ी जो प्रत्येक समय चढ़ी रहती थी, उसके मुखको सिंह के मुखकी भांति रोबीला तथा भयानक बनाये रहती थी। बड़े बड़े हेकड़ बदमाश भी उसके सामने पहुंच कर भीगी बिल्ली बन जाते थे। जिस समय वह घोड़े पर चढ़ कर निकलता था, उस समय किसी का यह साहस न होता था कि, उससे एक क्षण के लिए भी आंखें चार करे। उसका रोब दबदबा प्रायः प्रत्येक आदमी को उसके सन्मुख नतमस्तक कर देता था।

संध्या का समय था। हशमत अली खाँ नियमानुसार रौंद के लिए निकला। घूमते घूमते वह एक स्थान पर पहुंचा जहाँ

एक छोटे से मकान के सामने एक खद्दरधारी व्यक्ति दो तीन आदमियों सहित बैठा हुआ था। मकान के सामने एक छोटा सा चबूतरा बना हुआ था। इस चबूतरे पर एक कुर्सी तथा दो तीन मोढ़े पड़े हुए थे, इन्हीं पर सब लोग बैठे थे। जिस समय थानेदार उधर से निकला तो अन्य लोगों ने उसे झुक झुक कर सलाम किया, परन्तु खद्दरधारी व्यक्ति निश्चल बैठा रहा। इशमत अली ने उसे ध्यान-पूर्वक देखा। खद्दरधारी व्यक्ति ने उसे सलाम नहीं किया, यह बात उसे बहुत बुरी लगी। अपनी शक्ति तथा प्रभुता और खद्दरधारी की अशक्तता तथा अकिञ्चनता का ध्यान करके वह खद्दरधारी की इस धृष्टता पर मुस्कराया उसे खद्दरधारी व्यक्ति की धृष्टता वैसे ही प्रतीत हुई जैसी कि सिंह के सामने शृगाल की। कुछ आगे बढ़ कर उसने एक दूकान के सामने घोड़ा रोका और दूकानदार से पूछा—यह पीछे जो खद्दरपोश आदमी बैठा है—यह कौन है ? दूकानदार उसकी ओर देख कर बोला—सरकार, यह ब्राह्मण हैं—चन्द्रशेखर इनका नाम है।

थानेदार—पेशा क्या करते हैं ?

दूकानदार—पेशा तो कुछ नहीं करते हैं—कुछ थोड़ी ज़मीन है और कुछ लेन देन करते हैं—बस।

थानेदार—कांग्रेस के आदमी हैं ?

दूकानदार—यह तो मुझे पता नहीं। खद्दर पहनते हैं-बस। और कभी कोई बात देखी-सुनी नहीं। वैसे आदमी बहुत भले हैं—किसी के लेने देने में नहीं हैं।

थानेदार केवल "हूँ" कहकर चुप होगया और आगे बढ़ गया। चन्द्रशेखर ने उसे सलाम नहीं किया, इसका ध्यान उसे सो जाने के समय तक बना रहा। इस बात पर कभी उसे हँसी आती थी और कभी क्रोध।

दूसरे दिन, वह पुनः उधर से निकला। चन्द्रशेखर आज अकेले ही अपने द्वार पर बैठे थे। इशामत अली उनकी ओर देखता हुआ निकल गया। चन्द्रशेखर ने भी एक बार उसकी ओर देखा, परन्तु सलाम नहीं किया।

आज इशामतअलीको उनकी इस हरकत पर हँसी नहीं आई। उसने आज अपना अपमान अनुभव किया, अतएव उसे आया केवल क्रोध।

तीसरे दिन थानेदारसाहब पुनः उसी ओर से निकले। आज वह अपना घोड़ा चन्द्रशेखर के द्वार पर ले गये। चन्द्रशेखर जैसे बैठे थे, वैसे ही बैठे रहे। इशामतअली ने चबूतरे के पास घोड़ा रोक कर चन्द्रशेखर से पूछा—क्यों साहब यहाँ कोई रामप्रसाद रहते हैं?

चन्द्रशेखरने बैठे ही बैठे उत्तर दिया—यहाँ तो इस नाम का कोई आदमी नहीं रहता।

इशामतअलीखाँ ने एक बेर उन्हें सिर से पैर तक देखा और इस क्रिया को करते हुए उसने चन्द्रशेखर पर अपना आतङ्क जमाने के लिए अपनी सारी आत्मशक्ति लगा दी, पर चन्द्रशेखर पर उसका कोई प्रभाव न पड़ा—वह उसी प्रकार निश्चल बैठे रहे।

इशामतअली ने व्यङ्ग के साथ मुँह बना कर कहा—मुआफ़ कीजिएगा, आपको फ़िजूल तकलीफ़ हुई!

चन्द्रशेखर लापरवाही से हाथ पर तमाखू मलते हुए बोले—कोई हर्ज नहीं, इसमें तकलीफ़ की कौन बात है।

यह कह कर उन्होंने हथेली पर की तमाखू पर फटाफट दो तीन हाथ मारे और तमाखू फाँक कर दो तीन बार मुँह चलाया और घोड़े के पैरों के पास थोड़ी सी पीक थूक दी।

इशामत अली चुपचाप उनका यह कृत्य देखता रहा।

पीक थूक कर चन्द्रशेखर ने पूछा—और कुछ पूछना है?

इशामत अली खाँ जैसे नींद से जागा—उसने कहा—"जी नहीं।" यह कह कर वह आगे बढ़ा। आज उसके क्रोध का वारापार नहीं—वह मन ही मन इस अपमान से क्रोधान्मत्त हो उठा। उसने सोचा—"इस मामूली आदमी की यह जुरअत? इससे अगर अपने कदमों पर नाक न रगड़वाई तो इशामत अली खाँ नाम नहीं।"

(२)

सन्ध्या के समय नियमानुसार पं० चन्द्रशेखर अपने चबूतरे पर बैठे हुए थे। उनके पास उनके दो मित्र बैठे हुए उनसे वार्त्तालाप कर रहे थे। थोड़ी देर में एक सज्जन और आ गये। वह भी वार्त्तालाप में सम्मिलित हो गये। थोड़ी देर पश्चात् हठात् वे बोल उठे—पंडित जी, यह नया थानेदार आप पर बहुत रुष्ठ है?

पं० चन्द्रशेखर ने लापरवाही से पूछा—मुझ पर रुष्ठ है?

"हाँ।"

"क्यों?"

"यह तो मैं ठीक तरह से नहीं जानता। आज मैं लाला माधोलाल से मिलने गया था, उन्हीं से मुझे मालूम हुआ।"

"वह क्या कहते थे?" चन्द्रशेखर ने कुछ मुस्करा कर पूछा।

"यही कहते थे कि 'थानेदार साहब पं० चन्द्रशेखर पर नाराज़ हैं।' लाला माधोलाल से थानेदार कहता था कि 'आपके क़सबे में कोई पंडित चन्द्रशेखर हैं, वह बहुत ही बदमाश आदमी है।' लाला साहब मुझसे पूछते थे कि चन्द्रशेखर ने थानेदार को क्यों और कैसे नाराज़ कर दिया। मैंने कहा—मुझे तो मालूम नहीं—आज पूछूँगा।"

चन्द्रशेखर हँस पड़े। हँस कर बोले—और वो मैंने उनका कुछ बिगाड़ा नहीं—हाँ, मैं उनकी सेवा में कभी उपस्थित नहीं

हुआ, और जब इधर से निकलते हैं तो सलाम-वलाम कुछ नहीं करता, कदाचित् इसीसे वह नाराज़ हो गये हों।

वह व्यक्ति बोला—ख़ैर उसकी सेवा में उपस्थित होने की तो कोई ऐसी बड़ी आवश्यकता नहीं, पर इधर से निकला करें तो कम से कम सलाम तो कर लिया कीजिये।

चन्द्रशेखर ने मुस्करा कर पूछा—"क्यों?"

"शहर का हाकिम है, न जाने कब कैसा समय आ पड़े, इसलिए इतनी छोटी सी बात के लिए उसे अपना दुश्मन बना लेना ठीक नहीं—(अन्य लोगों से) क्यों साहब झूठ कहता हूँ।"

अन्य लोग बोले—नहीं, यह बात तो सोलहो आने ठीक है। सलाम करने में अपना क्या बिगड़ता है?

चन्द्रशेखर बोले—क्यों, सलाम क्यों करूँ?

"क्यों का तो कोई उत्तर नहीं है। आपका कोई हर्ज तो हो नहीं जायगा।"

चन्द्रशेखर ने कहा—भाई, मैं केवल इसलिए कि वह हाकिम है, हमारा अनिष्ट कर सकता है, उससे डर-दब कर तो सलाम कर नहीं सकता, इसे मैं महा बोदापन तथा कायरता समझता हूँ। वैसे सलाम करने की कोई आवश्यकता नहीं। मेरा उनका परिचय नहीं जान-पहचान नहीं। यदि परिचय होता तो मैं सलाम कर सकता था। एक महाशय हँस कर बोले—तो क्या आप यह नहीं जानते कि वह यहां का थानेदार है?

चन्द्रशेखर—जानता क्यों नहीं?

"तो फिर और कैसा परिचय होना चाहिए?"

चन्द्रशेखर—केवल इसीका नाम परिचय नहीं। यों तो मैं जानता हूँ कि हमारे क़स्बे में लाला माधोलाल बड़े रईस आदमी हैं, लाला बाँकेलाल बड़े धनी आदमी हैं—इन सबको जानता हूँ। केवल जानना मात्र परिचय नहीं कहला सकता। परिचय के

अर्थ यह है कि मैं कभी उससे मिला होता—उसने मुझसे मेरा हाल-चाल पूछा होता–हम दोनों ने परस्पर कुछ बातें की होतीं–कुछ मित्र भाव उत्पन्न हुआ होता–खाली जानने से परिचय थोड़ा ही होता है।

"आप कभी उनके पास गये होते तो वैसा परिचय भी हो जाता।"

"तो महाशय, न तो मैं रईस हूँ जो उसकी खुशामद करूँ और न बदमाश हूँ जो उससे डरूँ।"

"परन्तु वह तो आप को बदमाश समझता है।"

"समझने दो–उसके समझने से होता क्या है। जब कभी साबिका पड़ेगा तो उसे मालूम हो जायगा कि, मैं बदमाश हूँ या भलामानस।

"तो आप उसका कर क्या लेंगे? बड़े बड़े नामी बदमाश तो उसका बाल नहीं बाँका कर सके—आप काहे में हैं।"

चन्द्रशेखर ने कहा—"और यह तो मैं कहता नहीं कि, उसका कुछ कर लूंगा; पर इतना मैं अवश्य कह सकता हूँ कि जब शरीफ आदमी त्रस्त होकर अपनी शराफत छोड़ने पर विवश हो जाता है तो वह बड़े से बड़े बदमाश से भी अधिक खतरनाक हो जाता है।

इस पर सब लोग मुस्करा कर चुप हो गये।

(३)

उपर्युक्त घटना के दो महीने पश्चात् मुकुन्दपुर में हिन्दू-मुसलिम दंगा हो गया। यह दंगा दो रोज़ तक रहा। दो दिन पश्चात् जब स्थिति सँभल गई तो गिरफ्तारियाँ आरम्भ हुईं। गिरफ्तारी के लिए हशमत अली ने पहला आदमी जो चुना वह पं० चन्द्रशेखर थे। हशमत अली ने सोचा—"चन्द्रशेखर को फाँसने का यह बड़ा अच्छा अवसर है।" अतएव वह दो तीन कान्सटेबिलों

को साथ लेकर चन्द्रशेखर के मकान पर पहुंचा। चन्द्रशेखर उस समय भोजन कर के आराम कर रहे थे। उन्हें सूचना मिली कि, द्वार पर पुलीस आई है तो वह उठ कर बाहर आये। इशामत अली उन्हें देख कर किञ्चित् मुस्कराया। उसने उनसे पूछा—चन्द्रशेखर आप ही का नाम है।

चन्द्रशेखर ने कहा—हाँ, मेरा ही नाम है—कहिये!

"मुझे इस बात के सुबूत मिले हैं कि दंगे में आपका भी हाथ था।"

चन्द्रशेखर ने बड़ी निर्भीकता से उत्तर दिया—सुना होगा। मेरे किसी दुश्मन ने कहा होगा—मैं तो दंगे के पास भी नहीं फटका, बल्कि मैं तो दंगे को रोकने की चेष्टा करता रहा। यह बात आप इस मुहल्ले में चाहे जिससे पूछ लीजिए।

इशामत अली चन्द्रशेखर की निर्भीकता से किञ्चित् अप्रतिभ होकर बोला—आप जैसे हैं, वह मुझे मालूम है और आपने दंगे में जितना हिस्सा लिया वह भी मुझे मालूम है।

"जब आपको मालूम है और ठीक मालूम है तो आपने यहाँ तक आने की तकलीफ़ फ़िज़ूल की।"

मैंने फ़िज़ूल तकलीफ़ नहीं की, मैं तुम्हें गिरफ़्तार करने आया हूँ।"

"मुझे गिरफ़्तार करने? अच्छा! यह नई बात मालूम हुई। खैर कोई हर्ज नहीं आपको ईश्वर ने गिरफ़्तार करने की शक्ति दी है—आप गिरफ़्तार कर सकते हैं। तो, कहिये, ऐसे ही चलूं या कपड़े पहन लूं? भोजन कर के अभी लेटा था, इससे कपड़े नहीं पहने। परन्तु आपके साथ चलने से पहले एक बात आपसे कह देना चाहता हूँ और वह यह कि यदि आप मुझे केवल यह समझ कर गिरफ़्तार करने आये हैं कि मैंने दंगे में भाग लिया था, तब तो मैं आपसे यह कहूँगा कि आप पहले

बाबत अच्छी तरह तहक़ीक़ात कर लीजिए। यदि मेरा अपराध मालूम हो जाय तो मुझे शौक़ से गिरफ्तार कर लीजिए। उस समय मुझे आपसे कोई शिकायत न होगी, परन्तु, यदि आप मुझे इस मामले में फाँस कर अपने दिल की कोई कसर निकालना चाहते हैं तो मैं आपसे यह कहूँगा कि आप अपने जीवन की बड़ी भारी भूल कर रहे हैं। ऐसी भूल जिसका प्रायश्चित्त कदाचित् आप अपने प्राण देकर ही कर सकें।

हशमतअली का कलेजा धक् से हुआ। परन्तु ऊपर से उसने भौंहें सिकोड़ कर कहा—आप मुझे धमकाते हैं—मैं ऐसी धमकी में नहीं आसकता। मैंने बड़े बड़े खूनी बदमाशों को ठीक किया है, आप तो एक मामूली आदमी हैं। अगर हम लोग ऐसी धमकी में आने लगें तो बस थानेदारी कर चुके।

चन्द्रशेखर ने उसी प्रकार शान्त स्वभाव से कहा—बदमाशों को अवश्य ठीक किया होगा, यह मैं मानता हूँ। इसमें मुझे कोई आश्चर्य की बात नहीं दिखाई पड़ती; क्योंकि बदमाश लोग उसके पात्र होते हैं। चोर के पैर ही क्या ? उसके हृदय में इतना बल और साहस नहीं रहता कि वह आप लोगों को कुछ नुकसान पहुंचा सके। अतएव यदि बदमाशों को आपने ठीक किया है तो कोई ताज्जुब की बात नहीं, परन्तु मुझे सन्देह है कि आपका पाला किसी निरपराध भले आदमी से पड़ा होगा। यदि पड़ा होता, तो मुझे गिरफ्तार करने के मसले पर आपने काफ़ी सोच-विचार कर लिया होता—इस तरह बिना प्रमाण के कभी न चल दिये होते।

अन्तिम वाक्य चन्द्रशेखर ने मुस्कराकर कहा। हशमत अली हतबुद्धि होकर उनका मुंह ताकता रहा।

चन्द्रशेखर ने पुनः कहना आरम्भ किया-आप मुझसे किसी कारण से नाराज़ हो गये हैं, इसलिए इस तरह फाँसना चाहते हैं।

कोई चिन्ता की बात नहीं। क्या होगा ? अधिक से अधिक साल छः महीने की सजा हो जायगी—फाँसी या कालापानी नहीं होगा, क्योंकि आप मेरे खिलाफ़ उस सजा का जुर्म साबित नहीं कर सकेंगे—यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। तो, जनाब, मैं सजा काट आऊँगा। परन्तु जेल से छूटने के पश्चात् आप होंगे और मैं हूँगा। इसका बदला मैं लूंगा छोड़ूंगा नहीं। दुनिया के किसी कोने में छिप कर आप मेरे बदले से नहीं बच सकेंगे। इस बात को आप अपनी डायरी में लिख लीजियेगा साथ ही यह भी लिख लीजिएगा कि यह किसी चोर डाकू की धमकी नहीं है, यह एक मामूली शरीफ़ आदमी की खरी खरी बातें हैं।

चन्द्रशेखर ने यह बात बड़ी शान्त चित्तता के साथ कही इसमें किसी प्रकार की उत्तेजना या क्रोध का लेशमात्र नहीं था। चन्द्रशेखर की बात सुनकर हशमत अली को पसीना आ गया। चन्द्रशेखर की शीतल चित्तता ने उसके हृदय में भय उत्पन्न कर दिया उसे चन्द्रशेखर की शीतलता बड़े बड़े चोर डाकुओं के तेहे तथा क्रोध से भी अधिक भयानक प्रतीत हुई। चोर-डाकुओं का क्रोध फूस की आग होती है, जो एक दम से भड़क कर कुछ क्षणों पश्चात् सदैव के लिए ठण्डी पड़ जाती है। चन्द्रशेखर के चित्त की शीतलता उसे मौत की ठण्डक प्रतीत हुई; जो असाध्य और अजेय होती है। उसने कुछ क्षण के लिए चन्द्रशेखर से आँख मिलाई—परन्तु चन्द्रशेखर की स्थिर तथा पथराई सी आँखों में उसने जो देखा, वह था अपनी मृत्यु का छाया-चित्र ! हशमत अली—वह हशमत अली जिसका नाम मात्र सुनने से बड़े बड़े हेकड़ों का पित्ता पानी हो जाता था—चन्द्रशेखर जैसे साधारण तथा दुर्बल शरीर के व्यक्ति के सामने सिहर उठा।

कुछ क्षणों पश्चात् उसने अपने को सँभाल कर कहा—आपकी बातों से यह मालूम होता है कि आप वाक़ई बेगुनाह

हैं—इसलिए मैं इस वक्त आपको गिरफ़्तार नहीं करूँगा—इसके पहिले कि मैं आपको गिरफ़्तार करूँ, मैं कुछ और तहक़ीक़ात करना चाहता हूँ।

चन्द्रशेखर—आपका कर्त्तव्य यही है। यदि आपको मेरे अपराध का सुबूत मिल जाय और तब आप मुझे गिरफ़्तार करेंगे, आपको मेरे बराबर सीधा और सच्चा अपराधी दूसरा न मिलेगा।

चलते समय हशमत अली का हाथ अपने-आप उठ गया और उसने चन्द्रशेखर को सलाम किया।

× × ×

उपर्युक्त घटना के एक सप्ताह पश्चात् शहर के कुछ ख़ास आदमी चन्द्रशेखर के पास आये और उनके सामने एक काग़ज़ रखकर बोले—आप इस पर हस्ताक्षर कर दीजिए।

चन्द्रशेखर ने पूछा—यह क्या है?

उनमें से एक बोला—यह इस प्रान्तीय सरकार के नाम इस क़स्बे के आदमियों की अर्ज़ी है। आप जानते हैं कि पिछले दंगे में सारा अपराध पुलिस का था–पुलिस ने ही दंगा कराया था। अतएव जब तक यहाँ हशमत अली रहेगा, तब तक हम लोग सुरक्षित नहीं रह सकेंगे, इसलिए उसके तबादले के लिए यह अर्ज़ी दी जा रही है।

चन्द्रशेखर ने कहा—मैं इस पर हस्ताक्षर नहीं करूंगा।

एक व्यक्ति ने पूछा—"क्यों?"

"क्योंकि यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि दङ्गा कराने का दोषी हशमत अली नहीं है। बल्कि सच पूछा जाए तो दङ्गा उसी के उद्योग से इतनी जल्दी शान्त हो गया—यदि वह न चाहता तो दङ्गा अभी शान्त न होता।"

"यह आप कैसे कहते हैं?"

"यह मैं इस तरह कहता हूँ कि जहाँ आप रहते हैं, वहीं मैं भी रहता हूँ। जैसे आपको ईश्वर ने देखने सुनने और विचार करने के लिए आँख, कान और मस्तिष्क दिया है, वैसे ही मुझे भी दिया है।

एक दूसरा व्यक्ति बोल उठा—"खैर उसने दङ्गा न कराया सही, पर हम लोग उसकी बदली चाहते हैं,"

"क्यों ?" चन्द्रशेखर ने उत्सुक हो कर पूछा।

"इस लिए कि वह आदमी ठीक नहीं। बड़ा खतरनाक आदमी है। जब से वह आया है तब से लोग भयभीत रहते हैं।"

"क्यों भयभीत रहते हैं, क्या वह अत्याचार करता है या निरपराधों को फँसाने का प्रयत्न किया करता है ? मैं जानता हूँ कि आप उसे क्यों हटाना चाहते हैं। आप ऐसा थानेदार चाहते हैं जो आप रईसों की खुशामद किया करे और जैसा आप कहें वैसा करे। हशमत अली में यह बात नहीं है, वह ऐसा आदमी है कि उल्टे आप लोगों को उसकी खुशामद करनी पड़ती है; इसलिए आप उसे यहाँ रहने देना नहीं चाहते।"

"तो ऐसा आदमी क्या अच्छा है जिसकी खुशामद हम लोगों को करनी पड़े ?"

"न अच्छा है न बुरा। यह आप लोगों की कमजोरी है कि जहाँ जरा जबरदस्त और कड़ा हाकिम आया, बस लगे उसके पैर चाटने। उसको अपने पक्ष में करने के लिये और मित्र भाव बढ़ाने के लिए आप ऐसा करते हैं—इसमें हाकिम का क्या अपराध ? यदि आप ऐसा न करें तो वह आपका क्या बिगाड़ सकता है ? मुझसे पूछिये तो मैं हशमत अली को बहुत अच्छा आदमी समझता हूँ—जब से वह आया है—चोर बदमाशों की नानी सी मर गई है। हाकिम ऐसा ही होना चाहिये। ऐसा हाकिम किस काम का कि इधर आप रईस लोग भी मनमानी

करें और उधर चोर बदमाश भी गुलछर्रे उड़ावें ।"

चन्द्रशेखर का यह उत्तर सुन कर सब लोग अपना सा मुंह ले कर चले गये ।

दूसरे दिन हशमत अली चन्द्रशेखर के पास आकर बोला—पण्डित जी कल आप से और शहर के कुछ रऊसा से मेरे खिलाफ़ लिखी हुई अर्जी पर दस्तखत करने के बारे में जो गुफ़्तगू हुई, उसकी मुकम्मल रिपोर्ट मुझे मिली है । सच तो यह है कि मैं अपनी ज़बान से आपकी शराफ़त और सचाई की तारीफ़ नहीं कर सकता । वाक़ई बात यह है कि दंगे के बाद मैंने अपने गुरूर और घमण्ड की वजह से आपसे नाराज हो कर आपको फाँसना चाहा था, मगर आपकी गुफ़्तगू ने मुझ पर ऐसा असर डाला कि मुझे आपको गिरफ़्तार करते हुए खौफ़ मालूम हुआ । मेरे उस बर्ताव के बाद आपका सा बर्ताव एक सच्चा शरीफ ही कर सकता है । इस बकूये से मेरे दिल में आपकी जितनी इज्ज़त हो गई उसे मैं बयान नहीं कर सकता । मैं खुदा को हाज़िर व नाज़िर करके आपसे यह कहता हूं कि आज से आप मुझे अपना एक सच्चा दोस्त पायेंगे ।

चन्द्रशेखर ने मुस्करा कर कहा—खाँ साहब, मैं शुरू से ही आपको एक अच्छा हाकिम समझता था—परन्तु आपने अपने पद के घमण्ड में मुझे एक नाचीज़ आदमी समझा था—यह आपकी ग़लती थी ।

हशमत अली—बेशक, यह मेरी बहुत बड़ी ग़लती थी और उसके लिए मुझे दिली अफ़सोस है । आयन्दा के लिए मैं कसम खाता हूँ कि मैं किसी के साथ ऐसा बर्ताव न करूँगा ।

शान्ति

राय रामचन्द्रदत्त ने प्रौढ़ावस्था पार करके जब वृद्धावस्था में पदार्पण किया तब उनका स्वभाव ज़रा चिड़चिड़ा हो गया। चिड़चिड़े पन का कारण केवल यही था कि समस्त संसारिक सुखों के होते हुए भी उनके हृदय में शान्ति न थी। मनुष्य का हृदय बड़ा शान्ति-प्रिय है। वह सदा शान्ति ही की तृष्णा से आकुल रहता है। राय साहब को किसी प्रकार का अभाव न था। धन की कमी न थी। परिवार भी आपका भरा-पूरा था। पुत्र, पुत्रियाँ, पौत्र इत्यादि सब थे—थी नहीं केवल हृदय में शान्ति!

राय साहब एक दिन इसी सोच में बैठे थे कि किस प्रकार हृदय को शान्ति मिले। वे अपने पिछले जीवन पर विचार कर रहे थे। वे सोच रहे थे कि मैं एक समय यह कहता था कि यदि लक्षाधीश हो जाऊँ तो मेरे दिन बड़ी शान्ति के साथ बीतेंगे, क्योंकि मुझे किसी प्रकार का अभाव न रहेगा। किसी प्रकार का अभाव न होने ही को मैं सुखशान्ति समझे हुए था। ईश्वर

ने जब धन दिया, लक्षाधीश होने की मेरी अभिलाषा पूर्ण की तब यह इच्छा हुई कि यदि कोई उपाधि मिल जाय तो फिर मुझे और कुछ न चाहिए—मेरी समस्त इच्छायें पूरी हो जायँगी। फिर मैं अपना शेष जीवन शान्ति पूर्वक व्यतीत कर सकूंगा। ईश्वर ने मेरी यह अभिलाषा भी पूर्ण कर दी। मुझे राय साहब की उपाधि मिल गई। इसके पश्चात् मैंने जो अपने हृदय को टटोला तो फिर भी शान्ति न मिली। एक वासना पूरी हुई कि तुरन्त ही दूसरी का जन्म हो गया। कभी पुत्र की अभिलाषा हुई। उसकी पूर्ति होते ही पौत्र का मुख देखने की इच्छा का जन्म हुआ। सब मिथ्या है। लोग कहते हैं कि संसारिक सुखों में शान्ति है वासनाओं के पूर्ण होने में शान्ति है—किन्तु सच तो यह है कि शान्ति किसी में नहीं। यदि शान्ति है तो संसार त्याग देने में—संन्यासी हो जाने में। यदि ऐसा न होता तो बड़े बड़े योगी और ज्ञानी, संसार छोड़ कर, क्यों संन्यास ग्रहण कर लेते। ठीक है, इस संसार को त्याग देने ही में मन को विश्राम मिलता है। राय साहब इन्हीं विचारों में मग्न थे कि उनके कमरे का दरवाजा खुला और उनके ज्येष्ठ पुत्र कृष्णदत्त अन्दर आये। राय साहब चौंक पड़े। उन्होंने पूछा—कृष्ण, क्या है ?

कृष्णदत्त भरे हुए थे। पिता के इतना पूछते ही कुछ कर्कश स्वर में बोले—है क्या, विष्णुदत्त (कृष्णदत्त का छोटा भाई) के मारे नाक में दम है। वह चाहता है कि उसी का हुक्म चले। आज मुझे एक आवश्यक काम से जाना था। मैंने कहलवा दिया था कि मोटर आज कहीं न जाने पावे। परन्तु उसे इस बात की क्या परवा। किसी का काम बने या बिगड़े, उसकी बला से।

राय साहब—तो आखिर उसने किया क्या ?

कृष्ण—किया क्या, मोटर ले कर कहीं चल दिया। अन-

घर खाँ (ड्राइवर) ने कहा भी कि बड़े बाबू ने मोटर अपने काम के लिए रोक ली है, पर उसने न माना! उसे भी दो चार खरी-खोटी सुना दी। आखिर नौकर तो नौकर ही हैं। उसे मोटर दे जानी पड़ी।

राय साहब नम्रतापूर्वक बोले—खैर अब तो ले ही गया। तुम जोड़ी जुतवा लो, या अपने घोड़े पर चले जाओ।

कृष्ण—आपने भी कह दिया कि जोड़ी जुतवा लो घोड़ा कसवा लो। इन्हीं बातों से तो उसका साहस बढ़ता जाता है। वह समझता है कि बाबू जी तो कुछ बोलते ही नहीं; जो जी चाहे किया करो।

राय साहब—तो आखिर तुम चाहते क्या हो?

कृष्ण—यही चाहता हूँ कि मेरे लिए आप दूसरी मोटर मँगवा दें। मुझे जोड़ी और घोड़ा अच्छा नहीं लगता। मोटर पर छोटे बाबू का अधिकार है। साझे का काम मुझे पसंद नहीं। मैं बहुत गम खाता रहता हूँ। नहीं तो रोज लड़ाई-झगड़ा हुआ करे।

राय साहब—अच्छा, मैं उसे समझा दूँगा। यदि वह न मानेगा तो तुम्हें दूसरी मोटर ले दूँगा।

कृष्णदत्त के चले जाने पर राय साहब ने ठण्डी साँस लेकर कहा—मुझे इतनी भी स्वतन्त्रता नहीं कि क्षण भर एकान्त में शान्तिपूर्वक बैठ सकूँ! उफ़! मैं तो इस जञ्जाल से तङ्ग आ गया।

कृष्णदत्त गया ही था कि उसी कमरे के दूसरी ओर का, अन्तःपुरवाला द्वार खुला और पूर्णवयस्का दो लड़कियाँ झम-झम करती हुई अन्दर आईं। वे आपस में बातें करती आ रही थीं। एक कह रही थी—चाहे जो हो, मैं तो बाबू जी से कह कर आज ही बनवा लूँगी।

दूसरी बोली—तुम बनवा लोगी तो क्या मैं न बनवा लूँगी ?

राय साहब ने घूम कर देखा। इतनी ही देर में दोनों उनके पास आ गईं। राय साहब मुख पर मुस्कराहट लाकर बोले-क्या है कृष्णा ? क्या बनवाने की बात चीत है ?

कृष्णा बोली—बाबूजी, मैं आज राय श्यामाचरण के यहां गई थी। सुभद्रा (राय श्यामाचरण की पुत्री) के लिए आज हीरे के जड़ाऊ कंगन बनकर आये हैं। बाबूजी, मैं तुमसे क्या कहूँ, ऐसे सुन्दर हैं कि मैंने पहले कभी न देखे थे। बाबूजी, मेरे लिये भी एक जोड़ी बनवा दो।

दूसरी लड़की—और मेरे लिए भी।

राय साहब—तुम्हारे पास तो दो-तीन जोड़ी कंगन रक्खे हैं ? अब और बनवा कर क्या करोगी ? उन्ही के पहनने की नौबत नहीं आती।

कृष्णा—हैं तो, पर वैसे तो नहीं हैं। मेरे बाबूजी, वैसे ही बनवा दो।

राय साहब—अच्छा, पहले उन्हें देख तो लें। जब तक नमूना न मिलेगा तब तक कैसे बनेंगे।

कृष्णा—नमूना मिलना कौन बड़ी बात है। उनके यहाँ आदमी भेज दो।

राय साहब—अच्छा, देखा जायगा।

कृष्णा-नहीं, अभी मंगवा लो। फिर तुम भूल जाओगे।

राय साहब की इच्छा इस समय जरा एकान्त में रहने की थी, परन्तु बेटियां ऐसी मचलीं कि उन्हें उठना और कंगन मँगाने का प्रबन्ध करना ही पड़ा।

(२)

राय रामचन्द्र दत्त अपने मित्र राय श्यामाचरण से बोले, तुम्हारा यह कहना तो ठीक है कि गृहस्थी से बढ़कर—विशेषतः

ऐसी गृहस्थी से जिसमें किसी प्रकार का अभाव न हो-कोई वस्तु अधिक सुखदायक नहीं है; परन्तु मुझे तो सुख की अपेक्षा दुख ही अधिक मिल रहा है। कभी कोई झगड़ा उठ खड़ा होता है, कभी कोई। मांगों के मारे तो मैं ऊब जाता हूँ। रियासत का प्रबन्ध अलग नाक में दम किये रहता है। मैं अकेला क्या क्या करूँ, क्या क्या देखूँ! घर का यह हाल है कि एक से एक की नहीं पटती। एक का कहना करता हूँ, तो दूसरा नाक-भौं चढ़ाता है। बीमारी ने तो मेरे यहां अड्डा ही जमा लिया है। कभी किसी को बुखार आता है, कभी किसी को जुकाम होता है। वह अच्छा होता है तो दूसरा पड़ता है। मतलब यह कि कोई क्षण ऐसा नहीं जाता जिसमें चिन्ता से मैं बचा रहूँ। सब कुछ होने पर भी मैं दिन में घण्टा आध घण्टा भी शांतिपूर्वक नहीं व्यतीत कर सकता। बताओ, ऐसी स्थिति में क्या करूं?

राय श्यामाचरण कुछ मुसकरा कर बोले—भई, गृहस्थी का यही तो सुख है। इसे दुख समझना, मेरी समझ में, बड़ी भारी भूल है।

राय रामचन्द्र—सम्भव है, कुछ लोगों को इसी में सुख मिलता हो, परन्तु भई मुझे तो यह घोर दुःख मालूम पड़ता है।

राय श्यामाचरण—फिर आप क्या चाहते हैं?

राय रामचन्द्र—मैं इन चिन्ताओं से छुटकारा चाहता हूँ और चाहता हूँ अपने शेष दिन शान्तिपूर्वक ईश्वर के भजन में व्यतीत करना।

राय श्यामाचरण इस बात पर बहुत हँसे और बोले—तो यह कहो कि मोक्ष की तैयारी करना चाहते हो।

राय रामचन्द्र गम्भीरता पूर्वक बोले—यह हँसने की बात नहीं। मोक्ष के लिए तैयारी करना तो बहुत कठिन बात है। मैं केवल इतना ही चाहता हूँ कि मेरे हृदय में शान्ति रहे।

राय श्यामा०—हृदय को शान्ति रखना मनुष्य की प्रकृति पर अवलम्बित है। बहुत से मनुष्य ऐसे हैं कि तमाम जञ्जालों में फँसे रहने पर भी कभी अशान्ति की शिकायत नहीं करते और बहुत से ऐसे हैं, जैसे कि आप। उन्हें कभी, किसी भी अवस्था में, शान्ति नहीं।

राय रामचन्द्र को राय श्यामाचरण की यह बात कुछ जंची नहीं। वे बोले—सम्भव है, ऐसे लोग भी हों जिन्हें अशान्ति की शिकायत न हो; परन्तु मुझे तो आज तक कोई ऐसा आदमी नहीं मिला।

राय श्यामाचरण बोले—एक मैं ही आपके सामने मौजूद हूँ।

राय रामचन्द्र मृदु हास्य कर के बोले—अभी तुम्हारी अवस्था ही कितनी है। तुम्हें तो अभी संसार के बहुत सुख लूटने हैं। तुम्हारे हृदय में अभिलाषायें हैं, उमंगें हैं; इसीलिए तुम्हें कोई शिकायत नहीं। जब मेरी अवस्था को पहुँचोगे और शान्ति की शिकायत न करोगे तब मैं समझूँगा कि तुम इसी प्रकृति के हो।

राय श्यामा०—अच्छा, अब यह बतलाइए कि आपने भी कोई उपाय सोचा?

राय रामचन्द्र—मैंने तो यही सोचा है कि संन्यास ले लूँ।

राय श्यामाचरण नेत्र विस्फारित कर के बोले—संन्यास! आप कहते क्या हैं?

राय रामचन्द्र—मैं जो कुछ कह रहा हूँ वह मेरे हृदय की सच्ची आकाँक्षा है।

राय श्यामा०—अजी नहीं, यह भी भला कोई बात है। आपको संन्यास लेने की क्या आवश्यकता है?

राय रामचन्द्र—तो फिर क्या करूँ?

राय श्यामाचरण कुछ क्षण तक सोच कर बोले—मेरी समझ में तो यह अच्छा है कि आप कुछ दिनों के लिए, अर्थात् दो चार

महीने के लिए, अपनी जमींदारी के किसी ऐसे गांव में चलें जायँ, जो रमणीक हो। वहां रहने से आपकी यह सारी अशांति दूर हो जायगी।

राय रामचन्द्र—मैं वहां चला जाऊँ तो यहाँ का कारोबार कौन देखेगा ?

राय श्यामाचरण—और जब आप संन्यास ले लेंगे तब कौन देखेगा ?

राय रामचन्द्र—तब कोई देखे या न देखे, मेरी बला से। जब मैं संसार से नाता ही तोड़ लूंगा तब मुझे इसके लिये चिन्ता करने की आवश्यकता ही क्या ?

राय श्यामाचरण—दो-चार महीने आपके कारिन्दे-मुनीम भी तो काम चला सकते हैं। कम से कम, मेरे कहने से, आप यह कर के देख लीजिए। यदि इसमें आपको सफलता न हो तो फिर जैसा उचित समझिए, कीजिएगा। आप चलें, मैं भी आपके साथ चलूंगा और जब तक आप रहेंगे, वहीं रहूँगा।

राय रामचन्द्र—अच्छा, यही सही। यह भी कर के देख लें।

[२]

शाम के पाँच बज चुके हैं। लछमनपुर के कृषक, दिन भर खेतों में काम करने के पश्चात्, बस्ती की ओर लौट रहे हैं। इसी समय राय रामचन्द्र दत्त तथा राय श्यामाचरण घूमने निकले हैं। दोनों आपस में बातें करते हुए मन्द गति से हवा खाते हुए एक ओर जा रहे हैं।

राय रामचन्द्र बोले—भई, इस बात में तो रत्ती भर भी सन्देह नहीं कि जो आनन्द देहात में है, शहर में उसका शतांश भी नहीं। देखो, कितना सुन्दर दृश्य है। चारों ओर हरियाली ही हरियाली है। डूबते हुए सूर्य की किरणें इस हरियाली पर कैसी शोभा दे रही हैं। हवा भी कितनी मन्द और शीतल है।

राय श्यामाचरण—भला, यह आनन्द शहरों में कहां ! वहां के बाग़-बगीचों में कृत्रिमता की भरमार है। यहां बनावट का नाम नहीं। जो कुछ है, प्राकृतिक है। देखिए, सामने यह सूखा पेड़ खड़ा है। इसमें पत्ती का नाम नहीं। तिस पर भी इन हरे-भरे वृक्षों के बीच यह कितना भला मालूम होता है। यह अपनी शान अलग ही रखता है। यहां की सूखी घास तथा झाड़ियाँ भी अपनी सुन्दरता अलग रखती हैं।

राय रामचन्द्र—निस्सन्देह, इन किसानों को देखिए, कितने प्रसन्न हैं। दिन भर के हारे-थके हैं, पर फिर भी अलापते जा रहे हैं। परन्तु, भई, इन लोगों में दरिद्रता बहुत है।

राय श्यामाचरण—दरिद्रता न हो तो क्या हो। साल भर में बेचारों ने जितना पैदा किया उसमें से कुछ तो लगान में चला गया, कुछ महाजनों की भेंट हुआ और कुछ पटवारी तथा सिपाही-प्यादे ऐंठ ले गए। जो कुछ बच रहा वह पेट भरने के लिए भी मुश्किल से काफी होता है। ऐसी दशा में दरिद्री न हों तो क्या हो। इसके अतिरिक्त इनके पास इतने साधन भी नहीं कि ये लोग अपनी भूमि को अधिक उपजाऊ बना सकें। और बनावें भी किस भरोसे ? आठों घड़ी तो बेदख़ली का भय रहता है। इन्होंने परिश्रम कर के कुछ किया भी, और आपके कारिन्दे ने यदि किसी कारण बेदख़ल कर दिया, तो बेचारों का सारा परिश्रम मिट्टी में मिल गया।

राय रामचन्द्र—हाँ, यह तो ठीक है। अच्छा आओ चलो, वृक्षों के उस झुरमुट में बैठें।

उक्त स्थान में दोनों एक पत्थर पर जा बैठे। उनके चारों ओर घने वृक्षों तथा झाड़ियों का समूह था।

राय श्यामाचरण—हम लोगों को यहाँ आये पन्द्रह-बीस दिन हो गये। कहिए, इतने दिनों में आपको कुछ शान्ति मिली ?

राय रामचन्द्र थोड़ी देर तक कुछ सोचते रहे, तत्पश्चात् बोले सुख तो अवश्य मिला, परन्तु यह वास्तविक शान्ति नहीं है। चित्त कुछ उद्विग्न रहता ही है।

राय श्यामाचरण—ख़ैर, अभी दिन ही कितने हुए हैं। धीरे धीरे आपको शान्ति भी मिल जायगी।

राय रामचन्द्र—सम्भव है, ऐसा हो जाय। पर मुझे तो आशा नहीं। मेरा हृदय तो कह रहा है कि इस प्रकार शान्ति न मिलेगी।

राय श्यामाचरण—आप मुझे कुछ निराशावादी से मालूम होते हैं।

राय रामचन्द्र—मेरी सी दशा यदि तुम्हारी होती तो तुम भी निराशावादी हो जाते।

राय श्यामाचरण—तो आप समझते हैं कि आपको इस प्रकार शान्ति न मिलेगी?

राय रामचन्द्र—मेरा तो यही विचार है।

राय श्यामाचरण—यदि इस प्रकार नहीं, तो फिर किस प्रकार शान्ति मिल सकती है?

राय रामचन्द्र—उसी प्रकार जैसा कि मैं कह चुका हूँ।

राय श्यामाचरण—अर्थात्?

राय रामचन्द्र—संसार त्याग कर संन्यास ले लेने से।

राय रामचन्द्र दत्त के मुंह से यह वाक्य निकला ही था कि एक ओर से उच्च हास्य की आवाज़ आई। दोनों चौंक पड़े। परस्पर एक दूसरे की ओर देखने लगे।

राय रामचन्द्र बोले—यह हंसने की आवाज़ कहां से आई?

राय श्यामाचरण—इधर ही कहीं से आई है।

राय रामचन्द्र—हँसने वाले का शब्द भी बड़ा गम्भीर मालूम होता है।

राय श्यामाचरण—इधर तो खेत भी नहीं, जङ्गल है।

राय रामचन्द्र—हँसने वाले के शब्द से यह नहीं मालूम होता है कि वह कोई देहाती—।

ठीक इसी समय सामने, थोड़ी दूर पर, एक वृद्ध आता दिखाई दिया। उसके वेष से मालूम होता था कि वह भिखारी है।

राय श्यामाचरण धीमे स्वर में बोले—ओहो! ठीक है, छः सात दिन हुए, दो-एक गांव वालों ने कहा था कि यहाँ जंगल में एक बुड्ढा भिखारी, कुछ दिन से, आकर रहा है। वह सदा जंगल में ही रहता है। केवल दिन में एक बार बस्ती में—।

राय श्यामाचरण चुप हो गये, क्योंकि इतने ही में बुड्ढा उनके पास आ गया। दोनों ने बुड्ढे को सिर से पैर तक देखा। बुड्ढे का वेष लटपटा तथा मलिन था। चेहरे पर लम्बी श्वेत दाढ़ी थी। बड़ी-बड़ी तथा रक्तवर्ण आँखों में एक विचित्र प्रकार की चमक थी। वर्ण साँवला होते हुए भी मुख पर कुछ ऐसा तेज था जिससे ये दोनों हतबुद्धि से होकर उसकी ओर ताकने लगे।

बुड्ढा, सामने आकर, खड़ा हो गया और मुसकरा कर बोला—कौन संसार को बुरा कहता है? किसका जी संसार से ऊब गया है? कौन संसार को छोड़ कर संन्यासी होना चाहता है?

बुड्ढे ने ये शब्द बड़ी निर्भीकता से, उसी ढंग से, कहे जैसे कि कोई बड़ा-बूढ़ा किसी बच्चे से पूछता हो। राय रामचन्द्र को बुड्ढे की यह धृष्टता बुरी मालूम हुई; परन्तु मुख से कुछ कहने का साहस न हुआ। श्यामाचरण भी चुप बैठे रहे।

बुड्ढा फिर बोला—अभी मैंने सुना था कि किसी ने संसार छोड़ कर संन्यासी होने की बात कही थी।

इस बार श्यामाचरण साहस करके बोले—हमारे ये मित्र

गृहस्थी के झमेलों से ऊब गये हैं। इसलिए ये कह रहे थे कि संन्यासी होने को जी चाहता है—बस, इतनी ही बात थी और कुछ नहीं। ये कहते हैं कि हृदय में शान्ति नहीं।

बुड्ढा कुछ क्षण तक राय रामचन्द्र की ओर देखता रहा। फिर हँस कर बोला—शान्ति चाहते हो, संसार छोड़ कर जंगलों में भटकने में, या किसी मढ़ी या पहाड़ की खोह में शान्ति ढूंढ़ना चाहते हो— भूली हुई आत्मा है, भ्रम में पड़ा हुआ हृदय है। संसार के परे कुछ नहीं है। जो कुछ है संसार में ही है। संसार के परे अवसान है, अज्ञान है। जंगल भी संसार में ही है। पहाड़ भी संसार में ही है। तुम भी संसार में हो, गृहस्थी भी संसार में है। पहाड़ में संसार है, जंगल में संसार है, गृहस्थी में संसार है, तुममें संसार है। किस को छोड़ोगे? संसार कभी नहीं छूट सकता। वह तुम्हारे शरीर में है, तुम्हारे रोम रोम में है। गृहस्थी और बस्ती से अलग रह कर शान्ति ढूंढ़ना चाहते हो? यह भूल है। इस प्रकार शान्ति मिल सकती है सही, पर यह राह बड़ी दुर्गम है और दूर की है। तुम्हारे ऐसे लोग, जिनकी आयु का अधिकांश विषय-वासनाओं में व्यतीत हुआ है, इस राह पर चल कर कभी शान्ति प्राप्त नहीं कर सकते। जिस वस्तु को तुम दो पग चल कर पा सकते हो उसको पाने के लिए कोसों चलने की तैयारी कर रहे हो। भूल है, बड़ी भूल है। शान्ति तुम्हारे पास है। तुम चाहे जब उसे प्राप्त कर सकते हो सबसे छोटी राह ढूंढ़ने की आवश्यकता है। यदि तुम्हारे पास धन है तो तुम उसी के द्वारा शान्ति प्राप्त कर सकते हो। तुम्हारे सहस्त्रों भाई निर्धन हैं। उनको धनवान् बनाने की चेष्टा करो—उनको उद्योग-धन्धे सिखलाओ; विद्यालय, पाठशालायें खुलवाओ। अनाथों के लिये अनाथालय और विधवाओं के लिये विधवाश्रम खुलवाओ। गरीब किसानों को उनके खेती

के व्यवसाय में सहायता दो—तुम्हें शान्ति मिलेगी । यदि तुम्हारे पास विद्या है तो अपने सहस्रों मूर्ख भाइयों को विद्वान बनाओ; तुम्हें सच्ची शान्ति मिलेगी। यदि तुम्हारे पास बल है तो अपने बलहीन असंख्य भाइयों को बलवान् बनने के उपाय बताओ—तुम्हें शान्ति मिलेगी। कितना सुगम पथ, कितना सरल उपाय है। भूल है, भूल है, संसार से अलग हो कर शान्ति ढूढ़ना भूल है। भूली हुई आत्मा के विचार हैं, भ्रम में पड़े हुए हृदय की उपज है। परमार्थ करो, परोपकार करो—तुम्हें शान्ति मिलेगी।

इतना कह कर बुड्ढा एक बार फिर जोर से हँसा और "भूल है, भूल है" बड़बड़ाता हुआ एक ओर चला गया। दोनों मित्रों ने एक दूसरे की ओर देखा। राय रामचन्द्र ने एक लम्बी साँस लेकर कहा—निस्सन्देह मैं भूला हुआ था—भ्रम में पड़ा हुआ था।

× × ×

दो वर्ष पश्चात्—

राय श्यामाचरण ने हँस कर राय रामचन्द्र से पूछा—कहिए, अब तो आपको शान्ति और उद्विग्नता की शिकायत नहीं ?

राय रामचन्द्र प्रसन्न-मुख हो बोले—जरा भी नहीं। इन दो वर्षों में मैंने देहातों में दस-पन्द्रह पाठशालायें खुलवा दी हैं; छः सात अनाथालय खुलवा दिये हैं। बहुत से दरिद्र बालकों को वजीफे देकर आगे पढ़ने के लिए सुभीता कर दिया है। अपनी जमींदारी से बेदखली की प्रथा एक दम दूर कर दी है। किसानों को आर्थिक सहायता देकर काश्तकारी की उन्नति करा रहा हूँ।

जिस समय मैं अनाथालय में अनाथ बालकों को हँसते-खेलते देखता हूँ; देहात में शिक्षा की उन्नति, और काश्तकारी की उन्नति पर दृष्टि डालता हूँ; दरिद्र लड़कों को, जिनके लिये विद्या-प्राप्ति का कोई जरिया न था, विद्यालाभ करते देखता हूँ उस समय मुझे जितना सुख मिलता है, जितनी शान्ति मिलती है, वह अकथनीय है।

पाप का फल

रात के आठ बज चुके हैं। कालेज होस्टल के एक कमरे में थर्ड इयर के दो विद्यार्थी अध्ययन कर रहे हैं। कमरा दो बिजली के लैम्पों से प्रकाशपूर्ण हो रहा है। कमरे में एक ओर एक पलँग बिछा है—जिस पर बिस्तर फैला हुआ है, दूसरी ओर एक मेज लगी हुई है—जिस पर एक बिजली का टेबुल-लैम्प रक्खा है और कुछ पुस्तकें तथा लिखने की सामग्री रक्खी है। टेबुल के सामने दो कुर्सियों पर वे दोनों नवयुवक बैठे हैं। कमरे के पूर्व की ओर कमरे का मुख्य द्वार है और पश्चिम की ओर दो खिड़कियाँ हैं— जिनमें काँच-मंडित कपाट लगे हुए हैं। पलँग के नीचे दो ट्रंकों की झलक भी दिखाई पड़ रही है।

दोनों नवयुवकों में से एक की उम्र १९ वर्ष के लगभग है और दूसरे की २३ वर्ष के लगभग। दोनों व्यक्ति हृष्ट-पुष्ट तथा देखने में साधारणतया सुन्दर हैं। दोनों के सम्मुख एक-एक पुस्तक खुली हुई रखी है। दोनों के हाथों में एक-एक पेंसिल है जिससे वे पुस्तक

में चिह्न बना रहे हैं। कुछ देर तक दोनों इसी प्रकार मौन रूप से अपना-अपना कार्य करते रहे। हठात् उनमें से एक ने जो उम्र में दूसरे से ४ वर्ष छोटा था, सिर ऊपर उठाकर कहा—भाई चन्द्रशेखर—यह पाप क्या चीज है ?

कुछ आश्चर्य से प्रश्नकर्ता की ओर देख कर चन्द्रशेखर ने कहा—पाप क्या चीज है ? वाह भाई निरंजन—तुम्हें आज तक यही ज्ञात न हुआ कि पाप क्या चीज है ?

निरंजन—हाँ हाँ, क्या हुआ—इसमें इतना आश्चर्य करने की कौन सी बात है। आप ही बताइए पाप किसे कहते हैं।

चन्द्रशेखर—यह तो बड़ी साधारण बात है—बुरे काम करना पाप है।

निरंजन—केवल इतना कह देने से ही काम नहीं चलता, जब आप यह कहते हैं कि बुरे काम करना ही पाप है, तो यह प्रश्न उठता है कि बुरे काम कौन से हैं ? यदि आप कहें कि झूठ बोलना बुरा है, इसलिए झूठ बोलना पाप है तो उस पर मैं यह कहता हूँ कि ऐसे अवसर भी आए हैं और आते रहते हैं जब कि झूठ बोलना बुरा नहीं, वरन् अच्छा समझा जाता है—उस दशा में वह पाप नहीं कहा जा सकता।

चन्द्रशेखर—झूठ बोलना तो किसी दशा में भी पुण्य नहीं समझा जाता।

निरंजन—मैं यह नहीं कहता कि पुण्य समझा जाता है। मैं केवल इतना कहता हूँ कि पाप नहीं समझा जाता। जैसे कोई व्यक्ति एक अपराध करता है—परन्तु उसके लिये उसके हृदय में सच्चा पश्चात्ताप है। सच्चा अनुताप है। साथ ही उसकी परिस्थिति ऐसी है कि यदि उसे उस अपराध के लिए दण्ड दिया जाता है, तो उसका सर्वनाश हुआ जाता है—उसके बाल-बच्चे घोर संकट तथा विपत्ति में पड़ जाते हैं। उस समय यदि कोई व्यक्ति झूठ

बोलकर उसे दण्ड से बचा लेता है—तो क्या बचाने वाला पाप करता है ?

चन्द्रशेखर—निःसन्देह पाप करता है; क्योंकि जब उसे दण्ड न दिया जावेगा, तो उसका साहस बढ़ जायगा और वह पुनः वही अथवा उसी तरह का अन्य अपराध करेगा।

निरंजन—हाँ ठीक है—परन्तु यदि वह पुनः अपराध न करे क्योंकि यह मैं पहले ही कह चुका हूँ कि उसके हृदय में सच्चा पश्चात्ताप है, तब—?

चन्द्रशेखर—कुछ क्षणों तक सोचकर बोले-ऐसी दशा में भी झूठ बोलना पाप ही है।

निरंजन—बस, यहीं पर मेरा तुमसे मतभेद है। तुम कर्म को पाप मानते हो; परन्तु मैं कर्म को पाप नहीं मानता, मैं उसके फल को पाप मानता हूँ। जब तक किसी कर्म का फल स्वयं अपने लिये तथा दूसरों के लिये किसी प्रकार से भी हानिकारक न हो, तब तक वह पाप नहीं है।

चन्द्रशेखर—यदि इसे ठीक मान लिया जाय तब तो पाप कोई चीज ही नहीं रह जाता।

निरंजन—क्यों, रह क्यों नहीं जाता ?

चन्द्रशेखर—कैसे रह जाता है ? यदि कोई कार्य हानिकारक हो, तब तो वह पाप, अन्यथा पाप नहीं। ऐसी दशा में आप किसी भी कार्य को पहले से ही पाप नहीं कह सकते।

निरंजन—नहीं बहुत-से काम ऐसे हैं जिन्हें पहले से ही पाप कहा जा सकता है। उदाहरणार्थ चोरी, व्यभिचार, जुआ इत्यादि। इनसे प्रत्येक दशा में हानि पहुंचती है।

चन्द्रशेखर—उँह होगा भी। यह विषय हमारे तुम्हारे मस्तिष्क की वस्तु नहीं है। यह फ़िलासफ़रों का काम है।

निरंजन—फ़िलासफ़र भी मनुष्य ही होते हैं।

चन्द्रशेखर—हमारे तुम्हारे से नहीं।

निरंजन—संसार पाप चाहे जिसे माने; परन्त मैंने तो अपने लिए पाप की परिभाषा यही बना ली है कि जिससे स्वयं हमें या दूसरों को किसी भी प्रकार की हानि पहुँचे वह पाप है।

चन्द्रशेखर—'किसी भी प्रकार' से तुम्हारा क्या तात्पर्य है?

निरंजन—शरीर सम्बन्धी, आत्मासंबन्धी धन संबन्धी इत्यादि।

चन्द्रशेखर—यद्यपि, मैं तर्क से तुम्हारी इस परिभाषा को नहीं काट सकता, तथापि मेरी आत्मा कहती है कि तुम्हारी परिभाषा सदोष है। यह बात किसी दिन स्वयं तुम पर प्रकट हो जायगी।

निरंजन—मुझे तो ऐसी आशा नहीं, यदि ऐसा हुआ तो मैं अपनी भूल मान लूंगा।

इसके पश्चात् ये दोनों पुनः अध्ययन में लग गये। नौ बजे के लगभग चन्द्रशेखर ने पुस्तक बन्द करके कहा—अच्छा मैं तो अब जाता हूँ—नींद लगती है।

निरंजन—अच्छी बात है जाओ।

चन्द्रशेखर पुस्तक लेकर अपने "रूम" में चले गए। उनके चले जाने पर निरंजन ने अपने कमरे का द्वार बन्द कर लिया और रोशनी बुझा दी। रोशनी बुझाकर वह खिड़की के पास आए और शीशे पर आँख लगाकर बाहर की ओर देखने लगे। होस्टल के पूर्व की ओर एक १५ फ़ीट चौड़ी सड़क थी और उसके पश्चात् मकानों की क़तार थी, जिनमें गृहस्थ रहते थे। निरंजन की खिड़की के सामने जो मकान था उसके दो मंज़िले के कमरे का द्वार निरंजन की खिड़की के ठीक सामने था। इस समय उस कमरे में रोशनी हो रही थी। निरंजन ने देखा कि कमरे में एक नवयुवती अकेली निश्चिन्त भाव से लेटी है। उसके हाथ में एक पुस्तक है जिसे वह बड़े ध्यान से पढ़ रही है। पढ़ते-पढ़ते

युवती ने करवट ली, तो उसका सुन्दर गौर वक्षस्थल खुल गया। निरंजनलाल ने इस दृश्य को बड़े चाव से देखा। निरंजनलाल इसी प्रकार खड़े युवती के रूपामृत को पान करते रहे। अन्त में जब युवती अपने कमरे की रोशनी बुझाकर सोने के लिए लेटी, तब निरंजन भी अपने बिस्तर पर आ लेटे।

[२]

निरंजनलाल इसी प्रकार, जब उन्हें सुअवसर मिलता, तब सामने-वाले घर की स्त्रियों को घूरा करते थे। उन्हें इसका एक व्यसन-सा हो गया था। जिस दिन वह यह कृत्य नहीं कर पाते थे, उस दिन उन्हें ऐसा भासित होता था कि उनका वह दिन व्यर्थ गया।

इतवार का दिन था और दोपहर का समय। निरंजनलाल अपने कमरे में अकेले बैठे हुए एक उपन्यास पढ़ रहे थे बीच में वह कभी-कभी उठकर खिड़की से बाहर की ओर झाँकते थे, परन्तु सामने वाले मकान के कमरे को जन-शून्य पाकर बड़े निराशयपूर्ण भाव से पुनः अपने स्थान पर आ बैठते और पुस्तक पढ़ने लगते। इसी प्रकार दो-तीन बार के उठने-बैठने पर अन्त में उन्हें सफलता मिली। सामनेवाले कमरे में एक स्त्री आकर पलँग पर लेट गई। निरंजनलाल ने पुस्तक एक ओर रख दी, और खिड़की के पास खड़े होकर स्त्री को देखने लगे। उनके कमरे का मुख्य द्वार केवल ओढ़का हुआ था। यह बात निरंजन भूल गए थे। उनका नियम था कि जब वह यह कृत्य करते थे, तो द्वार की चिटखनी बन्द कर देते थे। वह खड़े देख रहे थे कि कमरे का द्वार धीरे-धीरे खुला और चन्द्रशेखर ने झाँककर भीतर देखा। निरंजन को खिड़की के पास खड़े बाहर की ओर झाँकते हुए देखकर वह निःशब्द पैरों से भीतर आए। निरंजनलाल अपनी धुन में इतने मग्न थे कि उन्हें चन्द्रशेखर के आने की जरा

भी आहट न मिली। चन्द्रशेखर पंजों के बल धीरे-धीरे चलकर उनके पीछे आकर खड़े हो गए और जिस ओर निरंजनलाल देख रहे थे उसी ओर देखने लगे। उस ओर देखते ही उन्होंने जो कुछ देखा उससे उनका चित्त बिगड़ गया। उन्होंने देखा कि सामने कमरे में एक सुन्दर युवती अर्द्ध नग्नावस्था में पलँग पर पड़ी है और निरंजनलाल उसकी ओर निर्निमेष दृष्टि से देख रहे हैं। चन्द्रशेखर "छिः !" कहकर दो पग पीछे हट गए। निरंजनलाल चौंक पड़े, उहोंने घूमकर देखा और चन्द्रशेखर को सामने खड़ा देखकर अप्रतिभ हो गए। लज्जापूर्ण मृदु-मुस्कान के साथ उन्होंने कहा—अरे ! तुम कहाँ से टपक पड़े।

चन्द्रशेखर ने कहा—मैं इधर से निकला। मैंने सोचा देखूं तुम सो तो नहीं रहे हो-मैंने इसलिये धीरे से कपाट खोला, तो तुम्हें खिड़की के पास खड़े किसी वस्तु को बड़े ध्यान से देखते पाया। मुझे उत्सुकता हुई कि तुम क्या देख रहे हो। मैं दबे पैरों तुम्हारे पीछे आकर खड़ा हो गया।

निरंजनलाल उसी प्रकार झेंपते हुये बोले—तो तुमने क्या देखा ?

चन्द्रशेखर—मैंने वह देखा जो किसी भले आदमी को न देखना चाहिए—जिसका देखना पाप है।

निरंजनलाल हँसते हुए अपने पलँग पर बैठ गए और बोले—तुम बेवकूफ हो।

चन्द्रशेखर—पराई बहू-बेटियों को इस प्रकार नंगे-खुले देखना पाप नहीं तो क्या पुण्य है।

निरंजनलाल—यदि पुण्य नहीं तो पाप भी नहीं है।

चन्द्रशेखर—जब ऐसी बातें भी पाप नहीं हैं तो मेरी समझ में नहीं आता कि फिर संसार में पाप है क्या ?

निरंजनलाल—पाप वह है जिससे अपने को या किसी दूसरे

को हानि पहुँचे।

चन्द्रशेखर—घृणा से मुँह बनाकर बोले—रहने दो अपना यह पोच सिद्धान्त—बड़े फ़िलासफ़र की दुम बने हो। पराई बहू-बेटियों को घूरते हो और उस पर यह बेहयाई कि अपने कार्य पर शर्माते भी नहीं।

निरंजनलाल—देखो भाई, यदि तुम्हें बुरा-भला कहना है तो शौक़ से कहलो और यदि कुछ समझ और बुद्धि से काम लेना है तो मेरी बात पर ग़ौर करो। संसार में सुन्दर वस्तुयें देखने के लिए ही होती हैं। नेत्र ईश्वर ने सुन्दर पदार्थ देखने को ही दिए हैं। यदि मनुष्य को सुन्दर पुष्प, सुन्दर लताएँ, सुन्दर सरोवर, सुन्दर पर्वत तथा अन्य सुन्दर दृश्य देखने का अधिकार प्राप्त है, तो उसे एक सुन्दर स्त्री देखने का भी अधिकार प्राप्त है।

चन्द्रशेखर—यदि तुम इसे सचमुच ही अपना अधिकार समझते हो तो लुक-छिपकर क्यों देखते हो? खिड़की खोलकर सामने खड़े होकर देखो—तब जरा देखने का मजा भी मिले।

निरंजनलाल—उस दशा में तो देखना पाप हो जायगा।

चन्द्रशेखर—इस दशा में पाप नहीं है?

निरंजनलाल—नहीं! इसका कारण यह है कि यदि सामने खड़ा होकर देखूँ तो उससे संभव है वह स्त्री बुरा माने और उसका हृदय दुखे—यदि ऐसा हुआ, तो वह पाप की श्रेणी में सम्मिलित हो जायगा। मैं इस प्रकार देखता हूँ कि मेरे नेत्रों को, मेरी आत्मा को सुख मिलता है और उस स्त्री को कोई हानि नहीं पहुँचती—ऐसी दशा में यह पाप नहीं कहा जा सकता।

यह तर्क सुनकर चन्द्रशेखर हँस पड़े और बोले—तुम्हारा भी विचित्र सिद्धांत है, मैंने तो ऐसा आदमी ही नहीं देखा।

निरंजनलाल—आप कमसिन हैं अभी आपने देखा क्या है।

ज़रा मस्तिष्क से काम लो—केवल पुरानी लकीर पीटने से काम नहीं चलता। मैं लकीर का फ़कीर नहीं हूँ।

चन्द्रशेखर—अच्छा, मैं कमसिन हूँ? ईश्वर झूठ न बुलाए, मैं आपसे तीन-चार वर्ष बड़ा ही हूं। रही मस्तिष्क से काम लेने की बात—सो पराई बहू-बेटियों को घूरने के कुकर्म को तर्क से सुकर्म प्रमाणित करना अभी मेरे मस्तिष्क ने नहीं सीखा है-यह आपको ही मुबारक रहे। और न मैं यह मानता हूँ कि जब तक किसी काम को करते ही अपने या किसी दूसरे के ऊपर वज्रपात न हो, तब तक वह पाप नहीं है। बहुत से कार्य ऐसे हैं जिनका फल बहुत देर में मिलता है, पर मिलता है अवश्य!

निरंजनलाल—अच्छा, महात्माजी, क्या आप बता सकते हैं कि मुझे इस पाप का क्या फल मिलेगा?

चन्द्रशेखर—जो फल मिलेगा वह तुम्हें समय पर ज्ञात हो जायगा।

निरंजनलाल—परन्तु मिलेगा अवश्य—क्यों?

चन्द्रशेखर—हाँ, यदि तुम अपनी यह कुटेव न छोड़ोगे, तो अवश्य मिलेगा।

निरंजनलाल—अच्छी बात है-मुझे भी देखना है कि तुम्हारी भविष्यवाणी कहाँ तक ठीक उतरती है।

चन्द्रशेखर—इस फेर में न पड़ो। अच्छा हो यदि तुम अपना यह दुष्ट स्वभाव छोड़ दो।

निरंजनलाल ने व्यंग्यपूर्वक कहा—हाँ, छोड़ दूंगा—ज़रा आपकी भविष्यवाणी का परिणाम देख लूं।

चन्द्रशेखर कुढ़कर बोले—ख़ैर, तुम्हारी इच्छा यही है तो ऐसा ही सही।

यह कहकर चन्द्रशेखर वहाँ से चले गए।

(३)

(३)

निरंजनलाल के इस स्वभाव की चर्चा क्रमशः अन्य विद्यार्थियों में भी फैल गई। कुछ ने इस पर कुछ ध्यान नहीं दिया, कुछ ने इसे केवल मजाक समझा; परन्तु कुछ मनचले ऐसे भी थे जिन्होंने स्वयं इसकी जांच करने की चेष्टा की। दो एक विद्यार्थी इस ताक में रहने लगे कि उन्हें भी ऐसे दृश्य देखने का सौभाग्य प्राप्त हो। उन्हें जब अवसर मिलता, तब निरंजनलाल के कमरे में घुस जाते और सीधे खिड़की के पास पहुंच कर वहाँ खड़े हो जाते और बाहर की ओर आँख फाड़-फाड़कर देखने लगते। परन्तु निरंजनलाल को अभी इसकी कुछ खबर नहीं थी। क्योंकि उनकी उपस्थिति में किसी का इतना साहस न होता कि यह हरकत करे। जब ऐसा अवसर होता कि निरंजनलाल कमरा खुला छोड़कर भोजन करने अथवा नित्यक्रिया से निवृत्त होने के लिए जाते, तभी कोई न कोई विद्यार्थी उस सुअवसर से लाभ उठाता। मनोहरसिंह नामक एक विद्यार्थी इस बात के लिऐ विशेष लालायित रहता था।

एक दिन जब कि कमरा सूना पाकर मनोहरसिंह खिड़की के पास खड़ा झाँक रहा था, उसी समय हठात् निरंजनलाल पहुंच गये। उन्होंने मनोहरसिंह को खिड़की से झांकते देखकर समझ लिया कि इसे भी शौक़ लगा। उन्होंने किंचित् कर्कशस्वर से पूछा—वहां खड़े क्या झांकते हो जी ?

मनोहरसिंह—कुछ नहीं, ऐसे ही जरा सड़क की बहार देख रहा था।

निरंजनलाल—सड़क की बहार देखनी हो तो अपने कमरे से जाकर देखो।

मनोहरसिंह—तो इतना बिगड़ते क्यों हो—यहीं खड़ा हो

गया तो कौन पाप किया ?

निरंजनलाल—मैं ऐसी बातें पसन्द नहीं करता—समझे ? सामने एक भले आदमी रहते हैं, उनकी दृष्टि पड़ गई तो वह बुरा मानेंगे।

मनोहरसिंह—खिड़की के कपाट तो बन्द हैं—उनकी दृष्टि कैसे पड़ेगी ?

निरंजनलाल—पड़ सकना सम्भव है।

मनोहरसिंह—हाँ भाई, तुम घंटों खड़े होकर घूरो—तब दृष्टि नहीं पड़ती, मेरे खड़े होने से दृष्टि पड़ जावेगी—मानता हूँ उस्ताद !

निरंजनलाल ने क्रुद्ध होकर कहा—बस जबान सँभाल कर बात करो नहीं अच्छा न होगा।

मनोहरसिंह किंचित् मुस्कराकर बोला—यह गीदड़ भपकी किसी और को दिखाओ—तुम्हारी सब कला मुझे मालूम है।

निरंजनलाल—क्या मालूम है ? मैं कोई चोर-बदमाश तो हूँ नहीं—आपको मालूम क्या है ?

मनोहरसिंह—अच्छा अच्छा, बहुत जामे के बाहर मत हो—मैंने कुछ मोती नहीं तोड़ लिए, केवल एक नजर भर देख लिया है। तुम्हारी चीज तुम्हें मुबारक रहे। मगर उस्ताद यह तनहाखोरी अच्छी नहीं।

निरंजनलाल—तुम बड़े बदमाश आदमी हो जी—जो मुंह में आता है बके जाते हो। मेरा कमरा है मैं यहाँ जो चाहूँगा करूँगा—तुम्हारे बाप का इजारा है ?

मनोहरसिंह ने गम्भीर होकर कहा—यह बात बेजा है, बाप-बाप को मत घसीटो नहीं अच्छा न होगा।

निरंजनलाल—अच्छा क्या न होगा, तुम कर क्या लोगे ?

मनोहरसिंह—इस भरोसे न रहना, सारी शेखी भुला दूंगा।

यह सुनते ही निरंजनलाल उछल कर मनोहरसिंह के सामने जा खड़े हुए और आस्तीन समेटते हुए बोले—क्या कहते हो शेखी भुला दोगे। इन दोनों का चीत्कार सुनकर अन्य विद्यार्थी जमा हो गए और सब पूछने लगे—क्या है, क्यों लड़े मरते हो?

मनोहरसिंह ने देखा कि अब यहाँ ठहरना ठीक नहीं, अतएव उसने कहा—अच्छा देखा जायगा, बताऊँगा।

यह कहकर वह निरंजन के सामने से टल गया। उसके चले जाने के पश्चात् विद्यार्थियों ने निरंजनलाल से बहुत पूछा कि क्या बात थी; पर निरंजन ने कुछ नहीं बताया।

इस घटना के पश्चात् पन्द्रह-बीस दिन व्यतीत हो गए। निरंजनलाल और चन्द्रशेखर की मित्रता पूर्ववत् बनी हुई है। यद्यपि चन्द्रशेखर जानते हैं कि निरंजनलाल ने अपना दुष्ट स्वभाव छोड़ा नहीं; परन्तु इस पर अब वह कुछ नहीं कहते। इधर निरंजनलाल की यह दशा है कि वह चन्द्रशेखर को चिढ़ाने के लिये कभी-कभी उनके सामने ही घूराघारी आरम्भ करते हैं। यह देखकर चन्द्रशेखर वहाँ से टल जाते हैं।

एक दिन इतवार को दोपहर के समय निरंजनलाल भोजन करने गए। उन्होंने अपने कमरे के द्वार को केवल ओढ़का दिया। उनके जाते ही मनोहरसिंह टहलते हुए उनके कमरे के पास आए और इधर-उधर देखकर धीरे से कमरे के अन्दर घुस गए। कमरे के भीतर जाकर वह सीधे खिड़की के पास पहुंचे। पहले तो वह कुछ क्षणों तक खड़े देखते रहे। इसके उपरान्त उन्होंने धीरे से खिड़की के कपाट खोले और कमीज की जेब से एक कंकड़ निकाला। वह कंकड़ उन्होंने सामनेवाले कमरे में फेंककर पुनः कपाट बन्द कर लिये और जल्दी से कमरे से निकल आए। कमरे के कपाट पूर्ववत् ओढ़काकर वह चुपचाप अपने कमरे की ओर चले गए।

उनके जाने के दो-तीन मिनिट पश्चात् ही निरंजनलाल भोजन करके लौटे और अपने कमरे में आकर कपड़े पहनने लगे। वह कमीज पहनकर पान खाने के लिये बाहर आ ही रहे थे कि उसी समय उनके पिछवाड़े कुछ कोलाहल सुनाई पड़ा। उन्होंने खिड़की खोलकर बाहर की ओर झाँका। उन्होंने देखा कि सामने वाले मकान के बाबू ने कर्कश स्वर में कहा—क्यों जनाब, यह आपकी कौन सी हरकत है?

निरंजन का कलेजा धक से हुआ। उन्होंने सोचा—कहीं मेरा झाँकना-ताकना इन्हे तो नहीं मालूम हो गया।

उन्हें कुछ घबराया हुआ तथा निरुत्तर सा पाकर वह बाबू अधिकतर उत्तेजित होकर बोले—आप भले आदमियों के घरों में ढेले फेंकते हैं क्यों? मालूम होता है आपके कोई बहन-बेटी नहीं है।

निरंजनलाल बोले—मैंने तो ढेला बेला कुछ नहीं फेंका।

वह बाबू साहब एक कंकड़ दिखाकर बोले—यह ढेला आप के कमरे से आया है। अभी-अभी आपने फेंका है।

निरंजनलाल कुछ कर्कश स्वर में बोले—मैंने नहीं फेंका, खामखाह एक भले आदमी पर तोहमत लगाते हैं।

बाबू साहब—तुम भले आदमी हो? तुम अव्वल दर्जे के बदमाश हो। एक तो क़ुसूर किया ऊपर से टर्राते हो। याद रखना इस बार तो मैं तरह देता हूँ आयन्दा कभी ऐसी हरक़त की तो बहुत बुरी तरह पेश आऊँगा।

यह कहकर बाबू साहब बकते-झकते चले गए। इधर निरंजनलाल हतबुद्धि से होकर खड़े रहे। इधर यह गुल-गपाड़ा सुन कर अन्य विद्यार्थी भी इनके कमरे में जमा हो गए थे। उनमें से जो निरंजनलाल के स्वभाव को जानते थे, उनमें से एक ने कहा—वाह उस्ताद मानता हूँ, घूराघारी करते करते ढेलेबाजी भी

करने लगे।

निरंजनलाल—मैं तो अभी भोजन करके आया हूँ मुझे तो पता तक नहीं कि किसने ढेला फेंका।

पहले तो विद्यार्थियों ने इनकी बात पर विश्वास नहीं किया; पर जब इन्होंने बहुत क़समें-वसमें खाईं, तब सब लोग वहाँ से हटे। निरंजन की निर्दोषता पर उन्हें विश्वास हुआ या नहीं—इस पर किसी ने अपना मत प्रकट नहीं किया।

(४)

उपर्युक्त घटना के पश्चात् दस दिन बीत गए। मनोहरसिंह ने देखा कि उसके ढेला फेंकने का जो परिणाम होना चाहिए था, वह नहीं हुआ। अतएव वह पुनः सुअवसर की ताक में रहने लगा। एक दिन वह निरंजनलाल से पहले ही भोजन करके अपने कमरे में आ गया और इस टोह में रहा कि निरंजनलाल कब भोजन करने जाते हैं। कालेज जाने के पूर्व साढ़े नौ बजे के लगभग निरंजनलाल भोजन करने गये। उनके उधर जाते ही मनोहरसिंह पुनः उनके कमरे में घुस गया और वही काण्ड करके तुरन्त अपने कमरे में आया, झटपट पुस्तकें उठाईं और कालेज की ओर चल दिया। इधर कुछ ही मिनिटों पश्चात् निरंजनलाल अपने कमरे में आए और कालेज जाने के लिये कपड़े पहनने लगे। वह कपड़े पहनकर तैयार ही हुए थे कि वही बाबू साहब, जिनसे उस दिन कहा-सुनी हुई थी, एक अन्य व्यक्ति के साथ उनके कमरे के द्वार पर आकर खड़े हो गए और कर्कश स्वर में बोले—क्यों जनाब, आप अपनी बदमाशी से बाज़ नहीं आते—अच्छी बात है, आज मैं आपको प्रिंसिपल के पास लिए चलता हूँ। आप विद्यार्थी न होते, तो मैं आपको इसी जगह खोदकर गाड़ देता।

निरंजनलाल पहले तो अवाक् हो गए; परन्तु फिर सँभलकर बोले—आप कुछ घास तो नहीं खा गए हैं ? व्यर्थ एक भले आदमी पर दोषारोपण करते हैं। उस दिन मैं चुप हो रहा कि ग़लती हो गई होगी—किसी ने फेंका होगा, परन्तु मेरा कमरा सामने है, इस लिये मेरे ऊपर सन्देह होना स्वाभाविक है। उसका नतीजा यह हुआ कि आपने मुझी को ताक लिया। वाह ! यह अच्छा स्वाँग निकाला।

बाबू साहब क्रोध को पीने की चेष्टा करते हुए बोले—देखिए अभी आटे-दाल का भाव मालूम हो जायगा। पहले तो आपको मैं आपके अफ़सर के पास लिए चलता हूँ। उसके बाद जो कुछ होगा देखा जायगा।

निरंजनलाल पुस्तकें उठाकर बोले—चलिए, अफ़सर मेरा क्या कर लेंगे ? जब करा नहीं तो डर काहे का।

बाबू साहब निरंजनलाल को साथ लेकर प्रिंसिपल के बँगले की ओर चले। इनके पीछे-पीछे अन्य विद्यार्थियों की भीड़ भी चली।

प्रिंसिपल का बँगला कालेज की सीमा के अन्दर ही था, अतएव पाँच मिनिट में ही सब लोग बँगले पर पहुँच गए।

बाबू साहब प्रिंसिपल से सब वृत्तान्त कहकर बोले—एक दिन पहले भी इन्होंने यही हरकत की थी और इसी कारण मुझसे इनसे कुछ कहा-सुनी भी हुई थी। आप अन्य विद्यार्थियों से पूछ लीजिए कि ऐसा हुआ था या नहीं।

प्रिंसिपल साहब ने दो-चार विद्यार्थियों से पूछा। उन्होंने कहा—हाँ, कहा-सुनी तो अवश्य हुई थी ?

मनोहरसिंह भी पहुंच गया था, उसने आगे बढ़ कर कहा—साहब, यह बहुधा इनके घर की स्त्रियों को घूरा करते थे। मैंने इन्हें कई बार ऐसा करते देखा। इसके लिए यह होस्टल में काफ़ी

बदनाम हो चुके हैं। सब विद्यार्थी इनकी इस बुरी आदत को जानते हैं।

प्रिंसिपल साहब ने अन्य विद्यार्थियों से पूछा। यद्यिपि वे नहीं चाहते थे कि निरंजनलाल के विरुद्ध उन्हें कुछ करना पड़े; परन्तु सब बात यहाँ तक पहुँच गई तो उन्हें स्वीकार करना पड़ा कि—"हाँ निरंजनलाल इस सम्बन्ध में होस्टल में बदनाम तो हैं। एक-दो बार इन्हें चन्द्रशेखर ने मना भी किया था।"

प्रिंसिपल—चन्द्रशेखर कहाँ है—उसे बुलाओ। चन्द्रशेखर की तलाश हुई; पर उनका पता ही न लगा। वह निरंजन के विरुद्ध गवाही देना नहीं चाहते थे, इस कारण टल गए थे। अन्त में प्रिंसिपल ने कहा—अच्छा, इतना काफी है—चन्द्रशेखर की गवाही की आवश्यकता नहीं।

यह कहकर उन्होंने बाबू साहब से कहा—आप तशरीफ़ ले जायँ, मैं इसे काफ़ी सज़ा दूँगा।

बाबू साहब—कृपा करके आप इन्हें उस कमरे से अवश्य हटा दीजिएगा।

प्रिंसिपल—केवल कमरे से ही नहीं, मैं कालेज और होस्टल दोनों से हटा दूंगा।

प्रिंसिपल साहब ने ऐसा ही किया—निरंजनलाल को अपने कालेज से सदैव के लिए निकाल बाहर किया।

† † † †

एक वर्ष पश्चात् चन्द्रशेखर एक कार्यवश उसी नगर में गए जिस नगर में कि निरंजनलाल रहते थे और निरंजनलाल के मकान पर पहुँच कर उनसे उन्होंने भेंट की।

चन्द्रशेखर ने पूछा—कहो आजकल क्या करते हो?

निरंजनलाल—यहाँ एक बैंक में नौकरी करता हूँ—अस्सी रुपये मासिक पाता हूं। क्या सोचता था और क्या हो गया।

सोचता था बी० ए० पास करके वकालत की डिग्री प्राप्त करूँगा परन्तु भाग्य में तो यह बदा था।

चन्द्रशेखर—क्या वास्तव में आपने ढेले नहीं फेंके थे?

निरंजनलाल—ईश्वर को साक्षी करके कहता हूँ कि मैंने ढेला फेंकना कैसा कभी खिड़की खोल कर देखा भी नहीं—मैं तो इसे घोर पाप समझता था। ढेले, जहाँ तक मैं समझता हूँ मनोहरसिंह ने फेंके थे। उससे मुझसे एक दिन झगड़ा हुआ था और उसने कहा था कि समझूंगा। हजार दर्जे तो यह उसी का काम है। उसी ने सबसे पहले स्वयँ प्रिंसिपल से मेरी झाँका-ताकी करने की बात भी कही थी।

चन्द्रशेखर—मैं जानता था कि कदाचित् मुझसे भी पूछा जाय, इसीलिये मैं लापता हो गया था, क्योंकि न तो मैं झूठ बोलना चाहता था और न तुम्हारे विरुद्ध कुछ कहना चाहता था।

निरंजनलाल—हाँ, भाई तुमने तो मित्रता का हक़ अदा किया।

चन्द्रशेखर—मैं मना करता रहा; पर तुम अपने तर्क के आगे न माने—अब तो तुम्हारी समझ में आया कि वह पाप था।

निरंजनलाल—हाँ, निःसन्देह पाप था, पाप न होता, तो ऐसा परिणाम क्यों होता? उसी की बदौलत मेरी और मनोहर सिंह की शत्रुता हुई और उसने यह कांड कर डाला।

चन्द्रशेखर—तुम आजकल बहुत दुबले हो रहे हो, मुख पीला पड़ गया है और आंखें गड्ढे में चली गई हैं—क्या बात है? निरंजनलाल ने सिर झुका कर कहा—क्या बताऊँ सब उसी पाप का फल है।

चन्द्रशेखर—इसका क्या तात्पर्य?

निरंजनलाल—क्या कहूँ कहते शर्म लगती है।

चन्द्रशेखर—मुझसे तो कहना ही पड़ेगा।

निरंजनलाल—उसी झाँका-ताकी में ऐसे अवसर भी आ जाते थे, जब कामोद्दीपन होता था—उसे शान्त करने का कोई उपाय न था, इसलिए प्रमेह हो गया—वही अब तक पीछा पकड़े है। चिकित्सा हो रही है—अभी तक तो कोई लाभ हुआ नहीं।

चन्द्रशेखर—बड़े दुःख की बात है—जिसे तुम समझते थे कि उससे किसी को हानि नहीं पहुंचती, उससे तुम्हीं को कितनी हानि पहुंची।

निरंजनलाल—बुरे काम का फल मिलता अवश्य है—चाहे शीघ्र मिले चाहे देर में। इसमें जरा भी मिथ्यावाद नहीं है।

खून

दोपहर का समय था। गांव के मुखिया बरजोरसिंह भोजन करके अपनी चौपाल में बैठे कुछ आदमियों से बातें कर रहे थे। इसी समय एक व्यक्ति सम्मुख आकर खड़ा हो गया। बरजोरसिंह ने उसकी ओर देखकर पूछा—"क्या है कामता कैसे आये ?"

कामता बोला—"काका, आप ही के पास आये थे, अब तो गांव में बड़ा अन्धेर होने लगा।"

मुखिया ने मुस्कराकर पूछा—"कैसा अन्धेर ?"

"काका चल के देखो तो पता लगे।"

"क्या बात है, कुछ बताओ तो।"

"लल्लूसिंह ने हमारे खेत की तरफ़ अपनी मेंड़ बढ़ा ली है, हमारी कोई बित्ता भर ज़मीन अपने खेत में मिला ली है।"

"अच्छा फिर ?"

"फिर क्या, उनसे कहा तो लड़ने को तैयार हो गये। वैसे चाहे हम न भी बोलते; पर मेंड़ पर एक शीशम का पेड़ है। बड़ा अच्छा पेड़ है; वह उन्होंने अपनी हदमें कर लिया—वैसे हमारी हद में था।"

मुखिया के पास एक दूसरा व्यक्ति बैठा था; वह बोल उठा—"लल्लूसिंह अब बहुत बढ़ चले हैं—उनके मारे कोई गाँव में न रहने पायेगा। उस दिन हमारे जानवर काँजीहौस में हाँकने जा रहे थे। वह तो कहो हम वख्त पर पहुंच गये, नहीं तो चार-छः रुपये की ठुक जाती।"

"तुम्हारे जानवर काँजीहौस में क्यों हांके दे रहे थे?"

"काका तुम जानते ही हो, जानवर खेतों में घुस ही जाते हैं। ऐसा गाँव में कौन है जिसके जानवर कभी खेतों में न घुसे हों? तीन-चार दिन की बात है, मुनुवा अहीर की भैंस हमारे खेत में घुस गई। रात भर मजे में चरती रही। सबेरे हमने देखा तो अटल बनी खड़ी थी। कलेजा धक से हुआ, पर क्या करते। ऐसा हो ही जाता है। सो कहीं हमारी दो गायें उनके खेतों में घुस गईं, बस उन्होंने हुक्म दे दिया कि काँजीहौस में हाँक आओ। उनका आदमी लेकर चला ही था कि हम पहुंच गये। हमने उनसे कहा—'लल्लू दादा, आपको ऐसा न चाहिए।' बस काका मैंने इतनी सी बात कही कि वह तो आपे से बाहर हो गये। हमने उनके मुँह लगना ठीक न समझा; चुपचाप अपनी गायें लेकर चले आये। सो काका आजकल उनके दिमाग आसमान पर हैं।"

एक अन्य व्यक्ति बोला—"दिमाग़ आसमान पर हुआ ही चाहे; जमींदार से मेल है, पटवारी तो मानों उनका दामाद ही है। उनके मुकाबले इस वख्त गाँव में है कौन?"

कामता ने आवेशपूर्वक कहा—"सो इस धोके में न रहें;

टका धरेंगे पैसा उठावेंगे। दिल्लगी नहीं है—यह अंग्रेज राज है। एक दरख़्वास्त में पिड़ी बोल जायगी। पटवारी और जमींदार कोई काम न आयँगे।"

"अरे जब बोल जायगी तब देखा जायगा अभी तो तप रहे हैं।

"और पिड़ी क्या बोल जायगी ? वह क्या कुछ यों ही हैं। उनके पास आजकल पैसा है। मामूली आदमी नहीं है।" एक तीसरे व्यक्ति ने कहा।

कामता बोला—"अच्छी बात है। पैसा है तो चैताये देते हैं, फिर हमें दोष न देना। हमारी लल्लूसिंह की मुकदमेबाजी होगी यह बताये देते हैं। हम इन्हें ,हाईकोर्ट तक नहीं छोड़ेंगे, चाहे लोटा-थाली बिक जायँ।"

मुखिया ने कहा—"अरे नहीं, मुकदमेबाजी क्यों होगी; हम लल्लू को समझा देंगे।"

"कौन ? वह सगे बाप की माननेवाले नहीं हैं; इसकी हमें पक्की ख़बर मिल चुकी है।"

मुखिया ने उत्तेजित होकर कहा—"न मानेंगे तो सिर पर हाथ धर कर रोवेंगे भी।" फिर एक व्यक्ति की ओर देखकर कहा—"चतुरा, जरा जाके देख तो लल्लूसिंह कहाँ है ? मिलें तो बुला लाना; कहना जरूरी काम है।"

चतुरा उधर गया। इधर कामतासिंह ने कहा—"तो हम चलते है, काका।"

"क्यों ? लल्लू को बुलाया गया है उसे आ जाने दो।"

"हमारे सामने ठीक न होगा; वह लाल-पीले होंगे; हमसे रहा न जायगा; मुफ्त में लड़ाई हो जायगी। हम उनसे दबेंगे; नहीं।"

अन्य लोगों ने कामता की इस बात का समर्थन किया और मुखिया से बोले—"इनका टल जाना ही ठीक है। आप उनसे

अलग कहिए तभी ठीक होगा।"

मुखिया ने कहा—"अच्छा तो तुम जाओ।"

कामता चला गया।

कामता के जाने के थोड़ी देर बाद लल्लूसिंह अकड़ते हुए आये। उन्हें आते देख एक व्यक्ति मुखिया से बोला—"जरा चाल तो देखो, काका; धरती पर पैर ही नहीं धरते हैं।"

लल्लूसिंह आकर मुखिया के सम्मुख चारपाई पर बैठ गये और बोले—"क्यों काका, क्या हुक्म है?"

मुखिया ने कहा—"हमने सुना है तुमने कामतासिंह के खेतों की ओर अपनी मेंड़ बढ़ा ली है।"

लल्लूसिंह भौं चढ़ाकर बड़ी लापरवाही से बोले—"काका, कामता तो है बौड़म। उसको कुछ अक्ल-सहूर तो है नहीं। लोगों ने जैसा समझा दिया वैसा कहने लगा। हमें मेंड बढ़ाने से क्या परोजन (प्रयोजन)। आपके चरणों की दया से इस वक्त हमारे पास कोई पचास बीघा के करीब जमीन है। उनकी बित्ताभर जमीन से हमारा भला नहीं हो सकता। उन्हें जरूरत हो तो दो-चार बीघा हम उन्हें दे सकते हैं। यह तो भलमनसाहत की बातचीत है। और जैसी नंगई पर वह उतारू हैं वैसे ही हम भी करें तो हम कहते हैं कि हाँ दाब ली है; उन्हें जो करना हो सो करें। क्यों ननकू भाई, इसमें कोई बात ग़ैर तो नहीं है।"

ननकू भाई बोले—"नहीं भइया, इसमें क्या ग़ैर है, मामलेदारी की बात है।"

यह ननकू भाई वही थे जो अभी लल्लूसिंह के आने के पूर्व लल्लूसिंह की शिकायत बड़े जोरों से कर रहे थे।

मुखिया ने पूछा—"तुमने उनकी कुछ जमीन दाब ली है या नहीं यह बताओ।"

"जब वह कहते फिरते हैं कि दाब ली है तो दाब ली है।

हम कहें नहीं दाबी है तो हमारी कोई मानेगा ?"

"ठीक बात होगी तो मानी ही जायगी।"

"ठीक बात तो काका, यह है कि हमारी जमीन खुद कामता सिंह ने दाब ली थी। हमें यह बात मालूम नहीं थी। पटवारी ने हमें बताया कि तुम्हारी जमीन कुछ कामतासिंह ने दाब ली है सो वही इस साल हमने निकाल ली। बस इतनी बात है पटवारी झूँठ नहीं बोल सकता। क्यों ननकू भाई ?"

ननकू भाई इस समय चक्कर में पड़ गये। उनके हृदय में इतना साहस नहीं था कि लल्लूसिंह के मुख पर उनकी किसी बात का बिरोध करें। उन्होंने कहा-"यही बात है, लल्लू भाई।"

मुखिया—"यह अच्छी रही; वह कहता है लल्लू ने दाब ली यह कहते हैं उसने दाब ली थी। अब इसका निर्णय कैसे हो कि किस की बात ठीक है।"

लल्लूसिंह बोला—"हमें तो निर्णय कराने की जरूरत है नहीं। हमने तो जो कुछ किया है बहुत सोच-समझ कर किया है। अब जिसे निर्णय कराना हो वह जैसे चाहे वैसे करावे।"

"अरे भाइया, अदालत जाने से तो यह अच्छा है कि आपस में यहीं फैसला कर लो।"

"तो अदालत जाता कौन है? हमें अदालत जाने की जरूरत ?"

"पर कामता तो जायगा ?"

"कामता जायगा तो जाय, देख लेंगे। कोई कमजोर नहीं।"

मुखिया ने कहा—"हमारा समझाने का काम था सो समझा दिया ; अब आगे तुम जानो और वह जाने।"

लल्लूसिंह बोला—"अरे काका, तुम इस झगड़े में न पड़ो। अपने आराम से बैठे राम-भजन करो। हमारी उनकी बात है दोनों निपट लेंगे। उन्हें अदालत का शौक़ लगा है सो उनका शौक़ पूरा हो जाने दो। यहाँ क्या है हजार, पाँच सौ न सही—

पर वह किसी काम के न रहेंगे।"

मुखिया, "अच्छा भाई जैसी तुम्हारी मर्जी" कह कर चुप हो रहे।

(२)

"गांव का पटवारी छप्पर के नीचे अपने कागजाल फैलाये बैठा था। इसी समय कामतासिंह उसके पास पहुंचा। पटवारी ने उसे देखते ही मुस्कराकर पूछा—"कहो ठाकुर क्या हाल-चाल है ?" कामतासिंह बोला—"हाल-चाल क्या बतावें दीवान जी, लल्लूसिंह के मारे गांव में नहीं रहने पायेंगे।"

पटवारी बहुत हँसते हुए बोला—"क्यों, क्या हुआ ?"

कामतासिंह खूब हंसी हँस कर बोला–"अब इतने बनो नहीं; सब जान-बूझकर पूछते हो कि क्या हुआ ?"

खैर हम तो जानते ही हैं; तुम भी कुछ कहोगे ?"

"कहें क्या, लल्लूसिंह ने हमारा खेत दाब लिया है और जब उनसे कहा तो फौजदारी करने पर आमादा हो गये।"

"तो फिर क्या इरादे हैं ?"

"इसीलिये तो तुम्हारी सरन (शरण) आये हैं; जैसी सलाह बताओ वैसा करें।"

"पहले सलाह बताने की फीस तो सामने धरो। शहर में वकील लोग सलाह बताने के सैकड़ों-हजारों रुपये लेते हैं।"

"फीस भी मिलेगी, पहले बताओ तो।"

"यह हमारे गुरु ने नहीं पढ़ाया है। गँवार बड़ा गौं-यार होता है। काम निकल जाने पर बात नहीं करता।"

"अरे दीवान जी, ऐसा गजब न करो; हम उन गँवारों में नहीं हैं और फिर आपसे चालाकी करके रहेंगे कहाँ ?"

"सो तो सब ठीक है, पर हमारा खर्चा कैसे चले ?"

कामतासिंह ने टेंट से एक रुपया निकालकर पटवारी के सामने रख दिया।

पटवारी ने रुपये को देखकर मुँह बनाया और बोला—"ठाकुर यह रुपया उठा लो; लड़कों -बच्चों के काम आयेगा।"

"क्यों दीवान जी, ऐसी खफ़गी ?"

"शहर में वकीलों को सैकड़ों पूज आओगे, मगर हमें, जो रात-दिन तुम्हारा काम करते हैं, देते छाती फटती है।"

कामतासिंह ने म्लान मुख होकर एक रुपया और निकाला और पहले रुपये पर रखकर बोला—"बस, अब तो प्रसन्न हो ?"

पटवारी ने "ख़ैर तुम्हारी मर्ज़ी" कहकर रुपये उठा लिये और सामने रक्खे हुए हुक्के की निगाली पकड़ कर तीन-चार कश लेकर कहा—"इसमें तुम्हें अदालत करनी पड़ेगी—बिना अदालत लड़े काम नहीं बनेगा।"

सो तो हम पहले ही से जानते हैं। पर कोई ऐसी तरकीब बताओ कि बिना अदालत गये काम हो जाय।"

"सो भी हो सकता था, पर लल्लूसिंह माने तब ना सो वह मानने वाला नहीं है।"

"अदालत में तो बड़ा ख़र्च पड़ेगा।"

"सो तो पड़ता ही है। ख़र्च करने का मौक़ा भी है। चुप बैठे रहोगे तो आज को बित्ता भर दबाई है, कल वह बिसुवे दो बिसुवे दबा लेंगे।"

"यही तो हम भी सोचते हैं।"

"तो बस हमारी सलाह तो यह है कि दावा कर दो।"

"अच्छा यह बताओ कि हम जीत जायँगे ?"

"जीतोगे क्यों नहीं, जब तुम्हारी जमीन दबा ली है तब जीतने में क्या है।"

"पर उस दिन तो लल्लूसिंह मुखिया काका से कहते थे कि

यह उन्हीं की जमीन थी।"

"तुमने कभी दवा ली थी, यह बताओ?"

"हमने तो अपनी जान में कभी दबाई नहीं।"

"तो बस फिर लल्लूसिंह को कहने दो, उसके कहने से क्या होता है?"

कामतासिंह कुछ सोचकर बोला—"तो दावा ही करना पड़ेगा?"

"और क्या? फ़ौजदारी करने का बूता हो तो फ़ौजदारी करो।"

"बूता तो सब कुछ है; पर यही सोचते हैं कि सजा-बजा खा जाये, तो बाल-बच्चे भूखों मरेंगे।"

"सो तो बनी-बनाई बात है।"

"तो फिर अच्छी बात है" कह कर कामतासिंह चलने को उद्यत हुआ। पटवारी ने कहा—"लेकिन एक बात का ध्यान रखना किसी से हमारा नाम मत लेना कि उन्होंने दावा दायर करने को कहा है। हम सरकारी मुलाजिम ठहरे। हमको ऐसी सलाह-बलाह देने का हुक्म नहीं है, यह तो तुम्हारे मेल के कारण हमने इतना बता दिया।"

कामतासिंह बोला—"स। तुम बेखटके रहो। हमसे ऐसी गलती नहीं होने पायेगी।"

इतना कह कर कामतासिंह चला गया। इधर पटवारी ने मुस्करा कर हुक्के की निगाली मुँह से लगाई।

कामतासिंह के जाने के दस मिनिट बाद लल्लूसिंह आया। लल्लूसिंह को देख कर पटवारी मुस्करा कर बोला—"आओ ठाकुर!"

लल्लूसिंह बैठते हुए बोला—"क्या अभी आपके पास कामता आया था?"

"हाँ, आया था।"

"क्या कहता था ?

"यही पूछ रहा था कि इस मामले में क्या करें, सो हमने कह दिया भाई जो तुम्हारी समझ में आवे सो करो। हमारे हिसाब से तो वह लल्लूसिंह की जमीन है, आगे अदालत जो करे सो ठीक है।"

"तब फिर क्या बोला ?"

"बोला क्या, यही कहने लगा कि तब तो अदालत ही करनी पड़ेगी।"

"अदालत तो वह लड़ेगा, यह हम जाने बैठे हैं। पर यह तो बताओ कि हमारा मामला कमजोर तो नहीं रहेगा।"

तुम तो हो पागल ! कमजोर कैसे रहेगा ? तुम्हारी जमीन है, तुमने ले ली।"

"तब फिर कोई चिन्ता नही, एक नहीं हजार बार अदालत करे।"

"पर एक बात हम बताये देते हैं कि हमारा नाम मत लेना। हमने जो बात तुम्हें बताई है उसे बताने का हमें सरकार की तरफ से हुक्म नहीं है। हमने खाली तुम्हारे मेल-मुरव्वत के कारण बता दी। अगर तुमने किसी से कह दिया और हाकिम परगना को खबर लग गई तो हम पर तो दाब पड़ेगी ही, तुम भी फँस जाओगे।"

"नहीं दीवानजी, ऐसा क्या मैं बच्चा हूँ ?"

"यह तो मैं भी समझता हूँ; पर हमारा काम कह देने का है सो हमने कह दिया।"

"एक बात और बतावें—शायद जमींदार या मुखिया तुम से कहें कि जरीब से नाप कर फैसला कर लो तो तुम मत मानना, इसमें तुम्हें नुक्सान रहेगा।"

"सो कैसे ?"

"बात यह है कि बन्दोबस्त के समय तुम्हारे खेत का रकबा अधिक था, बीच में न जाने कैसे कम का इन्दराज हो गया। सो वह तो इस समय जो इन्दराज कागजात में मौजूद है उसके हिसाब से नाप-तौल करेंगे; उसमें तुम्हें वह जमीन वापिस करनी पड़ेगी। और जो मामला अदालत में चला गया तो वहाँ पूरी जांच-पड़ताल होकर फैसला होगा। उसमें तुम्हारी जीत रहेगी।"

लल्लूसिंह ने कृतज्ञता का भाव दिखाकर कहा—"यह आपने अच्छा बता दिया। अब कुछ चिन्ता नहीं।"

"कैसी-कैसी बातें तुम्हें बताते हैं यह तो देखो। ये बातें सैकड़ों रुपये खर्च करने पर भी न मालूम होतीं।"

"सो तो यह आपकी दया है, मेहरबानी है।"

"खाली दया कह देने से काम नहीं चलता। सवेरे का समय है; बोहनी तो कराओ।"

लल्लूसिंह ने दाँत निकाल कर कहा—"उस दिन तो दस रुपये दे चुका हूँ।"

"अरे वह दस रुपये तो खाली शीशम के पेड़ की निछावर है। इतना अच्छा और पुराना पेड़ है। साथ में इतनी जमीन मिली। उन दस रुपयों को भूल जाओ। आज जो यह नुक्ता बताया है इसका भी तो कुछ मिलना चाहिए।"

लल्लूसिंह ने दो रुपये निकाल कर सामने रखे।

पटवारी राम मुँह बिगाड़ कर बोले—"बस, इन्हीं बातों से जी जलता है। हजारों रुपये खर्च कर देते तब भी यह बात न मालूम होती; दो रुपये दिखाते हो। इसी से तो कहा है—"घर का जोगी जोगड़ा, आन गाँव का सिद्ध।"

"अच्छा ये तो रक्खो, दो रुपये और देंगे।"

"दे देने का झगड़ा मैं नहीं पालता।"

"इस समय तो और है नहीं।"

"तो जाकर घर से ले आओ।"

"अरे भाई, दे देंगे और आज ही दे देंगे, इतना तो विश्वास करो।

"अच्छी बात है; पर दो नहीं तीन और देना; कम नहीं लेंगे।"

"अच्छा तीन ही ले लेना। बस, अब तो खुश हो?"

(३)

जमींदार साहब अपने विशाल भवन के आँगन में बैठे थे। उनके समीप तीन-चार गाँव के प्रतिष्ठित व्यक्ति बैठे हुए थे। इसी समय पटवारी राम आये और जमींदार साहब को प्रणाम करके एक खाली मोढ़े पर बैठ गये।

जमींदार ने मुस्कराकर पूछा—"कहो दीवान जी, क्या समाचार हैं?"

"समाचार सब अच्छे हैं; आपसे कुछ जरूरी बात करनी थी।"

"क्या इसी समय?"

"हाँ।"

"अच्छा तो इधर आजाओ" कहकर जमींदार साहब उठे और एक कमरे की ओर चले। पटवारी भी उनके पीछे-पीछे चला। कमरे में पहुंच कर जमींदार ने पूछा—"कहो क्या बात है?"

पटवारी बोला—"यह तो आपने सुना ही होगा कि लल्लूसिंह ने कामतासिंह की कुछ जमीन अपने खेत में मिला ली है, उसी झगड़े का फैसला कराने के लिए लोग आपके पास इस समय आ रहे हैं। सो आप कह देना कि हम कुछ नहीं जानते, अदालत में जाओ।"

"तो फ़ैसला क्यों नहीं कर देते ? कौन बड़ा मामला है, जरीब लेकर दोनों का रक़बा नाप लो और जिसकी जमीन निकले उसे दिला दो। उनके सैकड़ों रुपये क्यों बरबाद कराते हो?"

"वे दोनों इसी क़ाबिल हैं। लल्लूसिंह के पास रुपया बहुत बढ़ा है; वह अपने आगे किसी को समझता नहीं। दो-एक बार उसने आपकी शान में भी कुछ बेजा बातें कही हैं। इसलिये कटने-मरने दो और चुपचाप तमाशा देखो। कामतासिंह भी थोड़ा नहीं है; एक ही विष की गाँठ है। इनको सीधा करने की यही तरकीब है कि जो कुछ थोड़ा-बहुत है वह अदालत में ठण्डा करा दो; बस सीधा हो जायँगे। और इसके अलावा हमारा भी कुछ भला हो जायगा, हमारे कुछ भैंसे थोड़े ही लगती हैं। थोड़ी सी आपकी मदद की जरूरत है।"

"अगर यह बात है तो हम न बोलेंगे; हम तो तुम्हारे भले के साथी हैं।"

"भगवान् आपके बाल-बच्चे सुखी रक्खें। हमारा तो काम ऐसे ही चलता है। सीधी तरह कौन देता है। वैसे आप यह तो कहिए ही कि फ़ैसला कर लो, क्योंकि आप ऐसा न कहेंगे तो जरा देखने में बुरा लगेगा। आपकी बदनामी होगी। सो ऐसा हम नहीं चाहते कि आपकी बदनामी हो। दो-एक बार कहिएगा, अधिक दवाब न डालिएगा। बस इतना हम चाहते हैं।"

"अच्छी बात है !"

दोनों बाहर आकर अपने-अपने स्थान पर बैठ गये। थोड़ी देर बाद सबसे पहले गाँव के मुखिया आये। जमींदार ने उन्हें आदर-पूर्वक बिठाया और पूछा—"कहो ठाकुर, इस समय कैसे कष्ट किया ?"

मुखिया बोले—"आप ही के पास आये हैं, सरकार ! एक फ़ैसला कर दीजिए। कामता और लल्लू का एक झगड़ा है सो

दोनों अदालत जाने पर तैयार हैं। आप बीच में पड़ कर फ़ैसला कर दें तो दोनों के सैकड़ों रुपये बच जायँगे। आप जो कह देंगे उसे वे मान लेंगे, दूसरे की तो सुनते नहीं। मैं दोनों को बुला आया हूँ। खुद समझाकर हार गया, मेरी तो मानते नहीं। रुपया बढ़ा है, सो उछल रहे हैं।"

एक दूसरे सज्जन बोले—"न कहीं रुपया बढ़ा है, न कुछ; दो चार सौ पेट काट-काट कर जमा किये होंगे, सो अदालत की एक ठोकर में बिला जायँगे।"

"परन्तु वे दो-चार सौ में ही आसमान पर चढ़ने लगे।"

पटवारी राम इस प्रकार चुपचाप बैठे थे, मानों उन्हें इस झगड़े से कोई मतलब ही नहीं है।

थोड़ी देर में कामता और लल्लूसिंह भी आ गये और जमींदार तथा मुखिया को अभिवादन करके बैठ गये।

जमींदार ने पूछा—"तुम दोनों का क्या झगड़ा है?"

लल्लूसिंह ने संक्षेप में बता दिया।

जमींदार ने कहा—"यह तो कोई बड़ी बात नहीं है, इसका फ़ैसला तो जरीब से हो सकता है। जरीब से नाप कर देख लो, जिसकी निकले वह ले लो।"

लल्लूसिंह ने कहा—"अन्नदाता, इसका फ़ैसला जरीब से नहीं हो सकता। इसका फ़ैसला तो अदालत ही से होगा।"

पटवारी—"हमारे पास जरीब, नक्शा, खसरा सब मौजूद हैं, यहाँ भी फ़ैसला हो सकता है। खसरे में खेतों का जो रक़बा दिया हो उसके हिसाब से दोनों नाप कर तय कर लो।"

लल्लूसिंह बोला—"सरकार, उसमें ऐसा पेंच है कि वह यहाँ किसी तरह तय नहीं हो सकता। वैसे आप हमारे मालिक हैं, जो हुकुम दें तो अपना घर लुटादूँ; आपका हुकुम कभी न टालूंगा; पर यह झगड़ा यहां तय न होगा।"

ज़मींदार साहब ने पटवारी राम की ओर देखकर पूछा, क्या ऐसी बात है दीवानजी ?"

दीवानजी बोले—"हाँ, मामला तो पेंचदार है, सरकार ! यहाँ तय होना कठिन ही है ! वैसे आप जो हुकुम लगा देंगे वह तो इन्हें मानना ही पड़ेगा।"

ज़मींदार ने मुँह बना कर कहा—"नहीं, यदि ऐसी बात है तो हम दख़ल नहीं देंगे, अपना अदालत से निपटारा कराओ।"

कामतासिंह खड़ा हो गया और हाथ जोड़ कर बोला—"अच्छा तो दीनानाथ, मेरी एक अरज़ है; और वह यह है कि आप किसी की तरफ़दारी न करें, न मेरी न इनकी, हम और यह निबट लेंगे।"

ज़मींदार ने कहा—"हमें तरफ़दारी करने से मतलब ? हमारे लिए जैसे तुम वैसे वह।"

"बस, सरकार, यही मैं भी चाहता हूँ, अब हम इन्हें देख लेंगे।"

लल्लूसिंह बोला—"तुम बेचारे क्या देख लोगे ? तुम्हारी हस्ती क्या है ?"

कामता भी उत्तेजित होकर बोला—"तो तुम क्या समझे हो। हलुवा नहीं है जो निगल जाओगे। दाँत खट्टे कर दूंगा। किसी धोखे में मत रहना। ऐसा अन्धेर ! दूसरे की जगह-ज़मीन दाब लें और ऊपर से तेहा दिखावें। अदालत में घसीटूंगा, तब जान पड़ेगा।"

पटवारी राम बड़ी गम्भीरता से बोले—"अच्छा यहां सरकार के सामने गड़बड़ तो करो नहीं, लड़ना हो तो बाहर जाकर लड़ो।"

इसके बाद कामतासिंह और लल्लूसिंह चले गये।

जमींदार बोले—"ये बिना अदालत किये नहीं मानेंगे।"

मुखिया बोले—"न मानें तो मरें, अपने को क्या! हम तो चाहते थे कि क्यों दोनों का रुपया मिट्टी हो।"

एक अन्य सज्जन बोले—"अदालत में जाकर दोनों शुद्ध हो जायँगे।"

"सो तो हो ही जायँगे, इसमें सन्देह क्या है ?"

(४)

कामतासिंह तथा लल्लूसिंह में मुक़दमेबाज़ी चली। पहली अदालत ने कामतासिंह के पक्ष में फ़ैसला दिया। लल्लूसिंह हार गये। वकीलों ने अपील करने के लिये उभारा और उसे विश्वास दिलाया कि अपील से वह अवश्य जीतेंगे। इधर लल्लूसिंह भी देहाती नीति के अनुसार बात और मूँछ के फेर में पड़ गये। मुक़दमा हार गये, बड़ा गजब हो गया। अपील अवश्य होनी चाहिए और किसी न किसी प्रकार मुक़दमा जीतना चाहिये। नहीं तो बात मिट्टी हो जायगी, मूंछ झुक जायगी। लोगों के पूछने पर कि क्यों भई, लल्लूसिंह, क्या इरादे हैं ?' लल्लूसिंह अकड़ कर उत्तर देते थे—"इरादे क्या हैं, अपील होगी। एक हाकिम का फैसला भी कोई फैसला है। और सच पूछो तो मुक़दमेबाज़ी अब आरम्भ हुई है। प्रयागराज तक पहुँचाऊँगा ; मजाक़ नहीं है। इसी बहाने त्रिवेणी-स्नान हो जायगा।"

इधर पटवारी राम ने भी, जो बीस-पच्चीस तो पहले ही खा चुके थे और मुक़दमे के मध्य में भी दोनों पक्ष से दस बीस वसूल कर चुके थे, कामतासिंह को मुक़दमा जीतने पर बधाई दी और बोले—"देखो हमने क्या कहा था, दावा दायर करके ही काम बना।"

कामतासिंह हाथ जोड़ कर बोला—"हाँ, आपने तो कहा था, आपकी सलाह बहुत उत्तम रही।"

"फिर अब मिठाई खिलवाओ।"

कामतासिंह ने दो रुपये पुनः भेंट किये।

इधर लल्लूसिंह से साक्षात् होने पर पटवारी राम बोले—"लल्लू, अपील जरूर करना, कच्चे न पड़ जाना, अपील से तुम्हारा मामला अवश्य बहाल होगा।"

लल्लूसिंह बोले—"अपील तो जरूर होगी। मगर दीवानजी, आप तो कहते थे कि बन्दोबस्त के काग़ज़ात में हमारी ज़मीन का रक़बा शीशम के पेड़ से दिया हुआ है।"

दीवानजी बोले—"सो तो दिया हुआ है, पर हाकिम ने तो बन्दोबस्त के काग़ज़ात निकलवा कर देखे बिना फ़ैसला दे दिया। उन्होंने बारहसाला क़ानून क़ायम रक्खा।"

"बारहसाला क़ानून कैसा ?"

"अगर किसी ज़मीन पर किसी आदमी का कब्ज़ा व मालिकाना बारह साल से अधिक रहा है तो वह उसका मालिक हो गया।"

"यह अच्छा कानून है।"

"हाँ, और क्या। तुम अपील करो, अपील से तुम्हारा मामला बहाल होगा।"

"अपील तो करनी ही पड़ेगी ; अब तो बात अटक गई है।"

इस प्रकार पटवारी तथा कुछ अन्य लोगों ने लल्लूसिंह को बढ़ावा देकर अपील दायर करा दी।

अशिक्षित देहाती लोग स्वयं तो क़ानून के पेंच को कम समझते हैं—अधिकतर वकीलों के भरोसे रहते हैं। वकील भी ईश्वर की दया से इतने आशावादी होते हैं कि मुर्दे को जिलाने का बीड़ा उठा लेते हैं। कैसा ही निर्जीव मामला क्यों न हो, वकील महोदय यही कहते रहेंगे कि इसमें शर्तिया जीत होगी। एक अदालत में हारे तो बोले—"यह हाकिम बेवकूफ़ है। अपील

करो शर्तिया जीतोगे।" अपील में हारे तो हाईकोर्ट में जीतने का सब्ज़ बाग़ दिखाया। इस प्रकार मवक्किल अपने भाग्य से चेत जाय और बैठ रहे तो दूसरी बात, अन्यथा वकील महोदय लड़ा-लड़ाकर सफ़ाया कर देते हैं। लल्लूसिंह की भी यही दशा हुई। एक तो वह स्वयं 'बात' के फेर में पड़ा हुआ था, इस पर गाँव के आदमियों ने और वकीलों ने खराद पर चढ़ा दिया। परिणाम यह हुआ कि लल्लूसिंह हाईकोर्ट तक लड़ गया। अन्त में जब हाईकोर्ट से भी हारा तब उसकी आँखें खुलीं। परन्तु, अब क्या होता है। घर में जो पूंजी थी वह सब निकल गई, ऊपर से कुछ ऋण हो गया। कामतासिंह भी ऋणी हो गया। क्योंकि अंग्रेजी अदालत में मुद्दई और मुदालेह दोनों की खाल खींची जाती है। कोई व्यक्ति चाहे आरम्भ से जीतता चला आया हो; परन्तु यदि विपक्षी अपील करता है तो मुदालेह को जवाब-देही करना ही पड़ती है।

× × ×

शाम का समय था। ज़मींदार साहब टहलने के लिए निकले थे। साथ में एक चौकीदार, पटवारी तथा गाँव के दो अन्य व्यक्ति थे। हठात् सामने से एक व्यक्ति चरी का गट्ठर सिर पर रक्खे हुए निकला। यह व्यक्ति मैले तथा फटे कपड़े पहने हुए था, शरीर धूल-धूसरित हो रहा था। ज़मींदार के सामने जब वह पहुंचा तो बोला—"जोहार मालिक!" ज़मींदार ने केवल सिर हिला दिया। जब वह थोड़ी दूर निकल गया तो ज़मींदार ने पूछा—"यह कौन था भाई।"

पटवारी हँसकर बोला—"इसे नहीं पहचाना? यह लल्लूसिंह था।"

ज़मींदार ने आश्चर्य से कहा—"अच्छा, यह लल्लूसिंह था! अब तो सूरत ही बदल गई।"

पटवारी ने कहा—"और क्या, पहले भी इन्हें कभी चरी का बोझ लादे देखा था। बालों से तेल बहा करता था; हर समय चिकने-चुपड़े रहते थे। अब देखिए, हुलिया बिगड़ गया, पहचान ही नहीं पड़ते।"

"कामता की क्या दशा है?" जमींदार ने पूछा।

"वह भी दुर्दशा को प्राप्त हो गये।" एक दूसरे व्यक्ति ने कहा।

"परन्तु मुक़द्मा तो जीत गया?"

"सो मिला क्या? एक शीशम का पेड़ मुश्किल से बीस रुपये का होगा, खर्च सैकड़ों ो गये!"

जमींदार ने दीवानजी की ओर देख कर कहा—"वाहरे दीवानजी, एक ज़रा से लटके में दोनों को दुरुस्त कर दिया।"

दीवानजी बड़े गर्व से बोले—"अब चार-छः बरस के लिए छुट्टी है। अब पता नहीं लगेगा कि गांव में हैं या नहीं। पहले गाँव भर को सिर पर उठाये हुए थे।"

इतना कह कर पटवारी ने कहकहा लगाया। जमींदार साहब भी खूब हँसे।

जिस समय ये दोनों नर-पिशाच अपने अट्टहास से संध्या-कालीन नीरवता का वक्षःस्थल विदीर्ण कर रहे थे, उसी समय दिन के थके हुए दो प्राणी, जिनमें एक को लोग अब तक विजय बधाई दे रहे थे, अपने उस पिछले समय को—जब कि इतना कठिन परिश्रम नहीं करना पड़ता था, जब कि उनके बालबच्चों को रोटी-कपड़े का अभाव नहीं था, जब कि उन्हें किसी का ऋण चुकाने की चिन्ता नहीं थी—याद करके अपने अश्रु-बिन्दुओं से भारत माता का वक्षःस्थल विदीर्ण कर रहे थे।

विश्वास

(१)

'स्वराज्य-सोपान'–नामक दैनिक समाचार-पत्र के संपादक अपने कमरे में बैठे हुए अपनी सम्पादकीय डाक देख रहे थे। उसी समय चपरासी ने उनका एक कार्ड लाकर दिया। कार्ड को देखकर सम्पादक ने कहा—"उन्हें भेजो।"

चपरासी चला गया। थोड़ी देर पश्चात् एक खद्दरधारी युवक कमरे में प्रविष्ट हुआ। सम्पादक को देखकर उसने दोनों हाथ जोड़कर 'वन्दे' कहा। सम्पादकजी मुस्कराकर बोले–"आइए शुक्लजी, आप कब पधारे?"

युवक कुरसी पर बैठता हुआ बोला—"कल शाम को आया था।"

सम्पादक जी बिस्मय का भाव दिखाते हुए बोले–"अच्छा! ठहरे कहाँ?"

"एक धर्मशाला में ठहर गया हूँ।"

"यह क्यों, यहीं क्यों न चले आए?"

"बात यह है कि कल समय बहुत हो चुका था। मैंने सोचा, आफ़िस बन्द हो गया होगा।"

"आफ़िस बन्द हो गया था, तो क्या खुल नहीं सकता था ?"

"हाँ, खुल तो सकता था ; परन्तु मैंने सोचा, क्यों असुविधा उत्पन्न करूँ।"

"असुविधा की कौन बात थी—"ख़ैर ! अब आप यहाँ आ जाइए। यहाँ दो कमरे बिलकुल खाली पड़े हैं। आप उन्हीं में डेरा जमाइए।"

"अच्छी बात है।"

"तो असबाब कब लाओगे ?"

"आज किसी समय ले आऊँगा। आप कहां रहते हैं ?"

"मैं भी निकट ही रहता हूँ—"यहां से पाँच मिनट का रास्ता है।"

"तब तो बड़ा अच्छा है।"

"और कोई बात ?"

"बस, और कौन बात है। कल से कार्य आरम्भ करूँगा।"

"कल से आरम्भ करना चाहे परसों से, कोई जल्दी नहीं है, दो-एक दिन आराम कर लो।"

"आराम तो करता ही था। आराम से तबियत ऊबी हुई है। काम करने को जी चाहता है।"

सम्पादक जी हँस कर बोले—"यह बात है ? अच्छा, तो जब से इच्छा हो, तब से आरम्भ कर दो।"

"कल ही से करूँगा।"

"कल ही से सही।"

× × × ×

शुक्ल जी उसी दिन सन्ध्या-समय सी० आई० डी० इन्स-

पेक्टर के पास पहुँचे। इन्सपेक्टर ने उन्हें एकान्त में ले जाकर पूछा—"आप कब आये?"

शुक्लजी ने कहा—"मैं कल आया था।"

"मेरा पत्र आपको मिल गया था?"—इन्सपेक्टर ने पूछा।

"जी हाँ, उसी के अनुसार मैंने यहाँ आना निश्चित किया।"

"अच्छा तो यहाँ आपको क्या करना होगा, यह तो आप जानते ही हैं।"

"जी हाँ, उसमें से पहला काम तो मैं पूरा कर चुका।"

"कौन-सा?"

"मैंने 'स्वराज्य-सोपान' में सहकारी सम्पादक का स्थान प्राप्त कर लिया।"

"अच्छा! शाबाश, तब फिर अन्य बातें सरल हो गईं।"

"जी हाँ।"

"मैं एक बार फिर समझा दूं।—आप सम्पादक पर अपनी दृष्टि रखिये। उनके विचार कैसे हैं, उनके पास कौन-कौन आदमी आते हैं, उनका पत्र-व्यवहार किनसे होता है और किस सम्बन्ध में होता है, इसका पता रखिएगा। सम्पादक जी जब कभी, बाहर जायँ, तो इस बात का पता लगा कर कि वह कहाँ जा रहे हैं, उसकी सूचना तुरन्त मुझे या मेरे सहकारी को—जो उस समय यहाँ मौजूद हो—दीजिए। इनके अतिरिक्त और जो कुछ आप अपनी बुद्धि और समझ से कर सकें, वह कीजिएगा।"

"बहुत अच्छा।"

"एक बात का ध्यान रखिएगा। अपना भेद किसी भी व्यक्ति को, चाहे वह आपका कितना ही घनिष्ट मित्र क्यों न हो, कभी मत दीजिएगा। सी० आई० डी० विभाग का पहला सिद्धान्त यह है कि अपने अफ़सरों तथा सहकारियों के अतिरिक्त अन्य किसी भी व्यक्ति को कभी अपना भेद न दे, चाहे वह अपना

मित्र हो अथवा रिश्तेदार !"

"ये बातें मैं समझता हूँ।

"समझने को तो बहुत से लोग समझते हैं, पर उनके अनुसार कार्य नहीं करते। बहुतेरे तो इतने गधे होते हैं कि अपने को सी० आई० डी० का आदमी प्रकट करने में कुछ गर्व का अनुभव करते हैं। इस काम में सफलता तभी मिलती है, जब कि किसी को आपके असली व्यक्तित्व और इरादों का पता न चले।"

"बिलकुल ठीक है। आप निश्चिन्त रहें। जैसा आप कहते हैं, वैसा ही होगा।"

"तो बस, अब मैं निश्चिन्त हूँ। आप जब कोई आवश्यक बात हो—जैसे कोई नया आदमी सम्पादक के पास आवे और उस पर आपको सन्देह उत्पन्न हो अथवा कोई ऐसा पत्र मिले, जिसमें कोई सन्देह की बात हो, तो उसकी सूचना मेरे दफ्तर में दीजिएगा।"

"बहुत अच्छा।"

शुक्लजी चलने के लिए उद्यत हुए। इन्सपेक्टर ने खड़े होकर कहा—"यह तो शायद आपको मालूम ही है कि इस नगर में आपका सहकारी कोई नहीं है और मैं तथा मेरे सहकारी आपके अफ़सर हैं।"

यहाँ की स्थानीय सी० आई० डी०—।"

इन्सपेक्टर शुक्लजी का वाक्य पूरा होने के पूर्व ही बोल उठा "यहाँ की स्थानीय सी० आई० डी० से आपका कोई सम्बन्ध नहीं है। उनके लिये आप उतने ही अपरिचित हैं, जितने कि एक साधारण आदमी के लिये। आप केवल ये दो बातें याद रक्खें—एक तो यह कि आप यहाँ अकेले हैं—आपका कोई सहकारी नहीं है और मैं और मेरा सहकारी आपके अफ़सर हैं। यह मैं पहले बतला चुका हूँ कि अपना रहस्य अपने सहकारी

तथा अफ़सरों को छोड़कर किसी पर प्रकट न कीजिए—तो इससे क्या नतीजा निकला ?"

"यही कि आप और आपके सहकारी के अतिरिक्त यहाँ और कोई व्यक्ति ऐसा नहीं है, जिस पर मैं अपना व्यक्तित्व तथा अपनी नीति प्रकट करूँ ।"

"ठीक । अब आप अपना कार्य आरम्भ करें ।"

(२)

शुक्लजी को 'स्वराज्य-सोपान' में कार्य करते हुए तीन मास व्यतीत हो गए हैं । पत्र-सम्पादक शुक्लजी से यथेष्ठ स्नेह करने लगे हैं। संध्या समय कार्य से छुट्टी पाकर शुक्लजी बहुधा सम्पादकजी के घर पर पहुंच जाते हैं और बहुधा भोजन भी वहीं करते हैं । सम्पादकजी के दो छोटे बच्चे उनसे हिल गए हैं—शुक्लजी बहुधा उनको खिलाया करते हैं ।

एक दिन सन्ध्या-समय शुक्लजी सम्पादक के मकान पर पहुंचे । उन्होंने सम्पादकजी के कमरे में पहुंच कर आवाज़ दी—"शान्ति ! क्या कर रही है ?"

उनके आवाज़ देते ही एक पंचवर्षीय बालिका घर के भीतर से दौड़ी आई और 'चाचा-चाचा' कह कर उनसे लिपट गई । शुक्लजी ने उसे गोद में उठा लिया और बोले—"क्या कर रही थी ?"

लड़की ने कहा—"कुछ नहीं, बैठी थी ।"

"खाना खा लिया ?"

"हाँ ।"

"पिताजी क्या कर रहे हैं ?"

"नहा रहे हैं ।"

शुक्लजी बालिका को गोद में लिए बाहर आ गए । कमरे के सामने कुछ थोड़ी-सी खुली भूमि थी । वहाँ खूब पानी छिड़का

हुआ था और तीन-चार कुरसियां पड़ी हुई थीं। शुक्लजी एक कुरसी पर बैठ गए। बालिका थोड़ी देर पश्चात् भीतर चली गई। बालिका के भीतर जाने के पाँच मिनट पश्चात् सम्पादकजी बाहर आए और बोले—"कहिए शुक्लजी, क्या है?"

"कुछ नहीं, ऐसे ही चला आया।"

"भोजन कर चुके?"

"जी हाँ"

"न किया हो, तो यहां तैयार है—कर लो।"

"नहीं, मैं खा-पीकर आया हूँ।"

"अच्छा तो फिर बैठो, मैं भोजन करके अभी आता हूँ।"

"हाँ-हाँ, आप भोजन कर आइए—मैं बैठा हूँ।"

सम्पादकजी चले गए।

बीस मिनट के पश्चात् सम्पादकजी बाहर आए और शुक्लजी के पास कुरसी पर बैठ गए। नौकर ने पान दिए। पान खा कर सम्पादकजी पेट पर हाथ फेरते हुए बोले—"आज शाम की डाक से मुझे एक पत्र मिला है। उस पत्र के अनुसार मैं कल शाम को तीन-चार दिन के लिए बाहर जाऊँगा।"

शुक्लजी ढीले-ढाले बैठे थे। सम्पादकजी की बात सुनकर सजग हो गए। उन्होंने उत्सुकता-पूर्वक पूछा—"कहाँ जाइएगा?"

"बनारस जाऊँगा।"

"कुछ काम है?"

"हाँ, वहाँ मेरे एक सम्बन्धी हैं, उनके यहाँ विवाह है।"

"बच्चे भी जायँगे?"

"नहीं, बच्चों को ले जाना झंझट है। गरमी बहुत पड़ रही है—अकेला ही जाऊँगा।"

"अच्छी बात है, हो आइए।"

"मुख्य लेख और टिप्पणियाँ आपको लिखनी पड़ेंगी।"

"लिख लूँगा।"

"अन्य सब कार्य तो उपसम्पादक लोग कर ही लेंगे।"

"आप निश्चिन्त रहें, सब हो जायगा।"

"मुझे अधिक-से-अधिक चार दिन लगेंगे, जिसमें एक दिन के लिये अर्थात् परसों के लिये तो मैं मुख्य लेख दे ही जाऊँगा और हो सका, तो टिप्पणियाँ भी लिख दूंगा। शेष तीन दिन आपको सब लिखना पड़ेगा।"

"कोई बात नहीं, टिप्पणियाँ तो बहुधा मैं ही लिखता हूँ—रह गया केवल मुख्य लेख, सो तीन दिन की तो बात ही है। हाँ, लेख उतने अच्छे न होंगे, जितने आपके होते हैं।"

"नहीं, आप भी अच्छा लिखते हैं। आपने अभी तक दो मुख्य लेख लिखे, दोनों अच्छे थे।"

"अजी अभी मुझे लिखना-विखना आता ही कहाँ है—हाँ आपकी सेवा में कुछ दिन रहने का सुअवसर मिला, तो कुछ सीख जाऊँगा। कल किस ट्रेन से जाइयेगा?"

"रात में दस बजे के लगभग एक ट्रेन जाती है। उसीसे जाऊँगा।"

"आपके सम्बन्धी वहाँ किस मुहल्ले में रहते हैं?"

"ठठेरी बाजार में रहते हैं—क्यों?"

"मैं भी कुछ दिन बनारस में रहा हूँ। मैंने सोचा, कदाचित् मैं उन्हें जानता होऊँ।"

"वह कोई प्रसिद्ध आदमी तो हैं नहीं, साधारण आदमी हैं। बरतनों की दूकान करते हैं।"

"बरतन वाले तो कई मेरे परिचित हैं। उनका नाम क्या है?"

सम्पादकजी ने नाम बता दिया। शुक्लजी कुछ क्षण तक सोचकर बोले—"उन्हें मैं नहीं जानता।"

इसके पश्चात् थोड़ी देर इधर-उधर की बातचीत करके

शुक्लजी बोले—"अच्छा, तो अब जाता हूँ। टहलता हुआ आफ़िस चला जाऊँगा।"

"अच्छी बात है, जाओ। मैं भी अब ऊपर छत पर जाकर लेटता हूँ। आठ तो बजा होगा?"

शुक्लजी अपनी रिस्टवाच देखकर बोले—"हाँ, आठ बजके दस मिनट हुए हैं।"

वहाँ से चलकर शुक्लजी सीधे खुफ़िया-पुलिस-इन्सपेक्टर के पास पहुंचे। उन्हें देखकर, इन्सपेक्टर ने पूछा—"कहो, क्या समाचार है?"

"समाचार ये हैं कि कल सम्पादकजी बनारस जायँगे—दस बजे रात की गाड़ी से।"

"किस काम से जा रहे हैं?"

"उनका कथन तो यह है कि कोई विवाह है, उसमें जा रहे हैं।"

"कहाँ ठहरेंगे?"

शुक्लजी ने पूरा पता बता दिया।

इन्सपेक्टर ने कुछ देर चुप रहकर कहा—"तीन महीने आपको हो गए। आपने अभी तक कोई ऐसी बात न बताई, जिससे कुछ काम निकलता।"

"कोई ऐसी बात ही नहीं हुई, होती तो बताता।"

"हुई क्यों न होगी, पर जान पड़ता है, आपको पता नहीं चलता।"

"यह तो असम्भव है। मैं आफ़िस में ही रात दिन रहता हूँ। प्रत्येक आदमी को देखता रहता हूँ। जितनी चिट्ठियाँ आती हैं, उन्हें भी पढ़ता हूँ। केवल सम्पादक की व्यक्तिगत डाक मुझे पढ़ने को नहीं मिलती।"

"वही तो ख़ास चीज़ है।"—इन्सपेक्टर ने मेज़ पर हाथ मार

कर कहा।

"वह तो मुझे देखने को मिल ही नहीं सकती।"

"जरूरत उसे ही देखने की है। साधारण सम्पादकीय पत्रों में क्या धरा है?"

"देखिये, चेष्टा करूंगा।"

"इस विभाग में आपकी उन्नति तभी हो सकती है, जब आप कोई काम करके दिखाइएगा।"

"चेष्टा तो मैं ऐसी ही कर रहा हूँ।"

"आपको तीन महीने की मोहलत और दी जाती है। यदि इतने समय में आपने कोई काम न किया, तो फिर आपको यहाँ रखना व्यर्थ होगा। समझे?"

"हाँ, समझ गया। चेष्टा करूँगा।"

"अच्छी बात है—जाइए।"

(३)

सम्पादक जी के बनारस जाने के दो दिन पश्चात् शुक्ल जी महाराज पुनः इन्सपेक्टर के पास पहुंचे। इन्सपेक्टर ने उन्हें देखकर किंचित् उत्सुकतापूर्ण स्वर में कहा—"कहिए, कोई नई बात?"

शुक्लजी ने 'स्वराज्य-सोपान' का ताजा अङ्क उनके सामने रख दिया और कहा—"इसका मुख्य लेख पढ़ जाइए।"

इन्सपेक्टर ने मुख्य लेख पढ़ा। लेख पढ़ चुकने के पश्चात् उसने कहा—"लेख तो बहुत ही कड़ा है। इसके कारण तो सम्पादक निश्चय फँस जायगा।"

"तो बस, ठीक है। इसी लिये तो लिखा ही गया है।"

"किसने लिखा है?"

"मैंने।"

"अच्छा!"

"जी हाँ ! उस दिन आपने कहा था कि कुछ काम करके दिखलाओ, सो फ़िलहाल मुझे यही सूझा। सम्पादकजी बाहर गए हुए हैं। आजकल मैं ही लिखता हूँ। मैंने सोचा, यह अच्छा मौक़ा है।"

इन्सपेक्टर ने किंचित् मुस्कराकर कहा—"ख़ूब ! परन्तु इससे नतीजा ?"

शुक्लजी ने सोचा था इन्सपेक्टर उनकी इस कार्य-कुशलता पर बहुत प्रसन्न होगा; परन्तु जब उसने उपरोक्त प्रश्न किया, तो शुक्ल जी का मुंह उतर गया। उन्होंने लड़खड़ाती हुई जिह्वासे कहा—"नतीजा ?"

"हाँ, और क्या, इससे इसके अतिरिक्त और क्या होगा कि सम्पादक को साल-दो साल की सजा हो जायगी। बस !"

"और आप क्या चाहते हैं ?"

"खाली सम्पादक को जेल हो जाने से हमारा कार्य सिद्ध नहीं होता। हम तो यह चाहते थे कि हमें उनके उन साथियों और मित्रों का पता लगता, जिनके विचार राजविद्रोहात्मक हैं। सम्पादक के जेल चले जाने से यह बात न हो सकेगी।"

शुक्लजी हतबुद्धि होकर इन्सपेक्टर का मुंह ताकने लगे। इन्सपेक्टर ने कहा—"अब आप मेरा मतलब समझे ?"

शुक्लजी अपने शुष्क ओठों पर जिह्वा फेरते हुए बोले—"जी !"

कुछ क्षण तक सोच कर इन्सपेक्टर ने कहा—"ख़ैर, अब तो जो होना था हो गया। परन्तु अब भी आपके लिए यथेष्ट समय है। इस लेख के सम्बन्ध में सम्पादक को सजा होने में तीन-चार महीने लग जायँगे—सम्भव है, इससे अधिक भी लग जाय। अतएव आप अपना कार्य जारी रख सकते हैं।"

शुक्लजी की जान-में-जान आई। उन्होंने दाँत निकाल कर कहा—"हाँ, यह बात तो है। अभी तो काफ़ी समय है।"

× × ×

सम्पादकजी ने 'स्वराज्य-सोपान' का अंक मेज पर रखते हुए कहा—"लेख तो बहुत सुन्दर रहा, परन्तु कुछ बातें इसमें ऐसी आ गई हैं, जिन पर यदि सरकार चाहे तो मुक़दमा चला सकती है।"

शुक्लजी ने कहा—"चला सकती है तो चलावे, मैं इस बात से ज़रा भी भय नहीं खाता। मैं तो प्रत्येक समय जेल जाने के लिये तैयार रहता हूँ।

सम्पादक ने हँसकर कहा—"परन्तु इस मामले में तुम्हें नहीं, मुझे जेल जाना पड़ेगा।"

"क्यों?"—शुक्लजी ने अत्यन्त विस्मित होने का भाव दिखाते हुए पूछा।

"इसलिये कि पत्र का संपादक, प्रकाशक, मुद्रक, सब कुछ मैं ही हूँ।"

"परन्तु लेख तो मैंने लिखा है।"

"तो इससे क्या हुआ। प्रथम तो उसमें तुम्हारा नाम नहीं है, दूसरे उसका उत्तरदाता तो मैं ही हूँ।"

शुक्लजी ने सिर झुका लिया और बहुत सुस्त हो गए।

सम्पादक ने शुक्ल को प्रोत्साहित करने के अभिप्राय से कहा—"कोई अधिक चिन्ता की बात नहीं है। जो कुछ होगा, देखा जायगा।"

शुक्लजी रोनी सूरत बनाकर बोले—"यदि आप पर कुछ आँच आई तब तो मुझे बड़ा ही अफ़सोस होगा।"

"अफ़सोस होने की कौन-सी बात है। बहुत होगा, साल दो साल की सज़ा हो जायगी—सो काट आऊँगा। जब ओखली में सिर डाला, तो मूसल का क्या भय?"

"अजी, आप मुझे आगे कर दीजिएगा। मैं साफ़-साफ़ कह

दूँगा कि लेख मैंने लिखा है।"

"यह कैसे हो सकता है। प्रथम तो इससे मैं बच नहीं जाऊँगा, और यदि बच भी सकता, तब भी मैं ऐसा न करता। हमारी यह नीति नहीं है। और, हमारा ही क्या, किसी भी अच्छे सम्पादक की ऐसी नीति नहीं हो सकती।"

"तब तो बड़ा बुरा हुआ।"

"कुछ बुरा नहीं हुआ। जो कुछ हुआ, सब अच्छा हुआ।"

ऊपर से कहने को तो सम्पादकजी ने कह दिया; परन्तु मनमें वह शुक्लजी की इस नालायक़ हरकत पर बहुत ही कुढ़े, परन्तु अपना रोष उन्होंने इसलिये प्रकट नहीं किया कि कहीं शुक्लजी उन्हें भीरु तथा कायर न समझें।

इसी समय सम्पादकजी के एक मित्र आ गए। उन्होंने कमरे में प्रवेश करते ही कहा—"कल के अङ्क में तो बड़े ज़ोर का अग्र-लेख लिख मारा!"

सम्पादकजी किंचित् मुस्कराकर बोले—"आपको पसन्द आया?"

मित्र महोदय कुरसी पर बैठते हुए बोले—"मुझे ही क्या, सभी को पसन्द आया। आपको पता हो या न हो, कल हरकारों ने दूने दाम पर अङ्क बेचे हैं।"

सम्पादकजी का सारा रोष हवा हो गया। प्रसन्नता के मारे गद्-गद् होकर बोले—"अच्छा!"

"जी, लेख भी तो ग़ज़ब का लिखा है। मैंने तो उसे तीन-चार बार पढ़ा। खूब लिखा है—वाह वा!"

सम्पादकजी ने कहा—"वह लेख शुक्लजी का लिखा हुआ था।"

यद्यपि यह कहते हुए सम्पादकजी को थोड़ा अफ़सोस हुआ; परन्तु वह इतने संकीर्ण-हृदय भी नहीं थे कि शुक्लजी को धता

बता कर सारा यश स्वयं लूट लेते।

मित्र महोदय शुक्लजी की ओर देखकर बोले—"अच्छा! तब तो और भी कमाल की बात है। शुक्लजी, आप तो छिपे रुस्तम निकले।"

शुक्लजी दाँत निकाल कर बोले—"अजी, मैं क्या हूँ? यह सब सम्पादकजी की शिक्षा का फल है।"

"हाँ, फिर इनकी शिक्षा ऐसी-वैसी थोड़ा ही हो सकती है। इस समय आपके जोड़ का सम्पादक हिन्दी में और है कौन?"

सम्पादकजी ने सन्तोष की श्वास छोड़कर मन में सोचा—"चलो, मूल यश तो हमी को प्राप्त है।" इस विचार ने सम्पादकजी के हृदय की संकुचित उदारता को बाहर की ओर ठेला। अतएव उन्होंने कहा—"शिक्षा ग्रहण करने के लिये शिष्य में योग्यता भी तो होनी चाहिये। शुक्लजी में योग्यता है, इसलिये इन्होंने शिक्षा को शीघ्र ग्रहण कर लिया। बहुत-से तो ऐसे होते हैं कि वर्षों सीखने पर भी उन्हें एक वाक्य लिखना नहीं आता।"

मित्र ने गम्भीरतापूर्वक कहा—"यही बात है। जब गुरु और चेला, दोनों योग्य होते हैं, तभी कुछ होता है।"

(४)

उपर्युक्त घटना हुए दो मास व्यतीत हो गए। शुक्लजी के लेख की चर्चा आठ-दस दिन रही, इसके पश्चात् क्रमशः लोग उसे भूल गए।

एक दिन प्रातःकाल पुलिस ने सम्पादकजी का घर और 'स्वराज्य-सोपान' का दफ्तर घेर लिया। दोनों स्थानों की तलाशी लेने के पश्चात् पुलिस सम्पादकजी को गिरफ्तार करके ले गई। अपराध वही—पत्र में राजविद्रोहात्मक लेख लिखने का—लगाया गया।

सम्पादकजी उसी दिन ज़मानत पर छुड़ा लिए गए। उचित

समय पर उनका विचार आरम्भ हुआ। हुक्म सुनाए जाने के चार दिन पूर्व सम्पादकजी ने शुक्लजी से कहा—"शुक्लजी, मैं तो अब जेल जा रहा हूँ।—"

शुक्लजी घबराहट का भाव दिखाते हुए बोले—"क्या यह निश्चित है ?"

"बिलकुल।"

"यह आपने कैसे जाना ?

"अरे भाई, यह तो स्पष्ट बात है। जैसी परिस्थिति है, उसके देखते हुए तो बचना असम्भव ही है। आगे ईश्वराधीन है। हाँ, तो मेरी अनुपस्थिति में पत्र का समस्त भार आप ही पर रहेगा।"

शुक्लजी चकित होकर बोले—"मुझ पर रहेगा ?"

"हाँ, आप पर रहेगा। मुझे अन्य कोई ऐसा व्यक्ति दिखाई नहीं पड़ता, जिस पर मैं पूर्ण विश्वास कर सकूँ।"

शुक्लजी मूर्तिवत् बैठे सम्पादकजी का मुँह ताकते रहे।

सम्पादकजी कहते गए—"अधिक-से-अधिक दो वर्ष की सजा होगी। दो वर्ष तक सब आप ही को करना होगा। यदि कोई योग्य सहकारी मिल जाय, तो उसे रख लीजिएगा। उप-सम्पादक दो हैं ही। बस, काम चलता रहेगा और एक दया कीजिएगा—जब तक मैं छूट न आऊँ, तब तक कोई लेख ऐसा न लिखियेगा, जो सरकार की दृष्टि में आपत्तिजनक हो; क्योंकि यदि आप भी जेल में पहुँच गए, तो यहाँ का सब काम चौपट हो जायगा। और, घर की देख-रेख भी आप ही रखिएगा। वैसे तो मैंने अपने एक रिश्तेदार को लिख दिया है। वह कल परसों तक आ जायँगे। परन्तु निरीक्षण आपका ही रहेगा। वह केवल घर का प्रबन्ध सँभाले रहेंगे।"

शुक्लजी मौन बैठे रहे।

सम्पादकजी ने कहा—"आप तो गुमसुम बैठे हैं—कुछ 'हाँ-नहीं' तो कहिए।"

शुक्लजी बोले—'हाँ-नही' क्या कहूँ। मुझे जब यह ध्यान आता है कि केवल मेरे कारण आप पर यह मुसीबत पड़ी—।"

"इसका ध्यान आप बिलकुल छोड़ दीजिए। यह कार्य ही ऐसा है। इसमें मनुष्य का एक पैर जेलखाने में ही रहता है। आपका कोई अपराध नहीं। आपके लेख से पत्र को लाभ ही पहुंचा। जब से वह लेख निकला, तब से ग्राहक-संख्या बढ़ गई है।"

"मुझे तो बड़ा अफ़सोस है।"

"आपका अफ़सोस बेकार-सा है। हम लोगों का तो यह काम ही है। कल मैं आपको सम्पादक, मुद्रक, और प्रकाशक बनाने के लिए डिक्लेरेशन दिलवा दूँगा। बस, फिर मैं निश्चिन्त हो जाऊँगा।"

शुक्लजी का कलेजा धड़कने लगा।

इस वार्तालाप के पश्चात् शुक्लजी इन्सपेक्टर साहब से मिले और उन्होंने सब वृत्तान्त उसे सुनाया। इन्सपेक्टर ने कहा—"आप कदापि इस झंझट में न पड़िएगा—अन्यथा आप सी० आई० डी० विभाग से अलग कर दिए जायँगे।"

"परन्तु, यदि मैं इस समय स्वीकार न करूँगा, तो पत्र के बन्द हो जाने का भय है।"

"बड़ी सुन्दर बात है! हम तो यह चाहते ही हैं कि पत्र बन्द हो जाय।"

"परन्तु कल सम्पादकजी मेरे नाम से डिक्लेरेशन देने वाले हैं।"

"आप स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर दीजिये।"

"मैं जिस परिस्थिति में हूँ, उसको देखते हुए तो यह बहुत

कठिन है।"

"परिस्थिति कुछ नहीं, आप यह काम मत कीजिएगा। न हो, कुछ बहाना करके टल जाइए।"

"कहाँ टल जाऊँ ?"

"कहीं बाहर चले जाइए।"

शुक्लजी बोले—"अच्छा, चेष्टा करूँगा।"

इन्सपेक्टर ने किंचित् कर्कश स्वर में कहा—यह कहिए कि ऐसा ही होगा।"

इन्सपेक्टर का यह कथन शुक्ल जी को बुरा लगा। उन्होंने कहा—"इस प्रकार एकदम से भाग जाने से लोग मुझे क्या कहेंगे और संपादक जी क्या समझेंगे ?"

"ओफ ओह! आप तो बड़े सहृदय मालूम होते हैं! ऐसा ही था, तो आपने लेख लिखकर उन्हें फँसाया ही क्यों ? मैंने तो आपसे लेख लिखने के लिये कहा नहीं था।" इन्सपेक्टर ने व्यंग्य-पूर्वक मुस्कराते हुए कहा।

शुक्लजी कुछ उत्तर न दे सके। उन्हों अपना सिर झुका लिया।

इन्सपेक्टर पुनः बोला—"इस विभाग में सहृदयता काम नहीं देती। इसमें तो बस, जो आपसे कहा जाय, उसे आँखें बन्द करके कीजिए। तभी आप उसमें टिक सकेंगे और उन्नति कर सकेंगे।"

शुक्लजी ने सोचकर कहा—"अच्छी बात है।"

शुक्लजी इन्सपेक्टर के पास से चले आये। रात में बड़ी देर तक शय्या पर पड़े-पड़े शुक्ल जी इस समस्या पर विचार करते रहे। एक ओर उन्हें सम्पादकजी की सरलता, अपने ऊपर उनके स्नेह तथा विश्वास का विचार आता रहा, दूसरी ओर इन्स-पेक्टर की क्रूरता, स्वार्थ तथा हृदयहीनता का ध्यान आता

रहा । शुक्लजी ने सोचा—"इन्सपेक्टर और सम्पादकजी में से कौन-सा स्वामी श्रेष्ठ है। एक तो हम पर इतना विश्वास और स्नेह करता है कि यद्यपि हमारे द्वारा ही वह जेल जा रहा है, तथापि वह अपना सर्वस्व हमें सौंप कर जा रहा है। दूसरी ओर ऐसा स्वामी है, जो प्रथम श्रेणी का स्वार्थी है, जो 'चेष्टा' शब्द कहने पर तोते की तरह आँखें बदल लेता है, जिसकी बात चीत हुकूमत और धमकी से पूर्ण रहती है, जो हम पर पूर्णतया विश्वास नहीं करता, जो जरा-सी भूल होने पर हमारा शत्रु बन सकता है।"

† † † †

दूसरे दिन शुक्लजी से सम्पादकजी बोले—"आज तुम्हारी ओर से डिक्लेरेशन दाखिल हो जाना चाहिए।"

शुक्लजी ने कहा—"अच्छी बात है।"

उसी दिन डिक्लेरेशन फ़ाइल कर दिया गया। डिक्लेरेशन फ़ाइल होने के तीसरे दिन हुक्म सुनाया गया। सम्पादकजी डेढ़ साल की सजा तथा २००, जुर्माना हुआ।

† † † †

सम्पादजी के जेल चले जाने के पश्चात् शुक्लजी ने स्वराज्य-सोपान' का संपादन बड़ी योग्यता-पूर्वक किया। डिक्लेरेशन फ़ाइल होने के एक दिन पूर्व शुक्लजी इन्सपेक्टर से मिले थे, तब से वह उससे नहीं मिले। एक दिन रास्ते में उससे मुठभेड़ हो गई। इन्सपेक्टर ने मुस्कराकर व्यंगपूर्वक कहा—"अब तो आप पूरे देशभक्ति बन गए?"

"जी हाँ, आप अपना मतलब कहिए।"

"मेरा मतलब? वह भी आपको जल्द मालूम हो जायगा। अफ़सोस केवल इतना है कि एक दिन आपको भी जेल की हवा

खानी पड़ेगी।"

"उसके लिये तो मैं स्वयं तैयारी कर रहा हूँ, केवल सम्पादकजी के आने की देर है।"

"अच्छा!"—इन्सपेक्टर ने आश्चर्य से पूछा।

"आपको शक भी है क्या? आखिर आपकी बातों में आकर मैंने जो पाप किया है, मुझे उसका प्रायश्चित्त भी तो करना है। बिना जेल गए प्रायश्चित्त होगा नहीं।"

"अच्छा! तो जेल जाने के लिए क्या कीजिएगा?"

"कुछ नहीं, जैसा एक लेख पहले सम्पादकजी को फँसाने के लिए लिखा था, वैसा ही एक फिर लिख दूंगा। और सम्पादकजी के छूटने के ठीक दो महीने पूर्व लिखूंगा।"

"यदि आप हमारा काम करते रहते, तो यह नौबत काहे को आती? इस समय चैन करते होते।"

"भगवान् उस चैन से बचावे। उस चैन से यह बेचैनी कहीं अच्छी है।"—इतना कहकर शुक्लजी चल दिये। इन्सपेक्टर होंठ चबाते हुए उनकी ओर ताकता रह गया।

कृतज्ञता

(१)

ट्रेन के स्टेशन पर रुकते ही इन्टर क्लास के एक छोटे से कम्पार्टमेंट का द्वार खुला और एक युवक हाथ में हैंडबेग लिए हुए अन्दर आया कम्पार्टमेंट में एक अधेड़ सज्जन पहले ही से बैठे हुए थे। युवक उनके सामनेवाले बर्थ पर बैठ गया।

कुछ देर तक दोनों चुपचाप बैठे रहे। गाड़ी स्टेशन छोड़ चुकी थी और अपनी पूरी तेजी के साथ चली जा रही थी हठात अधेड़ सज्जन ने युवक से पूछा—"आप कहाँ जायँगे ?" युवक ने उत्तर दिया—"आगरा।" युवक कुछ क्षण तक अधेड़ व्यक्ति को ध्यान-पूर्वक देखता रहा; इसके पश्चात् उसने कहा—"और आप ?"

"मैं तो देहली जा रहा हूँ।"

दोनों फिर मौन हो गये। कुछ क्षण के पश्चात् अधेड़ व्यक्ति

ने पूछा —"आप आगरे ही में रहते हैं ?"

"जी नहीं, आगरे में तो नहीं रहता ।"

"कहाँ रहते हैं ?"

युवक ने संयुक्त-प्रान्त के एक प्रसिद्ध नगर का नाम बताया।

"आगरे किसी काम से जा रहे हैं ?"

युवक को अधेड़ व्यक्ति की यह बेतकल्लुफी कुछ बुरी मालूम हुई, परन्तु उसने शिष्टाचार के नाते अपनी इस भावना को दबा कर किंचित् मुस्कराते हुए कहा—"हाँ, एक कार्य से जा रहा हूँ ।"

युवक ने सोचा, जब यह व्यक्ति मेरा परिचय जानने के लिये इतना उत्सुक है तब मैं भी पता लगाऊँ कि यह कौन है। यह सोच कर उसने पूछा—"आपका मकान कहाँ है ?"

"मेरा मकान तो इधर मध्य-प्रदेश की ओर है, परन्तु मैं आजकल······में रहता हूँ ।"

"वहाँ आप क्या करते हैं ?"

वहाँ मैं एक साप्ताहिक पत्र का सम्पादन करता हूँ ।"

युवक चौंक पड़ा। उसने बड़ी उत्सुकता से पूछा—"आपका नाम शम्भूनाथ है ?"

"जी हाँ !" अधेड़ व्यक्ति ने गम्भीर होकर उत्तर दिया।

युवक मुस्कराकर बोला—ओ हो ! तब तो आपके खूब दर्शन हुए ! आप तो बड़े प्रसिद्ध आदमी हैं। अधेड़ व्यक्ति ने मुस्कराकर सिर झुका लिया, कोई उत्तर न दिया।

युवक ने कहा—मैं भी आप लोगों का एक तुच्छ सेवक हूँ। मेरा नाम गोपाल शर्मा है।

अधेड़ व्यक्ति ने भृकुटी सिकोड़ कर कहा—गोपाल शर्म्मा ! क्या आप लेखक हैं ?

"जी, लेखक तो क्या, मातृभाषा हिन्दी का एक अकिंचन सेवक हूँ ;"

"नहीं, आप बहुत अच्छा लिखते हैं। मैं बहुधा आपके लेख पत्रों में देखा करता हूँ।"

युवक ने दाँत निकाल कर सिर झुका लिया। सम्पादकजी ने पुनः प्रश्न किया—"और आप क्या करते हैं?"

"आज कल तो बेकार हूँ—आगरे अपने मामा के यहाँ जा रहा हूँ। उन्होंने लिखा था कि वहाँ किसी आफिस में एक स्थान खाली है, उसी के लिए जा रहा हूँ।"

"अच्छा! आप आज-कल बेकार हैं?"

"जी हाँ।"

"तो आप हमारे यहाँ क्यों नहीं चले आते? हमारे कार्यालय में एक सहकारी सम्पादक की आवश्यकता है। मैं समझता हूँ कि आफिस की नौकरी से यह कार्य आपकी रुचि के अनुकूल होगा।"

युवक प्रसन्नमुख होकर बोला—"निस्सन्देह यदि ऐसा हो तो अत्युत्तम है। आफिस की नौकरी तो मैंने मजबूरी की हालत में स्वीकार की थी।"

"तो अब उसका विचार त्याग दीजिए। आप मेरे साथ चलिए, मैं आपको अपने यहां रखलूंगा।"

युवक ने कृतज्ञतापूर्ण स्वर से कहा—यह मेरा बड़ा सौभाग्य होगा कि आपकी सेवा में रहूँ, इससे मेरा ज्ञान तथा अनुभव बढ़ेगा।

सम्पादकजी ने कहा—तो बस तय हो गया। आप मेरे साथ चलिए।

"इस समय तो मैं न चल सकूंगा। मेरा टिकट आगरे का है—वहां मामा भी प्रतीक्षा करेंगे। मैं आगरा होकर आपके पास आऊँगा।"

"आगरे में आपको कितने दिन लगेंगे?"

"अधिक से अधिक दो तीन दिन।"

"तो आप मेरे पास कब तक आवेंगे ?"

"आज के चौथे-पाँचवें दिन आजाऊँगा।"

"बस ठीक है। परन्तु अधिक समय न लगे, इसका ध्यान रखिएगा। क्योंकि सहकारी सम्पादक की बहुत शीघ्र आवश्यकता है। यदि आपने विलम्ब लगाया तो सम्भव है, कोई दूसरा व्यक्ति आ जाय। यद्यपि सहकारी की नियुक्ति मेरे परामर्श और मेरी पसन्द के अनुसार होगी; तो भी यह सम्भव है कि पत्र के स्वामी किसी को अपनी इच्छा से रख लें, इसलिए आप जहाँ तक सम्भव हो, शीघ्र ही पधारिएगा।"

"बहुत अच्छा, मैं तीन-चार दिन में अवश्य आजाऊँगा।"

"तो बस ठीक है।"

दोनों चुप हो गये। थोड़ी देर पश्चात् सम्पादकजी ने पूछा—"आपने कभी पहले भी किसी पत्र······।"

सम्पादकजी की बात पूरी होने के पूर्व ही गोपाल शर्म्मा बोल उठे—"काम तो नहीं किया; परन्तु मैं काम कर सकता हूँ—इसका मुझे विश्वास है।"

"हाँ हाँ, क्यों नहीं। एक बुद्धिमान् और शिक्षित आदमी क्या नहीं कर सकता ?"

पुनः दोनों मौन हो गये। थोड़ी देर पश्चात् गोपाल शर्म्मा ने किंचित् सकुचाते हुए पूछा—"क्या आप वेतन के सम्बन्ध में कुछ बता सकते हैं ?"

"वेतन ? वेतन आपको, इस समय तो साठ रुपये मिलेंगे, परन्तु यदि आपका कार्य सन्तोषजनक हुआ, जिसकी मुझे पूर्ण आशा है, तो शीघ्र ही वेतन-वृद्धि हो जायगी।"

"अच्छी बात है। यद्यपि वेतन कम है, तथापि कोई हर्ज नहीं। कार्य मेरी रुचि के अनुकूल है, इसलिए मुझे इतना ही

स्वीकार है।"

"मैं चेष्टा करूँगा कि कुछ अधिक दिलवाऊँ। आगे आपका भाग्य।"

"कोई चिन्ता नहीं, फ़िलहाल मेरे लिए साठ ही रुपये यथेष्ट हैं।"

इसके उपरान्त दोनों साहित्य-चर्चा करते रहे। दो घन्टे पश्चात् टूंडला स्टेशन आया। गोपाल शर्म्मा ने कहा—"अच्छा, मैं तो अब यहाँ आपसे बिदा होता हूँ। ईश्वर ने चाहा तो आज के चौथे दिन आपका दर्शन करूँगा।"

(२)

गोपाल शर्म्मा को उक्त साप्ताहिक पत्र में कार्य करते हुए छः मास हो चुके हैं। छः मास में ही पत्र के स्वामी ने उनकी योग्यता और कार्य-कुशलता पर मुग्ध होकर उनका वेतन सौ रुपये मासिक कर दिया। गोपाल शर्म्मा जब कभी मुख्य लेख और टिप्पणियाँ लिखते थे तब उनकी बड़ी प्रशंसा होती थी और साथ ही पत्र की ग्राहक-संख्या भी उत्तरोत्तर बढ़ रही थी।

एक दिन प्रधान सम्पादक के एक मित्र उनसे मिलने आये। उन्होंने बैठते ही कहा—"आज-कल तो बड़े ज़ोर के मुख्य लेख निकल रहे हैं।"

सम्पादकजी ने मित्र की बात पर ध्यान न देकर पूछा—"तुम कब आये?"

"कल आया था।"

"और सब कुशल-मंगल?"

"हाँ सब प्रकार आनन्द है।"

"और कोई विशेष बात?"

"कोई नहीं। पिछले सप्ताह में जो मुख्य लेख निकला था वह बड़े ज़ोर का था।"

"अधिक से अधिक दो तीन दिन।"

"तो आप मेरे पास कब तक आवेंगे?"

"आज के चौथे-पाँचवें दिन आजाऊँगा।"

"बस ठीक है। परन्तु अधिक समय न लगे, इसका ध्यान रखिएगा। क्योंकि सहकारी सम्पादक की बहुत शीघ्र आवश्यकता है। यदि आपने बिलम्ब लगाया तो सम्भव है, कोई दूसरा व्यक्ति आ जाय। यद्यपि सहकारी की नियुक्ति मेरे परामर्श और मेरी पसन्द के अनुसार होगी; तो भी यह सम्भव है कि पत्र के स्वामी किसी को अपनी इच्छा से रख लें, इसलिए आप जहाँ तक सम्भव हो, शीघ्र ही पधारिएगा।"

"बहुत अच्छा, मैं तीन-चार दिन में अवश्य आजाऊँगा।"

"तो बस ठीक है।"

दोनों चुप हो गये। थोड़ी देर पश्चात् सम्पादकजी ने पूछा—"आपने कभी पहले भी किसी पत्र......।"

सम्पादकजी की बात पूरी होने के पूर्व ही गोपाल शर्म्मा बोल उठे—"काम तो नहीं किया; परन्तु मैं काम कर सकता हूँ—इसका मुझे विश्वास है।"

"हाँ हाँ, क्यों नहीं। एक बुद्धिमान् और शिक्षित आदमी क्या नहीं कर सकता?"

पुनः दोनों मौन हो गये। थोड़ी देर पश्चात् गोपाल शर्म्मा ने किंचित् सकुचाते हुए पूछा—"क्या आप वेतन के सम्बन्ध में कुछ बता सकते हैं?"

"वेतन? वेतन आपको, इस समय तो साठ रुपये मिलेंगे, परन्तु यदि आपका कार्य सन्तोषजनक हुआ, जिसकी मुझे पूर्ण आशा है, तो शीघ्र ही वेतन-वृद्धि हो जायगी।"

"अच्छी बात है। यद्यपि वेतन कम है, तथापि कोई हर्ज नहीं। कार्य मेरी रुचि के अनुकूल है, इसलिए मुझे इतना ही

स्वीकार है।"

"मैं चेष्टा करूँगा कि कुछ अधिक दिलवाऊँ। आगे आपका भाग्य।"

"कोई चिन्ता नहीं, फिलहाल मेरे लिए साठ ही रुपये यथेष्ट हैं।"

इसके उपरान्त दोनों साहित्य-चर्चा करते रहे। दो घन्टे पश्चात् टूंडला स्टेशन आया। गोपाल शर्म्मा ने कहा-"अच्छा, मैं तो अब यहाँ आपसे बिदा होता हूँ। ईश्वर ने चाहा तो आज के चौथे दिन आपका दर्शन करूँगा।"

(२)

गोपाल शर्म्मा को उक्त साप्ताहिक पत्र में कार्य करते हुए छः मास हो चुके हैं। छः मास में ही पत्र के स्वामी ने उनकी योग्यता और कार्य-कुशलता पर मुग्ध होकर उनका वेतन सौ रुपये मासिक कर दिया। गोपाल शर्म्मा जब कभी मुख्य लेख और टिप्पणियाँ लिखते थे तब उनकी बड़ी प्रशंसा होती थी और साथ ही पत्र की ग्राहक-संख्या भी उत्तरोत्तर बढ़ रही थी।

एक दिन प्रधान सम्पादक के एक मित्र उनसे मिलने आये। उन्होंने बैठते ही कहा—"आज-कल तो बड़े ज़ोर के मुख्य लेख निकल रहे हैं।"

सम्पादकजी ने मित्र की बात पर ध्यान न देकर पूछा—"तुम कब आये?"

"कल आया था।"

"और सब कुशल-मंगल?"

"हाँ सब प्रकार आनन्द है।"

"और कोई विशेष बात?"

"कोई नहीं। पिछले सप्ताह में जो मुख्य लेख निकला था वह बड़े ज़ोर का था।"

इसी समय गोपाल शर्म्मा आगये। शर्म्माजी को देखते ही सम्पादकजी के मुख पर एक क्षण के लिये अप्रसन्नता का भाव प्रस्फुटित हुआ, परन्तु उन्होंने शीघ्रता-पूर्वक उक्त भाव को दाब कर किंचित् मुस्कराते हुए कहा—"वह लेख हमारे सहकारी शर्म्माजी का लिखा हुआ था।" यह कह कर सम्पादकजी ने शर्म्माजी की ओर संकेत किया। मित्र ने शर्म्माजी को सिर से पैर तक देखकर कहा—"अच्छा! आप भी खूब लिखते हैं। मुझे वह लेख बहुत पसन्द आया—और मुझे ही क्या जिस जिसने पढ़ा उसने पसन्द किया।"

सम्पादकजी के लिए यह प्रसंग अरुचिकर था। अतएव उन्होंने प्रसंग बदलने के लिए कहा—"इस बार कांग्रेस जाओगे?"

"ठीक नहीं कह सकता—चेष्टा करूँगा। शर्म्माजी, आपका शुभ नाम क्या है?"

"मेरा नाम गोपाल शर्म्मा है।"

"गोपाल शर्म्मा? यह नाम तो मैंने कहीं देखा है।"

"मैं बहुधा पत्रों में लेख लिखा करता हूं।"

"हाँ, हाँ; किसी पत्र ही में देखा था।"

कुछ क्षण तक सब लोग मौन बैठे रहे। हठात् सम्पादक के मित्र महोदय पुनः बोले—शर्म्माजी, क्या वह आपका प्रथम मुख्य लेख था।

शर्म्माजी के बोलने के पूर्व ही सम्पादकजी ने मित्र से कहा—अरे यार सारी उम्र में एक काम तुमको बताया वह भी तुम्हारे किये न हुआ।

"कौन सा काम?"

"याद करो।"

"होगा भी, मुझे याद-वाद नहीं है।"

"हाँ, शर्म्माजी—।"

सम्पादकजी बोले—शर्म्माजी की खोपड़ी न खाओ, मुझसे बातें करो।

सम्पादकजी मित्र पर यह बात नहीं प्रकट होने देना चाहते थे कि जितने अच्छे लेख निकले वे शर्म्माजी के लिखे हुए थे। इसी कारण वे मित्र को अन्य बातों में लगाना चाहते थे। शर्म्माजी सम्पादकजी की इस बात को ताड़ गये। अतएव वे तुरन्त उठ खड़े हुए और हाथ जोड़ कर बोले—"अच्छा अब आज्ञा दीजिए। कुछ काम करना है।"

मित्र ने नैराश्यपूर्ण स्वर में कहा—"अच्छी बात है, फिर किसी समय आपसे बात-चीत होगी।"

शर्म्माजी चले गये। उनके जाने के पश्चात् मित्र ने सम्पादकजी से कहा—"ये आपको कहाँ मिल गये—अभी हाल ही में आये हैं?"

"हाँ छः महीने के लगभग हुए।"

"अच्छा लिखते हैं।"

"हाँ खासा लिखते हैं। यदि कुछ दिनों मेरे पास रह गये तो अच्छा लिखने लगेंगे। अभी तो मुझे इनके लेखों को बहुत सुधारना पड़ता है।"

"कुछ भी हो, लिखते अच्छा हैं।"

"अच्छा न लिखते होते तो यहां कैसे आते? मेरा सहकारी कोई गड़बड़ आदमी थोड़े ही हो सकता है।"

"यही बात है। यदि साल दो साल आपके पास टिक गये तो अच्छे सम्पादक बन जायँगे।"

"हाँ टिक जायँ तब है।"

"क्यों, क्या इसमें कुछ सन्देह है।"

"कुछ चञ्चल प्रकृति के आदमी हैं, इस कारण आशा कम है।"

"युवावस्था में मनुष्य की प्रकृति कुछ चञ्चल होती ही है।"

"सब की तो नहीं होती, परन्तु अधिकांश की होती है।"

"अच्छा तो अब आज्ञा दें, फिर मिलूँगा।"

"अच्छी बात है।"

मित्र महोदय सम्पादकजी से बिदा होकर पत्र के व्यवस्थापक के पास पहुंचे। वे ही पत्र के मालिक भी थे। व्यवस्थापक ने उन्हें देखकर मुस्कराते हुए कहा—आइये पण्डितजी, कहिये सब आनन्द! पण्डितजी कुर्सी पर बैठते हुए बोले—सब आपका अनुग्रह है। आप तो मजे में?

"हाँ, ईश्वर की दया है। कहिए, आज कैसे भूल पड़े।"

"ऐसे ही मिलने चला आया। इधर आपके पत्र में चार-छः मुख्य लेख बड़े मार्के के निकले। मैंने सोचा, चलूँ सम्पादकजी को और आपको उनके लिये बधाई दे आऊँ।"

व्यवस्थापकजी हँसते हुए बोले—"अच्छा यह बात है! तो यदि आपको बधाई देनी हो तो सहकारी सम्पादक शर्म्माजी को बधाई दीजिए—वे सब लेख उन्हीं के लिखे हुए हैं।"

"हाँ इसका मुझे पता लग गया है। पहले मैंने समझा था कि सम्पादकजी के लिखे हुए हैं।"

व्यवस्थापकजी मुँह बना कर बोले—सम्पादकजी भला क्या खा कर ऐसे लेख लिखेंगे। वह बात ही कुछ और है। शर्म्माजी बड़े योग्य आदमी हैं।

"हाँ साहब, योग्य न होते तो ऐसी सजीव भाषा और इतने प्रौढ़ विचारों का समावेश कैसे करते।"

"मेरा तो विचार उन्हें शीघ्र ही मुख्य सम्पादक बनाने का है।"

"अच्छा!"

"हाँ, जब से उनके लेख निकले तब से ग्राहक संख्या बराबर बढ़ रही है। ऐसी दशा में उन्हें प्रधान सम्पादक न बनाना उनके प्रति अन्याय करना है।"

"और सम्पादक जी !"

"सम्पादकजी की इच्छा होगी तो सहकारी बन कर रहेंगे, अन्यथा चले आयँगे।"

"यह तो आप अन्याय करेंगे।"

"क्यों ?"

"इसलिये कि प्रधान सम्पादक का इसमें अपमान होगा।"

"इस भावुकता में क्या रक्खा है। यह तो व्यापार है। जो अच्छा कार्य करेगा, उसे प्रधानता दी जायगी।"

"हाँ, यह ठीक है। परन्तु वे भी कुछ गड़बड़ नहीं हैं। दूसरे उन्हें आपके यहाँ बहुत दिन हो गये।"

"गड़बड़ न हों, परन्तु शर्म्मा जी को नहीं पा सकते। जब तक हमें उनसे अधिक योग्य आदमी नहीं मिला तब तक हमने उन्हें रक्खा। अब जब हमें अधिक योग्य आदमी मिल रहा है तब हम उसे क्यों न रक्खें ? यदि यह आशा होती कि वे उन्नति कर लेंगे तो भी एक बात थी; परन्तु वे जितनी उन्नति कर सकते थे उतनी कर चुके। अब वे उन्नति-सुन्नति कुछ नहीं कर सकते, वे जहाँ के तहाँ रहेंगे।"

"हाँ उन्नति तो अब वे क्या करेंगे, चालीस के ऊपर पहुंच चुके।"

"उनसे परिश्रम भी तो नहीं होता।"

"हाँ परिश्रम तो न होता होगा।"

"ऐसी परिस्थिति में जब मुझे अच्छा आदमी मिल रहा है तब मैं ऐसा अवसर क्यों छोड़ूं ?"

"हाँ, बात तो ठीक है, परन्तु······।"

"अरन्तु-परन्तु की इसमें गुंजायश नहीं। मेरा लक्ष्य तो पत्र की उन्नति करना है—जिसमें पत्र की उन्नति होगी वही मैं करूँगा, भावुकता में नहीं पड़ूंगा।"

(३)

शर्म्माजी के कमरे में एक उपसम्पादक तथा एक प्रूफरीडर महोदय बैठे थे। शर्म्माजी अभी नहीं आये थे। उपसम्पादक तथा प्रूफरीडर में बात-चीत हो रही थी। उपसम्पादक कह रहा था—"बस, अब महीने दो महीने में शर्म्माजी प्रधान सम्पादक बनाये जाने वाले हैं।"

प्रूफरीडर बोला—"ऐसा नहीं हो सकता।"

"देख लेना, ऐसा ही होगा।"

"सम्पादकजी में शर्म्माजी के बराबर योग्यता तो है नहीं।"

"अजी वे करते ही क्या हैं, खाली बातों का जमाखर्च करते हैं। तुम्हें मालूम न होगा। सम्पादकजी बाहर सब लोगों से यह कहते फिरते हैं कि वे लेख उनके लिखे हुए हैं।

"अच्छा!"

"भगवान् जाने। मैं झूठ थोड़े ही कहता हूँ।"

"बड़े चलते हुए आदमी हैं।

"परन्तु अब कनौं से कटते हैं। देर नहीं है।"

"तुम्हें कैसे मालूम हुआ?"

"मालूम हो गया।"

"व्यवस्थापकजी ने कहा होगा।"

"अजी वे भला अपना मन्त्र काहे को देने लगे—एक ही घाघ आदमी हैं।"

"हाँ, हैं तो बड़ा चलता हुआ।"

"पक्का व्यापारी है।"

"यदि शर्म्माजी सम्पादक हो जायँ तो पत्र की उन्नति भी हो।"

"यही तो सारी बात है।"

इसी समय शर्म्माजी आ गये। शर्म्माजी को देखकर दोनों चुप हो गये और अपना अपना काम करने लगे। शर्म्माजी अपने

मेज के सामने बैठते हुए बोले—"क्या वार्तालाप हो रहा था?"

उपसम्पादक ने कहा—"कुछ नहीं, आपके ही सम्बन्ध में बात-चीत हो रही थी।"

"क्या बात-चीत हो रही थी?"

"यही कि यदि शर्म्माजी मुख्य सम्पादक हो जायँ तो बड़ा सुन्दर हो।"

शर्म्माजी किंचित मुस्कराकर बोले—"अरे भई, मैं इस योग्य कहाँ? अभी तो मुझे बहुत कुछ सीखना है।"

"आपके मुख से यही शोभा देता है; परन्तु हमसे पूछिए तो हम तो स्पष्ट कहेंगे कि आप सम्पादकजी से कहीं अधिक उत्तम सम्पादन कर सकते हैं। सम्पादकजी को आता ही क्या है? भाग्य के बली हैं, इसलिए निभे चले जा रहे हैं।"

शर्माजी हँसकर बोले—"अरे भाई, ऐसा मत कहो। सम्पादकजी बड़े योग्य हैं। मुझे वही सम्पादन-शिक्षा दे रहे हैं।"

"देते होंगे; परन्तु साथ ही यह बात भी है कि आप अभी उनको दस बरस पढ़ा सकते हैं।"

"शिव! शिव! ऐसी अनर्गल बात मत कहो—" शर्म्माजी ने गम्भीर होकर कहा।

"बात सच्ची है, आप चाहे रुष्ट भले ही हो जायँ।"

ठीक इसी समय चपरासी ने आकर शर्म्माजी से कहा कि आपको सम्पादकजी बुला रहे हैं।

शर्म्माजी सम्पादकजी के पास पहुँचे।

सम्पादकजी ने कुर्सी की ओर संकेत करके कहा—बैठिए। आपसे कुछ आवश्यक बातें करनी हैं। (चपरासी से) देखो, अन्दर किसी को मत आने देना।

"बहुत अच्छा" कह कर चपरासी चला गया। सम्पादकजी ने कहा—"शर्म्माजी, यह तो आप जानते ही हैं कि यहाँ

मैंने ही आपको बुलाया था।"

"जी हाँ।"

"ट्रेनवाली बात याद है न ?"

"याद क्यों नहीं है, उसे क्या मैं कभी भूल भी सकता हूँ।"

"सज्जनता के अर्थ यही हैं। अच्छा तो अब बात यह है कि मेरे कुछ शत्रु मेरे विरुद्ध मालिकों को भड़का रहे हैं। आप जानिए, जो आदमी किसी ऊँचे पद पर होता है उसके अनेक शत्रु हो जाते हैं।"

"हाँ, यह बात ठीक है।"

"तो मेरे भी कुछ शत्रु उत्पन्न हो गये हैं और मुझे यहाँ से उखाड़ना चाहते हैं।

"अच्छा !"

"हाँ ! और तो किसी से मुझे भय है नहीं, अन्य सबों को तो मैं चुटकी में मसल सकता हूँ। मुझे यदि भय है तो आपकी ओर से।"

"मेरी ओर से !"

"हाँ आपकी ओर से। परन्तु इस बात का भय नहीं है कि आप मेरे विरुद्ध मालिकों को भड़कायेंगे। भय इस बात का है कि आपके यहाँ होने से मालिक लोगों की बातों में आजाएँगे।"

"मैं यह बात बिलकुल नहीं समझ सका।"

"मैं आपको समझाता हूँ। पहले तो यदि कोई व्यवस्थापक जी से कुछ भी कहता तो वे उसकी न सुनते; क्योंकि उनके सामने कोई दूसरा ऐसा व्यक्ति न था जिसे वे मेरे स्थान पर रखते; परन्तु इस समय तुम एक ऐसे आदमी हो जो मेरे स्थान पर रक्खे जा सकते हो। इसलिए शत्रुओं के लिए मार्ग सरल हो गया। क्यों; आप मेरी बात समझे ?"

यह कहकर सम्पादकजी ने पुनः उपर्युक्त बात समझा कर कही।

शर्म्माजी ने कहा—"हाँ, अब मैं समझ गया।"

"तो अब मेरी लाज और मेरी मानमर्यादा तुम्हारे हाथ में है। शर्म्माजी, मैं तुम्हें अपना छोटा भाई समझता हूँ—यह यज्ञोपवीत हाथ में लेकर कहता हूँ कि इसमें तनिक भी मिथ्या नहीं है। अतएव इस समय तुम्हें मेरी रक्षा करनी चाहिये। यदि तुम रक्षा नहीं करोगे तो मेरा सर्वनाश हो जायगा।"

यह कहते कहते सम्पादकजी के नेत्रों में आँसू छलछला आये। शर्म्माजी सम्पादकजी की बातों से प्रभावित होकर बोले—"आप व्यर्थ में ऐसी बातें कहते हैं। मैं आपका दास हूँ-जैसी आज्ञा दीजिये वैसा करूँगा।"

सम्पादकजी गद्गद् कंठ से बोले—"आज्ञा नहीं प्रार्थना है। मैं एक गरीब ब्राह्मण हूँ। मेरे चार-पाँच छोटे-छोटे बच्चे हैं। मेरी उम्र अब इतनी हो गई है कि नये सिरे से उद्योग करना मेरे लिये असम्भव है। ऐसी दशा में यदि मैं यहाँ से अलग कर दिया गया तो मैं किसी काम का न रहूँगा।"

"शिव! शिव! आप ऐसी बात क्यों कहते हैं—ऐसा कभी न होने पायेगा।"

हाँ, यदि तुम न चाहोगे तो नहीं होने पायेगा और तुम चाहोगे तो हो भी जायगा। मेरे भाग्य का फैसला तुम्हारे हाथों में है—चाहे तारो, चाहे डुबाओ।"

"मेरे किये जहां तक होगा वहां तक आपका उपकार ही करूँगा।"

"हृदय से कहते हो?"

"हृदय से।"

"तो बस अब मैं निश्चिन्त हो गया।"

(४)

एक मास और व्यतीत हो गया। एक मास के पश्चात् व्यवस्थापकजी की ओर से सम्पादकजी को एक मास का नोटिस

मिल गया। सम्पादकजी नोटिस देख कर बहुत ही घबराये। उन्होंने तुरन्त शर्म्माजी को बुला कर कहा—"शर्म्माजी, जिसका मुझे भय था, वही हुआ।"

"क्या हुआ ?"

"मालिक ने मुझे नोटिस दिया है कि या तो सहकारी बन-कर रहना स्वीकार करो अन्यथा अपना दूसरा प्रबन्ध कर लो।"

शर्म्माजी विस्मित होकर बोले—"ऐसा !"

"मैंने तो तुम से कहा था।"

"हाँ, आपने तो कहा था ; परन्तु मैं तो यह सोचे हुये था कि मुझसे पूछा जायगा तो मैं आपकी सिफ़ारिश करूँगा; परन्तु वह सब तो कुछ भी न हुआ।"

"यही तो आश्चर्य है। आपसे और व्यवस्थापकजी से कुछ वार्तालाप हुआ था ?"

"बिलकुल नहीं।"

"अच्छा तो कदाचित यह सोचा हो कि मेरे चले जाने के पश्चात् वे तुम्हें मुख्य सम्पादक बना देंगे।"

"तो फिर क्या होगा ?"

"होगा क्या, सहकारी बन कर तो मैं यहाँ कदापि न रहूँगा दूसरी जगह चाहे प्रूफ़रीडरी भले ही कर लूँ। जहाँ प्रधान सम्पा-दक बनकर रहा, वहाँ सहकारी बनकर रहूँ—यह मुझसे न होगा चाहे मर भले ही जाऊँ।" यह कहते कहते सम्पादकजी का गला भर आया।

शर्म्माजी चुपचाप खड़े सोचते रहे। सम्पादकजी अत्यन्त नैरा-श्यपूर्ण स्वर में बोले—"जाइए, काम कीजिए, बस, इतना ही कहने के लिए बुलाया था। जो भाग्य में बदा होगा वह होगा।" शर्म्माजी चुपचाप अपने कमरे में आकर बैठ गये।

शर्म्माजी को चिन्तित देखकर उपसम्पादक ने पूछा—"क्यों,

क्या बात है, आप इतने उदास क्यों हैं ?"

"सम्पादकजी को नोटिस दे दिया गया।" शर्म्माजी ने सिर झुकाये हुए उत्तर दिया।"

उपसम्पादक ने हँस कर कहा—देखा, मैं क्या कहता था। शर्म्माजी, मेरी बात ठीक निकली या नहीं ?

शर्म्माजी बोले-क्या ठीक निकली। यह तो बड़ा अन्याय है।

"यह अन्याय नहीं, न्याय है। अब आप सम्पादकी कीजिए ठाट के साथ—धूम मच जायगी।"

"मैं ऐसी धूम नहीं चाहता।"

"आप चाहें या न चाहें, धूम तो होगी ही।"

"मुझे सम्पादकजी की दशा पर बड़ा तरस आता है।"

"यदि आपको तरस आता है तो यह आपके हृदय की कमजोरी है। वे तरस के योग्य हैं ही नहीं। लेख आप लिखें और सम्पादकजी कहते फिरें कि मेरा लिखा हुआ है। ऐसे संकीर्ण हृदय आदमी पर तरस खाना चाहिए ? ईश्वर ने आपको यह अनुपम अवसर दिया है। इसको हाथ से न जाने दीजिएगा।"

शर्म्माजी ने सोचा—ठीक तो कहता है। सम्पादकजी मेरे परिश्रम का सारा यश स्वयम् ही लूटते हैं—मेरे लेखों पर अपना अधिकार जमाते हैं। दूसरों से कहते फिरते हैं कि शर्म्माजी को आता ही क्या है—मैं सिखा रहा हूँ। ऐसी दशा में मुझे क्या गरज पड़ी है—जो हो रहा है, होने दो। मुझे आगे बढ़ने का इतना अच्छा अवसर मिल रहा है। मैं क्यों चूकूं ? परन्तु दूसरे ही क्षण शर्म्माजी को ध्यान आया। मुझे यहां लाने वाला कौन था—सम्पादकजी। उन्हीं की बदौलत मुझे यह अवसर मिला है। अन्यथा कहीं किसी आफिस में क्लर्की करता होता ! मैं अभी युवा हूँ, मेरे लिए आगे बढ़ने का बहुत समय है। परन्तु सम्पादकजी किसी काम के न रहेंगे। सम्पादकजी ने मेरे साथ नेकी ही

की है—बदी नहीं। रही यह बात कि वे मेरा यश नहीं फैलने देते इसका कारण उनका प्रधान सम्पादक होना है। प्रधान सम्पादक के पद ने उनमें यह दुर्बलता उत्पन्न कर दी है।

शर्म्माजी इसी उधेड़-बुन में थे कि उपसम्पादक ने पूछा—"क्या सोच रहे हो शर्म्माजी ?" शर्म्माजी ने सादा कागज उठाते हुए कहा—"यही सोच रहा हूँ कि सम्पादकजी ने मुझे आश्रय दिया था तब मेरा भी यह कर्त्तव्य है कि अब इस अवसर पर उनकी सहायता करूँ।" उपसम्पादक शर्म्माजी की ओर कुछ घृणा-पूर्ण दृष्टि से देख कर चुपचाप अपना काम करने लगा।

× × × ×

व्यवस्थापकजी के सामने एक लम्बा कागज रक्खा हुआ था। व्यवस्थापकजी उसे पढ़ रहे थे। पढ़ते-पढ़ते उनका मुख मलिन हो गया। उन्होंने घंटी बजाकर चपरासी को बुलाया। चपरासी के आने पर उन्होंने कहा—शर्म्माजी को बुलाओ।

थोड़ी देर में शर्म्माजी आये। व्यवस्थापकजी ने सामने रक्खे हुए कागज की ओर संकेत करके कहा—"यह क्या है, शर्म्मा जी ?"

"जो कुछ है वह आपके सामने है—" शर्म्माजी ने गम्भीरता-पूर्वक कहा।

"परन्तु आप इस्तीफ़ा क्यों देते हैं ?"

"इसलिये कि सम्पादकजी को नोटिस दिया गया है।"

"परन्तु उनके स्थान पर आप नियुक्त किये जायँगे।"

व्यवस्थापकजी ने यह बात बड़ी आशा से कही। उन्होंने समझा कि शर्म्माजी इस बात से प्रसन्न हो जायँगे। परन्तु जब शर्म्माजी ने कहा, "मुझे यह स्वीकार नहीं है" तब व्यवस्थापकजी के चेहरे का रंग उड़ गया। उन्होंने कुछ क्षण के पश्चात्

कहा—"यह तो बड़ा बुरा हुआ। उधर सम्पादकजी को नोटिस दिया जा चुका है, इधर आप भी जा रहे हैं—पत्र का कार्य कैसे चलेगा। मैंने तो आप पर भरोसा करके सम्पादक को नोटिस दिया था।"

"ऐसी बात के सम्बन्ध में मुझ पर भरोसा करने के पूर्व आपको मुझसे पूछ लेना चाहिए था।"

व्यवस्थापकजी ने लज्जित होकर कहा—हाँ, इतनी ग़लती अवश्य हुई।

शर्म्माजी चुपचाप खड़े रहे! व्यवस्थापकजी कुछ क्षण तक चुप रह कर बोले—तो आखिर आप किसी प्रकार इस इस्तीफ़े को वापस भी ले सकते हैं? बात यह है कि हम आपको नहीं छोड़ना चाहते।

"तो आप अपना नोटिस वापस ले लें, मैं अपना इस्तीफ़ा वापस ले लूँगा। पत्र का कार्य सुचारु रूप से चलना चाहिये, प्रधान सम्पादक चाहे वे रहें या मैं—इससे आपको क्या सरोकार है? काम मैं बराबर पूरी मुस्तैदी के साथ करता रहूँगा।"

व्यवस्थापकजी हँस कर बोले—अच्छी बात है—जैसी आपकी इच्छा। मैं नोटिस वापस लिये लेता हूँ।"

"तो मैं भी इस्तीफा वापस लेता हूँ।"

यह कह कर शर्म्माजी ने इस्तीफ़ा उठा लिया और फाड़ कर फेंक दिया।

संशोधन

मनुष्य जब जीवन के किसी एक क्षेत्र में कुछ दिनों रहकर, स्थिर हो जाता है, तब उसके लिये उस क्षेत्र को छोड़ कर किसी दूसरे क्षेत्र में काम करना,—यदि असम्भव नहीं तो—कठिन अवश्य हो जाता है। एक कपड़े का व्यापारी, जो उसमें रम गया है और जिसने अपने जीवन का कुछ अंश उसमें व्यतीत किया है, वह—यदि उसे छोड़ कर—कोई दूसरा काम करना चाहे, तो उसे कठिनता पड़ेगी। जो व्यक्ति आरम्भ से दासत्व में पड़ गया है और उसमें स्थित हो गया है, उसे कोई स्वतन्त्र कार्य करना एक बड़ा कठिन काम दिखाई पड़ता है। उस काम में उसे चाहे कष्ट ही क्यों न होता हो, पर वह कभी कोई दूसरा काम करने का साहस तक नहीं करता—चाहे उस दूसरे कार्य में उसकी उन्नति की आशा भी हो।

ठीक यही दशा पण्डित राजनारायण की थी। उन्होंने बी० ए० एल०—एल० बी० पास करके वकालत आरम्भ की थी और

उनकी वकालत का भविष्य अच्छा दिखाई पड़ता था कि उसी समय असहयोग की लहर देश में उठी। पण्डित राजनारायण ने भी देश-भक्ति के क्षणिक आवेश में आकर वकालत छोड़ दी और खद्दर धारण करके पूरे देश भक्त बन गये। उनके इस कार्य से उनके माता-पिता अप्रसन्न हुए; परन्तु सर्वसाधारण में उनके इस कार्य से उनकी प्रतिष्ठा तथा आदर बढ़ा, इसलिये उन्होंने अपने इस कार्य को अत्यन्त उचित और हितकर समझा। परन्तु घर में इतना सुभीता नहीं था कि वे अपनी हैसियत तथा योग्यता के अनुसार कोई ऐसा काम कर लेते कि देशभक्ति के साथ ही साथ उदरपोषण का कार्य भी भली भांति और निश्चिन्तता-पूर्वक चलता रहता। इधर असहयोग करने के पश्चात् उन्हें साल भर के लिये जेल-यात्रा भी करनी पड़ी। जेल से छूटने पर उनके मान तथा प्रतिष्ठा में और भी वृद्धि हुई। इसका परिणाम यह हुआ कि वे पूरे देशभक्त बन गये। अब उनके लिए देशभक्ति का मार्ग त्यागकर; कोई दूसरा मार्ग ग्रहण करना अत्यन्त कठिन हो गया।

दिसम्बर का महीना था। पण्डित राजनारायण अपने छोटे से कमरे में बैठे हुए 'लीडर' पढ़ रहे थे। उसी समय उनके एक खद्दरधारी मित्र आये। उन्हें देखते ही राजनारायण बोल उठे: आइये त्रिपाठी जी; कहिये सब आनन्द ?

त्रिपाठीजी, "आपकी कृपा है" कहकर पण्डितजी के सम्मुख बैठ गये।

त्रिपाठीजी बैठकर बोले—क्या आज का 'लीडर' है ?

पण्डितजी—जी हाँ।

त्रिपाठीजी—क्या समाचार हैं ?

पण्डितजी—कोई विशेष बात नहीं, काँग्रेस की तैयारियाँ

बड़े जोरों से हो रही हैं।

त्रिपाठीजी—हाँ, इस बार की कांग्रेस देखने योग्य होगी। आप तो अवश्य जायँगे ?

पण्डितजी—हाँ, विचार तो है, देखिये जो पूरा हो जाय।

त्रिपाठीजी—आप तो नगर कांग्रेस कमेटी की ओर से प्रतिनिधि चुने गये हैं।

पण्डितजी—जी हाँ।

त्रिपाठीजी—तब तो आप अवश्य ही जायँगे, वैसे चाहे न जाते।

पण्डितजी—नहीं, कोई आवश्यक तो नहीं है।

त्रिपाठीजी—हाँ, आवश्यक तो नहीं है, पर जाना चाहिए।

पण्डितजी—हाँ, जाना तो प्रत्येक दशा में अच्छा ही है।

त्रिपाठीजी—क्या कहूँ, इच्छा तो मेरी भी थी पर मैं तो शायद न जा सकूं।

पण्डितजी—क्यों ?

त्रिपाठीजी—दो एक काम ऐसे आवश्यक हैं कि शायद अवकाश न मिले। आप जानते हैं रोजगार में एक न एक झंझट लगा ही रहता है।

पण्डितजी—झंझट तो लगे ही रहते हैं, पर यार, चार छः रोज के लिए तो कोई बात नहीं।

त्रिपाठीजी—हाँ बात तो कुछ नहीं। देखिये, चेष्टा करूँगा—यदि चल सका तो अवश्य चलूंगा—आपके साथ ही चलूंगा।

पण्डितजी—बड़ी सुन्दर बात है।

त्रिपाठीजी—वैसे तो यहाँ से कई आदमी जायँगे।

पण्डितजी—हाँ अभी तो आठ दस आदमियों के जाने की बात है। समय पर जितने चले जायँ।

त्रिपाठीजी थोड़ी देर बैठकर चले गये। पण्डितजी जब

अकेले रह गये तो उन्हें यह चिन्ता उत्पन्न हुई कि इस बार काँग्रेस कैसे जायँगे। कांग्रेस जाने में कम से कम सौ डेढ़ सौ रुपये चाहियें—यहाँ दस बीस रुपये से अधिक का सुभीता नहीं। कांग्रेस कमेटी ने पंडित जी का नाम विशेषरूप से काँग्रेस के प्रतिनिधित्व के लिये चुना था। ऐसी दशा में न जाने से देश-भक्ति में बट्टा लगा जाता है। कांग्रेस कमेटी की बला से उनकी आर्थिक दशा चाहे जैसी हो; उसने तो उनके गले में प्रतिनिधित्व का पट्टा डालकर छोड़ दिया—"कि जाओ बच्चा, माँगते-खाते चले जाओ, देश-भक्ति का यही मजा है।" परन्तु देश भक्ति के इस मजे से पण्डितजी की प्रकृति मेल नहीं खाती थी। पण्डितजी उन आदमियों में से थे जो शान के साथ देश-भक्ति करना अधिक अच्छा समझते थे, और कम से कम अपने लिये तो अनिवार्य समझते थे। वह तो मजा इसमें समझते थे कि कम से कम सेकेण्डक्लास में यात्रा की जाय—कांग्रेस में भी शान के साथ रहें, देखने वाले भी समझें कि किसी नगर से प्रतिनिधि आये हैं। पर ये सब तो उस समय हो सकता है जब पल्ले नक़द्-नारायण हों। जिस समय काँग्रेस कमेटी ने पण्डितजी का नाम प्रतिनिधित्व के लिये चुना था उस समय पण्डितजी शर्म के मारे यह कह न सके कि—"भई हमारा नाम मत चुनो, हम न जा सकेंगे, हमारी आर्थिक दशा अच्छी नहीं है।" भला ऐसी हीन बात पण्डितजी कैसे कह सकते थे। भलमंसी में बट्टा लग जाता, लोगों की दृष्टि से गिर जाते। अभी तो लोग यह समझते हैं कि पण्डितजी को असहयोग किये इतने दिन हो गये, वे अपना सारा समय देश-भक्ति ही में लगाते हैं, अन्य कोई काम नहीं करते—ईश्वर का दिया हुआ सब कुछ है, उन्हें कमी क्या है। पिता ने यथेष्ट धन संग्रह किया है, वह सब देश के ऊपर न्योछावर किये दे रहे हैं। उन्हें परवा किस बात की है। परन्तु पण्डित

जी को जैसी परवा थी, वह उनका हृदय ही जानता था।

पण्डितजी इसी चिन्ता में ग्रस्त रहे। सोचा पिता से मांगें। परन्तु फिर विचार आया कि पिता गृहस्थी का भार उठाये हुये हैं, यही क्या कम है, कहां से देंगे। बड़ी देर तक सोचते रहे—अन्त में यही स्थिर किया कि एक बार पिताजी से ही कहें, जहाँ इतना कर रहे हैं वहाँ यह भी कर ही देंगे।

(२)

दूसरे दिन उपयुक्त अवसर देखकर पण्डित राजनारायण ने अपने पिताजी से कहा—पिताजी आपको मालूम है, इस बार कांग्रेस बड़ी धूम से हो रही है।

पिताजी ने लापरवाही से उत्तर दिया—हाँ, पढ़ा तो था।

पण्डितजी—इसबार की काँग्रेस देखने योग्य होगी।

पिताजी ने इसका कुछ उत्तर न दिया। पिताजी की उदासीनता देखकर राजनारायण का हृदय डूबने लगा। परन्तु फिर साहस करके बोले—यहाँ से बहुत से लोग जा रहे हैं।

इस बार पिता ने कुछ उत्सुकता प्रकट की, बोले—कौन कौन जा रहा है?

राजनारायण ने कुछ नाम बताये, तत्पश्चात् बोले—कांग्रेस कमेटी ने मेरा नाम भी चुना है और खास तौर से चुना है।

पिता—तुम्हारी तो आजकल नगर के नेताओं में गिनती है, तुम्हारा नाम क्यों न चुना जायगा।

राजनारायण प्रसन्नमुख होकर बोले—हाँ लोग बड़ा जोर डाल रहे हैं, कहते हैं तुम्हें अवश्य चलना चाहिये। आपकी क्या राय है?

राजनारायण के पिता संसार देखे हुए और एक ही खुर्राट थे। समझ गये कि पुत्रराम का उनसे राय लेना इल्लत से खाली नहीं है। क्योंकि उनको यह अच्छी तरह मालूम था कि उनके

पुत्र ने अधिकांश कामों में उनकी राय ली ही नहीं और जब कभी उन्होंने स्वयम् किसी मामले में राय दी, उसे उन्होंने माना ही नहीं। अतएव आज जो इतने प्रेम पूर्वक राय पूछी जा रही है उसमें कोई रहस्य अवश्य है। यह सोच समझ कर उन्होंने कहा—भई मेरी राय क्या, जो तुम्हारा जी चाहे सो करो। मेरी राय तो कभी तुमने मानी नहीं। मेरी राय मानते तो आज मुझे बुढ़ापे में ये कष्ट क्यों सहने पड़ते।

राजनारायण की आशालता पर तुषारपात हुआ। कुछ देर तक चुप खड़े सोचते रहे। अन्त में उन्होंने खिन्न होकर यह निर्णय किया कि डरने दबने का कोई काम नहीं, स्पष्ट बात चीत करनी चाहिए, देना होगा दे देगें नहीं तो देखा जायगा। यह सोचकर उन्होंने कहा—"इच्छा की तो कोई बात नहीं, जाना आवश्यक है, न जाने से बदनामी होगी। मेरे पास इस समय रुपये हैं नहीं, इस लिए यदि आप रुपये दे सकें तो चला जाऊँ।"

पिता ने पुत्र की ओर स्थिर दृष्टि से देखते हुए कहा—राजनारायण तुझे मुझ से रुपये मांगते शर्म भी नहीं मालूम होती। एक तो न जाने मैं किस प्रकार गृहस्थी का खर्च चला रहा हूँ। तुम से बहुत कुछ आशा थी, उसी आशा पर हजारों रुपये खर्च करके तुम्हें पढ़ाया लिखाया, तुम्हारी ब्याह-शादी की, पर वे आशाएँ सब लुप्त हो गईं। अब मेरी आशा के फलने-फूलने का समय आया तब तुम्हें देश-भक्ति सवार हुई। इस पर भी मैंने सबर किया कि चलो लड़के की इच्छा है, यह भी सही, मैं जब तक जीवित हूँ जैसे बनेगा चलाऊँगा। मेरे पश्चात् जब सिर पर पड़ेगी तब अपने आप सोचे समझेगा। यहाँ तक तो कोई बात नहीं। परन्तु अब कमाना-धमाना तो भाड़ में गया, तुम उल्टे मुझी को नोचने की ताक में हो। सो भई मुझसे तो

यह हो नहीं सकता कि इधर तुम्हारे बालबच्चों का भी खर्च उठाऊँ और उधर तुम्हारी देशभक्ति के लिए भी तुम्हें दूं।

राजनारायण कुछ क्रुद्ध होकर बोले—तो देश-भक्ति कुछ बुरा काम तो है नहीं।

पिता—यह कौन कहता है, पर देशभक्ति भी तभी भली भाँति हो सकती है जब उदर-पोषण की चिन्ता न हो। साथ ही देश-भक्ति के यह अर्थ भी नहीं हैं कि घर द्वार की चिन्ता छोड़कर रात दिन उसी में फँसे रहो! देशभक्ति इस प्रकार भी हो सकती है कि अपना और अपने बालबच्चों का पालनपोषण करने के साथ ही साथ जो देश सेवा तुम से बने वह करते रहो। यदि तुम्हें ऐसी ही देश सेवा करनी थी तो तुम्हें अपना विवाह नहीं करना था। अकेले रहते-जो मिल जाता खा लेते, जो मिल जाता पहन लेते और रात दिन देश सेवा करते। देश सेवा दो ही तरह के आदमी भली भाँति कर सकते हैं—एक तो त्यागी और दूसरे श्रीमान्! त्यागियों और महात्माओं की स्वयम् अपनी आवश्य-कताएँ बहुत अल्प होती हैं, देश की सेवा के लिए उन्हें जिस बात की आवश्यकता होती है, वह उनके धनी-मानी भक्त उनके लिए प्रस्तुत करते हैं। या फिर श्रीमान लोग कर सकते हैं—जिनके पास इतना धन है, जिनकी स्थायी आय इतनी है कि वे स्वयम् कुछ भी करें, कहीं भी रहें परन्तु उन्हें अपने परिवार के भरण-पोषण की कुछ चिन्ता नहीं। हमारे तुम्हारे समान मध्य श्रेणी के गृहस्थों को इस प्रकार की देश सेवा शोभा नहीं देती, और न देश-सेवा से देश का कुछ भला ही हो सकता है। जो व्यक्ति अपने छोटे से परिवार की नौका नहीं खे सकता वह इतने बड़े देश की नौका को क्या पार लगावेगा। कुछ नहीं यह सब ढोंग है। तुम्हारे काँग्रेस न जाने से काँग्रेस की कौन बड़ी भारी हानि हो जायगी? उसका कौन सा काम रुक जायगा?

पुत्र—यह तो आप बड़ी लचर बात कह रहे हैं, यदि प्रत्येक आदमी ऐसा ही सोच ले तो क्या दशा हो—एक भी आदमी काँग्रेस में न दिखाई पड़े।

पिता—(हँसकर) यह बड़ी ही लचर दलील है जो प्रायःलोग किया करते हैं। 'यदि प्रत्येक आदमी ऐसा सोच ले,' यह वाक्य कहा तो बहुत जाता है; परन्तु क्या वास्तव में प्रत्येक आदमी कभी भी ऐसा सोच सकता है—इसका उत्तर कोई नहीं देता। रोना तो सारा यही है कि प्रत्येक आदमी न एक बात सोचता है, न करता है। यदि प्रत्येक आदमी एक ही बात सोच ले और एक ही बात करे तो भारत को चौबीस घण्टों के अन्दर स्वराज्य मिल सकता है। क्या जितने आदमी काँग्रेस में जाते हैं, सब यही सोच कर जाते हैं कि उनके बिना काँग्रेस अधूरी रहेगी? मेरा तो खयाल है कि बहुत से आदमी काँग्रेस में केवल उसी खयाल से जाते हैं जिस खयाल से लोग कोई मेला-तमाशा, नुमायश इत्यादि देखने जाते हैं। काँग्रेस देश के हित की बात सोचे या अनहित की उनकी बला से, उनकी तो सैर हो गई, चार पाँच दिन आनन्द पूर्वक व्यतीत हो गये।

पिता की इस बात से पं० राजनारायण मर्माहत हुए। क्योंकि वे भी स्वयम् यही भाव लेकर जा रहे थे कि "वहाँ चार पाँच दिन आनन्द रहेगा, नया शहर देखने को मिलेगा। इसके अतिरिक्त देश के अच्छे-अच्छे नेताओं से भेंट होगी, उनसे परिचय होगा। लोग हमें भी जानेंगे कि यह अमुक नगर के नेताओं में से हैं! इस प्रकार हमारा यश फैलेगा, इत्यादि इत्यादि।" परन्तु उन्होंने अपने हृदय का यह भाव पिता पर प्रकट न होने देने की इच्छा से कहा—"प्रत्येक आदमी इस विचार से नहीं जाता।"

पिता—तो प्रत्येक आदमी कोरी देश सेवा के विचार से भी

-नहीं जाता।

पुत्र—खैर, इस झगड़े से कोई मतलब नहीं। मुझे केवल यह जानना था कि आप रुपये दे सकते हैं कि नहीं।

पिता—मैं तो कह चुका, कि मैं स्वयम् ही एक-एक पैसे को तङ्ग हूँ; तुम्हें कहाँ से दूँ। एक बार हो तो दे भी दूँ। दो-तीन बार दे चुका। तुम्हारा तो नित उठ का यही झगड़ा है कि आज अमुक जगह कानफ्रेन्स है, आज अमुक जगह काँग्रेस है, आज अमुक जगह व्याख्यान देना है, आज अमुक नेता से मिलने जाना है। तो भाई मैं इतना कहाँ से लाऊँ जो तुम्हें देता रहूँ। तुम कमाकर घर में कुछ न दो, परन्तु अपने इन कामों के खर्च के लिए तो कुछ उपार्जन कर लिया करो—मैं इसी को बहुत समझूंगा।

राजनारायण-"अच्छी बात है न दीजिए, देखा जायगा।" यह कह कर वह क्रोध में भरे हुए पिता के पास से चले आये।

(३)

पण्डित राजनारायण बड़ी कठिनता में पड़ गये। काँग्रेस में जाना आवश्यक! पास रुपये नहीं—क्या किया जाय। बहुत कुछ विचार किया—अनेक युक्तियाँ सोचीं। पहले निश्चय किया कि किसी से उधार ले लें, परन्तु फिर खयाल आया कि—"उधार मित्र ही दे सकते हैं। उनसे मांगूंगा तो वे अपने जी में क्या कहेंगे। आज तक किसी से उधार मांगा नहीं।"

ऐसी ही बातें सोचते-सोचते जब वह थक गये और कुछ निश्चित न कर सके तो उन्हें अपने ही ऊपर क्रोध आया, सोचा—"हम भी बैठे बिठाये एक मुसीबत मोल ले बैठे। वकालत करते, चार पैसे कमाते, मौज करते। घर वाले भी सन्तुष्ट रहते, अपनी भी चैन से कटती। अब एक एक पैसे के लिए पराया मुँह ताकना पड़ता है। असहयोग करने से क्या लाभ

हुआ। यदि स्वराज्य भी मिलने की आशा होती तो ठीक था, पर स्वराज्य अभी कोसों दूर दिखाई पड़ता है। हम बेकार में गेहूँ के साथ घुन की तरह पिस गये। पिताजी ठीक कहते हैं, यह हम लोगों के बस का काम नहीं है। बाल बच्चेदार आदमी को, सब काम-काज छोड़ कर, इस प्रकार देश सेवा के पीछे हाथ धोकर पड़ने की आवश्यकता नहीं। पर अब ऐसे बुरे फँसे हैं कि इसे छोड़ नहीं सकते। इतनी दूर चले आये हैं कि पीछे लौट नहीं सकते। जो कुछ आदर प्रतिष्ठा है वह सब मिट्टी में मिल जायगी, उल्टे लोग घृणा करने लगेंगे। यह कोई न देखेगा कि पण्डितजी ने किस मुसीबत और मजबूरी में पड़कर ऐसा किया है। सब यही कहेंगे-"कायर हैं, भाग खड़े हुए। जो ऐसा ही करना था तो काहे को असहयोग किया था—कुछ शान मारी जाती थी।"

पण्डित राजनारायण इसी प्रकार की बातें सोच सोच कर कुढ़ते रहे। शामको कॉंग्रेस कमेटी की बैठक थी। पण्डितजी उसमें गये इन्हें देखते ही लोगों ने कहा—आइये पण्डित जी।

एक साहब ने पूछा—कहिये किस दिन चलियेगा?

पण्डित जी कुछ अन्यमनस्क थे—बोले—कहाँ?

वह व्यक्ति बोला—कॉंग्रेस में, चलियेगा न?

एक दूसरे व्यक्ति बोल उठे—वाह, यह तुमने एक कही, पंडित जी हमारे नगर के खास आदमी हैं, यह न जायँगे तो जायगा कौन? अब की तो पण्डित जी आप भी वहाँ किसी प्रस्ताव पर बोलियेगा। सब्जेक्ट कमेटी में भी आपका होना आवश्यक है।

ये सम्मान-सूचक वाक्य पण्डित जी के कानों को बड़े मधुर लगे। आत्म-सम्मान तथा आत्म-गौरव का नशा सा चढ़ आया। पर यह नशा कुछ ही क्षण रहा। जहाँ कॉंग्रेस जाने और अपनी असमर्थता की याद आई वहीं सारा नशा उतर गया। एक

लम्बी साँस छोड़कर सोचने लगे—"इस काम में जितना मान तथा आदर है उतना किसी में नहीं। यदि आर्थिक चिन्ताएँ न होतीं तो, इससे बढ़ कर सुख किसी में नहीं था। पर···।"

वे ही सज्जन फिर बोले—पण्डित जी, दिन निश्चय कर लीजिये, हम सब आप के साथ ही साथ चलेंगे।

पण्डितजी मन ही मन में जलकर खाक हो गये। सोचने लगे—"सब अपनी ही कहते हैं, यह कोई भकुआ नहीं कहता कि आपका काँग्रेस का खर्च हमारे सिर रहा! पण्डितजी पंडित जी कहते जीभ घिसी जाती है और अभी जो किसी से कहदूं कि—अच्छा मैं आपके साथ चलूंगा, मेरा सब खर्च आप पर रहा,—तो अभी सत्तरह कोने का मुँह बनावें और मुँह फेर लें—फिर यह ध्यान न रहे कि पण्डितजी का जाना आवश्यक है। हर एक सार्वजनिक काम में हमारी पूछ होती है, पर यह कोई जानने की परवा नहीं करता कि पण्डितजी की हालत क्या है। इनका खर्च कहाँ से चलता है।"

पण्डितजी का चित्त इतना खिन्न हुआ कि काँग्रेस कमेटी में उनका जी न लगा। सिर के दर्द का बहाना करके उठ आये।

पण्डित राजनारायण ने अन्त में यह स्थिर किया कि इस बार तो जैसे बने कांग्रेस चलना ही चाहिए, भविष्य में देखा जायगा। यह सोचकर उन्होंने बहुत चेष्टा करके, लड़भिड़कर अनुनयविनय करके कुछ रुपये अपनी माता से लिए और कुछ अपनी पत्नी से। इस प्रकार उन्होंने कांग्रेस जाने की तैयारी कर ही ली। पर इस प्रकार रुपये प्राप्त करने में उन्हें जितना मानसिक क्लेश हुआ—उसे वह ही जानते थे।

पण्डितजी कांग्रेस पहुँच गये। वहाँ चार पाँच दिन खूब आनन्द से कटे। वहाँ अच्छे अच्छे आदमियों से परिचय हुआ। उत्साह बढ़ा।

परन्तु कांग्रेस से लौटकर घर आये तब उन्हें यह चिन्ता सवार हुई कि इस प्रकार वे नकेल के ऊँट बने फिरने से काम न चलेगा। ख़ाली देश—सेवा में समय व्यतीत करने से भोजनों के लाले पड़ जायँगे। इसलिये कोई ऐसा उद्योग करना चाहिए जिससे चार पैसे की आमदनी होती रहे।

(४)

अन्त में बड़ी कठिनता से और अत्यन्त चेष्टा करने के पश्चात् पण्डित राजनारायण को ३०) रुपये मासिक के दो ट्यूशन मिले। उनके दुर्भाग्य से, जिस शहर में वह रहते थे, वह एक छोटा शहर था। वह कोई व्यापारिक नगर नहीं था; इसलिए वहाँ सरकारी नौकरी तथा वकालत को छोड़कर और कोई आमदनी का अच्छा द्वार न था। इसलिये उन्हें और भी कठिनता पड़ी। इस प्रकार लस्टम-पस्टम एक वर्ष व्यतीत हुआ। पण्डित राजनारायण की आर्थिक दशा प्रतिदिन खराब होती गई। कई बार उनके पिता ने उन्हें समझाया कि, "तुम इस झगड़े को अलग करो, वकालत करना आरम्भ करो।" परन्तु पण्डित राजनारायण को पुनः वकालत आरंभ करना बड़ा कठिन कार्य दिखाई दे रहा था। अन्त को पिता भी झींक कर चुप हो रहे। इधर पण्डित राजनारायण अपनी देश सेवा का छकड़ा किसी न किसी प्रकार चला रहे थे। दिखाने के लिए सब कुछ करते थे। खद्दर भी धारण करते थे। क़सम खाने के लिए प्रतिदिन चार छः माशे सूत भी कात लेते थे। परन्तु हृदय में वे उस घड़ी को कोसते थे जिस घड़ी में उन्हें असहयोग करने की धुन सवार हुई थी।

उसी वर्ष उनके नगर में प्रान्तीय कांग्रेस हुई। उसमें वे एक ख़ास पद पर नियुक्त हुए। रुपया-पैसा तथा हिसाब,किताब भी

उनके हाथ में था। अतएव वह इस सुअवसर से लाभ उठाने का लोभ संवरण न कर सके। अभाव और दरिद्रता में पड़कर बिरले ही मनुष्य दृढ़ रह सकते हैं। खेद है कि पण्डित राजनारायण उन बिरले मनुष्यों में से नहीं थे। उन्होंने जहाँ तक बना तहाँ तक जनता की रक़म पर हाथ साफ़ किया। जब जब उनके अन्तःकरण ने उनके इस कार्य के विरुद्ध आवाज़ उठाई तब तब उन्होंने यह कहकर उसे संतुष्ट कर दिया कि—"जब हम जनता की सेवा करते हैं तब हमें उसके धन के कुछ अंश को अपने व्यय में लाने का नैतिक अधिकार है।" परन्तु उस समय वे यह भूल जाते थे कि—यदि वे खुले तौर पर, कह-सुनकर ऐसा करें तब तो किसी अंश में यह ठीक भी है, पर इस प्रकार गुप-चुप कार्य करना न्याय के अनुकूल कदापि नहीं।

जिस कार्य में लोगों की आत्मा उच्च होती है, उसी कार्य में उनकी आत्मा पतित भी हो सकती है—वे मनुष्य से पशु तक बन सकते हैं। देश सेवा एक ऐसा महत् कार्य है कि उसमें पड़कर मनुष्य उच्चात्मा बन सकता है। लेकिन पण्डित राजनारायण उसमें पड़कर नीचात्मा बन गये। परन्तु इसमें देश-सेवा का कुछ भी अपराध नहीं—यह पण्डित राजनारायण की प्रकृति और स्थिति का अपराध था।

इस घटना के पश्चात् प्रतिदिन उनकी आत्मा का पतन होता गया। पहले वे स्वप्न में भी कभी किसी संस्था के कोष पर दृष्टि न डालते थे; परन्तु कानफ्रेन्स होने से उन्हें इस बात का चस्का पड़ गया। वे सदैव इसी ताक में रहने लगे कि कोई सार्वजनिक काम हो, कोई चन्दा उठे अथवा कांग्रेस कमेटी में उन्हें ऐसा पद मिल जाय कि जिससे कोष और हिसाब-किताब उनके हाथों में रहे—इत्यादि इत्यादि। पहले वे आर्थिक सहायता की आकांक्षा नहीं करते थे; परन्तु अब वे प्रायः श्रीमानों से यह इच्छा

लेकर मिला करते थे, कि वे कुछ उनकी आर्थिक सहायता करें। पहले वह किसी से उधार नहीं लेते थे; परन्तु अब उधार माँग लेना तो कोई बात ही नहीं थी; पर साथ ही लेकर देना उन्हें बड़ा बुरा मालूम होता था। जो बेचारे उनसे अपने रुपयों का तक़ाज़ा करना उचित नहीं समझते थे, उनके रुपये वसूल भी नहीं होते थे। इतना सब कुछ था; परन्तु पण्डित जी के मान तथा प्रतिष्ठा में कोई अन्तर नहीं पड़ा था। संसार में सचाई कम तथा ढोंग अधिक है। जो लोग अपनी घर की चारदीवारी के भीतर बैठकर पण्डितजी के इन कार्यों की आलोचना घृणा के साथ किया करते थे; वे ही मञ्च पर खड़े होकर सर्वसाधारण के सामने पण्डितजी की प्रशंसा के पुल बांध देते थे। लोगों के इस कार्य से पण्डितजी का साहस और भी बढ़ता जाता था।

रात के आठ बज चुके थे। पण्डितजी कांग्रेस कमेटी की बैठक से लौटे हुए घर आ रहे थे। उसी समय एक मनुष्य ने उनके पास आकर कहा—"पण्डितजी मुझे आपसे एक बात कहनी थी।"

पण्डितजी उस आदमी की शक्ल देखकर सूख गये, सिटपिटा कर बोले—कहो क्या, कहना चाहते हो।

उस व्यक्ति ने कहा—चार महीने हुए आपने चालीस रुपये लिये थे।

पण्डितजी—हाँ, हाँ, मुझे उन रुपयों का स्वयम् ख़याल है—पर क्या करूँ आजकल ज़रा हाथ तंग है, मैं शीघ्र ही प्रबन्ध करके तुम्हारे रुपये दे दूंगा। तुम घबराओ मत, तुम्हारे रुपये मिल जायँगे।

वह व्यक्ति—वैसे तो कोई बात नहीं, आप जब चाहते दे देते; पर इस समय मुझे आवश्यकता थी।

पण्डितजी—क्या करूँ मजबूरी है—यदि चार छः रोज़

पहले सूचना दे देते तो सम्भव है अब तक प्रबन्ध हो जाता।

वह व्यक्ति—मुझे आपसे तक़ाज़ा करने में संकोच होता था, आज भी बड़ी आवश्यकता पड़ने पर अत्यन्त साहस करके मैंने कहा है, दूसरे, मेरा यह ख़याल था कि आपको स्वयम् उनका ध्यान होगा।

यद्यपि पण्डितजी ने इस व्यक्ति के रुपये अदा करने की चिन्ता करने का कभी कष्ट नहीं उठाया था; परन्तु वह बोल उठे—मुझे तो स्वयम् ध्यान था ही और तुम न भी कहते तो मैं जितना शीघ्र सम्भव होता तुम्हारे रुपये दे देता। तुम जानते हो भाई, देश-सेवा में आमदनी टके की नहीं और हमारे ऊपर गृहस्थी का पूरा खर्च है। न जाने ईश्वर किस प्रकार काम चला रहा है। ऐसी दशा में हाथ तंग होना स्वाभाविक ही है।

वह व्यक्ति—पण्डितजी, आप धन्य हैं, जो इस प्रकार कष्ट सहकर देश-सेवा कर रहे हैं। बड़ा कठिन काम है। क्षमा कीजियेगा, मैंने बड़ी मजबूरी में पड़कर आपको स्मरण दिलाया था—आशा है आप कुछ बुरा न मानेंगे।

पण्डितजी—"नहीं भाई बुरा मानने की कोई बात नहीं। तुमने स्मरण दिलाया तो अच्छा किया। भाई, देश-सेवा में तो कष्ट होता ही है, क्या किया जाय; पर चाहे जो हो हम पीछे हटनेवाले नहीं हैं। हम तो देश-सेवा का व्रत धारण कर चुके हैं।" परन्तु पण्डितजी जैसा व्रत धारण किये हुये थे उसे हम भली भाँति समझते हैं। नेता बनकर नाम कमाने और प्रतिष्ठा बढ़ाने की महत्वाकांक्षा ने उन्हें इतना जकड़ रक्खा था कि वह उसके लिए देश-सेवा तो क्या अत्यन्त घृणित से घृणित काम करने के लिए भी सदैव प्रस्तुत रहते थे। यदि उन्हें यह विश्वास होता कि पुनः वकालत आरम्भ कर देने से उनके मान तथा प्रतिष्ठा में किसी प्रकार का अन्तर नहीं पड़ेगा तो वह देश-सेवा के नाम

पर सुबह शाम सात झाड़ू मारने को सहर्ष प्रस्तुत हो जाते।

(५)

रात के बारह बज चुके थे ! पण्डित राजनारायण के पिता ज्वर-रोग से ग्रस्त होकर मृत्यु शय्या पर पड़े हुए थे। मरने के एक दिन पूर्व उन्होंने राजनारायण को अपने पास बुलाकर कहा—"बेटा, अभी तक मेरे सामने तुम जो कुछ करते रहे, वह ठीक ही था ; परन्तु अब मेरे पश्चात् परिवार के भरण-पोषण का भार तुम्हीं पर आ पड़ेगा। ऐसी दशा में तुमने मेरे पश्चात् क्या करने का विचार किया है ? क्या तुम इसी प्रकार देश-सेवा में लगे रहोगे ?"

पण्डित राजनारायण ने कहा—तो क्या आपकी इच्छा है कि मैं देश-सेवा का कार्य छोड़ दूं ?

पिता—देश-सेवा का कार्य छोड़ना तो किसी भी दशा में अच्छा नहीं कहा जा सकता। परन्तु जिस प्रकार की देश-सेवा तुम कर रहे हो उससे न कुछ देश का ही हित हो सकता है, न स्वयम् तुम्हारा ही।

पण्डितजी—मैं किस प्रकार की देश-सेवा कर रहा हूँ, यह आपको क्या मालूम ?

पिता—मुझे सब मालूम है। मुझ से कोई बात छिपी नहीं है। तुम समझते होगे कि तुम्हारी करतूतें किसी को ज्ञात नहीं हैं, पर बात ऐसी नहीं है। अनेक लोग तुम्हारी देश-सेवा का असली स्वरूप जानते हैं—उन्हीं में से एक मैं भी हूँ।

पण्डित राजनारायण का हृदय धड़कने लगा। उन्हें पिता की बातों से भय मालूम हुआ। परन्तु उन्होंने ऊपर से दृढ़ बने रहने का प्रयास करके कहा—प्रथम तो मेरी देश-सेवा का कोई दूसरा स्वरूप ही नहीं—दूसरे यदि लोगों को मालूम होता तो वे मुझसे तो अवश्य ही कहते।

पिता—यदि तुम्हारे दोष कोई तुम से नहीं कहता, तो इसके यह अर्थ मत लगाओ कि उन्हें कोई जानता नहीं। यह भूल प्रायः लोग किया करते हैं। लोग समझ बैठते हैं कि उनके दोषों की चर्चा उनके कानों तक नहीं पहुंचती इस कारण उन्हें कोई नहीं जानता। इसके अनेक कारण होते हैं। कुछ लोग तो उपेक्षा करते हैं—वे सोचते हैं अपने से क्या मतलब, जो करते हैं करने दो। कुछ लोग स्वयम् अनेक दोषों से भरे होते हैं इस कारण उनका साहस नहीं होता कि वे किसी दूसरे के दोष को स्वयम् उसी के सामने प्रकट करें। उन्हें भय रहता है कि कहीं कोई उनके दोषों की भी आलोचना न करने लगे। यह ठीक है कि ऐसे मनुष्य भी अधिक होते हैं जो वास्तव में किसी व्यक्ति के आचरणों से अवगत नहीं होते—वे समझते हैं कि वह व्यक्ति सदाचार का पुतला है। सच पूछो तो ऐसे ही लोगों के कारण उस व्यक्ति के कुत्सित कर्म्मों पर पर्दा पड़ा रहता है। ये लोग अपने अंध-विश्वास के कारण उसको इतना ऊपर उठाये रहते हैं कि जानने वालों का उसके विरुद्ध कुछ कहने का साहस नहीं पड़ता। यदि इधर उधर कुछ कहा भी जाता है तो लोग उस पर विश्वास नहीं करते।

पण्डितजी—तो आखिर इस व्याख्यान से आपका तात्पर्य क्या है?

पिता—मेरा तात्पर्य यह है कि तुम यह ढोंगपूर्ण जीवन छोड़ दो। अपना बनता बिगड़ता देखो। अपना जीवन सँभालो। मेरा कहना यही है कि तुम वकालत करना आरम्भ कर दो।

पण्डितजी—वकालत और देश-सेवा से तो वैर है।

पिता—यह तुम्हारी भूल है। जिनके हृदय में देश-सेवा के भाव होते हैं वे प्रत्येक दशा में देश-सेवा कर सकते हैं। यह बात दूसरी है कि वे किसी विशेष सिद्धान्त अथवा आदर्श का

पालन न कर सकें—पर देश-सेवा वे भली भाँति कर सकते हैं।

पण्डितजी—वकालत करके मैं किस प्रकार देश-सेवा कर सकूंगा, यह मेरी समझ में नहीं आता।

पिता—तुम सुशिक्षित होकर भी ऐसी लचर बात कहते हो, यह दुःख की बात है। तुम उस दशा में धन द्वारा देश-सेवा कर सकते हो, साहित्य द्वारा देश-सेवा कर सकते हो। हाँ, यदि तुम्हें इसी प्रकार देश-सेवा करनी भली मालूम होती हो तो शौक़से करो, पर यह ढोंग और नीचता छोड़ दो। यह देश-सेवा नहीं देश-द्रोहिता है। इस प्रकार की देश-सेवा से तुम्हारा कितना पतन हुआ है इसे मैं जानता हूँ और तुम भी भली भाँति जानते हो।

पण्डित राजनारायण ने पिता की ओर देखा। पिता और उनकी आँखें चार हुईं। पिता की आँखों में कुछ ऐसी बात थी कि पण्डित राजनारायण की गर्दन लज्जा से झुक गई।

पिता ने फिर कहना आरम्भ किया—देश-सेवा के पवित्र कार्य को क्यों कलुषित करते हो, राजनारायण। इससे अधिक पाप और क्या होगा। देश-सेवा करते हुए भी तुम उतने ही पाखण्डी, उतने ही ढोंगी, उतने ही लोभी, उतने ही स्वार्थी, उतने ही नीच हो जितना कि कोई भी आदमी हो सकता है। मुझे विश्वास है कि वकालत अथवा और कोई कार्य करने से तुम्हारा इतना पतन कभी न होता। तुम इस प्रकार की देश-सेवा के पात्र कदापि नहीं हो। इस प्रकार सर्वस्व त्याग कर देश-सेवा करना बड़ी उच्चात्माओं का काम है। सर्व साधारण इसे नहीं कर सकते—जो करने का दावा करते हैं वे भी तुम्हारी ही तरह ढोंगी, पाखंडी और नीच हैं।

पण्डित राजनारायण ने सिर उठाया। उनके नेत्रों से अश्रु-धारा बह रही थी। उन्होंने पिता के हाथ पर अपना सिर रख दिया और बोले—पिता, वास्तव में मैं बड़ा नीच हूँ। नाम कमाने और आदर पाने की महत्वकांक्षा ने मुझे इस दशा पर पहुंचाया।

मैंने इसके चक्कर में पड़कर बड़ी नीचताएँ की। ऐसी नीचताएँ मैं और किसी भी कार्य में कदाचित् ही करता।

पिता—बेटा! मुझे यह देख कर प्रसन्नता हो रही है, कि तुम्हें अपने कार्य पर पश्चात्ताप है?

पण्डित राजनारायण—मुझे हृदय से पश्चात्ताप है। अब आप जैसा कहें वैसा करूँ।

पिता—मेरा कहना यही है कि तुम इस मार्ग को छोड़ दो।

पण्डितजी—पर मैं इस नगर में मुँह दिखाने योग्य न रहूँगा।

पिता—कुछ चिन्ता नहीं, तुम इसे अपने पापों का प्रायश्चित समझकर इसे सहन करो। यदि तुम्हें यह स्वीकार न हो, तो इस नगर को छोड़ दो, कहीं ऐसी जगह जाकर रहो, जहां तुम्हारे सम्बन्ध में लोगों को अधिक जानकारी न हो।

पण्डितजी—मैं ऐसा ही करूँगा।

पिता—क्या सच्चे हृदय से कहते हो?

पण्डितजी—मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं अब जो कुछ करूँगा शुद्ध और सच्चे हृदय से करूँगा।

× × ×

तीन वर्ष पश्चात्।

पण्डित राजनारायण ने अपना जन्म स्थान छोड़ दिया। अब वह एक ऐसे नगर में है, जहां लोग उनके पिछले जीवन के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते। आजकल उनकी वकालत अच्छी चलती है। वे प्रति मास अपनी आमदनी का दशांश गुप्त दान के रूप में प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के पास भेज देते हैं। अपनी इस तुच्छ देश-सेवा से उन्हें जितना संतोष तथा सुख होता है, उतना उन्हें उस समय कभी नहीं होता था जब कि वे देश के लिये अपना सर्वस्व दे देने की डींगें मारते फिरते थे।

———

अपराधी

(१)

पण्डित आनन्दीप्रसाद प्रथम श्रेणी के डिप्टी कलक्टर हैं। पण्डित जी को डिप्टी कलक्टरी करते हुए दस वर्ष हो चुके हैं। इतने समय में आपके रक्त में हुकूमत की गर्मी यथेष्ट मात्रा में उत्पन्न हो गई है। वैसे तो पण्डित जी एक बड़े ही शरीफ़ ख़ानदान के आदमी हैं और उनका यह ख़ानदानी गुण कभी कभी उनके अभिमान तथा दर्प के कवच को फोड़कर अपनी झलक दिखा देता है परन्तु फिर भी साधारण रूप से पण्डित जी बड़े क्रोधी तथा हृदयहीन समझे जाते हैं। इजलास पर बैठकर आप न्याय की पाषाण-मूर्त्ति बन जाते हैं। उस समय दया तथा क्षमा करना आप पाप समझते हैं। लोगों का कहना है कि पण्डितजी न्याय के अर्थ यह लगाते हैं कि जिस प्रकार भी हो सके दण्ड ही दिया जाय। जब तक अपराधी को दण्ड देने की गुञ्जाइश मिले उस समय तक उसे छोड़ देना अन्याय है। न्याय के प्रति पण्डित जी

की इतनी अधिक भक्ति लोगों को कम पसन्द है। जो कोई व्यक्ति किसी अपराध में फँसकर, अभियुक्त की हैसियत से पण्डित जी के इजलास पर जाता है वह समझ लेता है कि चाहे जितनी चेष्टा की जाय, चाहे जितने वकील खड़े किये जायँ पर बिना सजा खाये छूटना असम्भव है। वकील लोग भी अपनी योग्यता पर भरोसा न करके केवल अभियुक्त के भाग्य पर भरोसा करके अथवा अपील द्वारा सफल होने की आशा से उनके इजलास पर आते हैं।

शाम का समय था। डिप्टी साहब अपने बँगले के सामने वाले प्राङ्गण में जो घास से आच्छादित था, आराम कुर्सी पर बैठे हुए थे। उनके सामने तीन कुर्सियों पर उनके तीन मित्र बैठे हुए थे। उन तीनों में एक तो अन्य डिप्टी कलक्टर थे और दो वकील थे। अन्य डिप्टी साहब कह रहे थे—"प्रायः ऐसा होता है कि मनुष्य इच्छा न होते हुए भी एक काम कर बैठता है और प्रायः इच्छा रहते हुए भी नहीं कर सकता।"

हमारे डिप्टी साहब ने उनसे मुस्कराकर कहा—वाह मेहरोत्रा जी, यह आपने क्या कहा? मैंने आपका तात्पर्य बिलकुल नहीं समझा।

मेहरोत्रा जी बोले—मैंने एक साधारण बात कही है जो मनुष्य के जीवन में प्रायः होती रहती है। एक काम ऐसा है कि हम उसे करना चाहते हैं परन्तु परिस्थिति ऐसी पड़ जाती है कि हम उसे नहीं कर सकते—इसी के प्रतिकूल बहुत से काम इच्छा के विरुद्ध करने पड़ते हैं।

डिप्टी साहब बोले—आप भले ही ऐसा करते हों, परन्तु मैंने आज तक कोई काम इच्छा के विरुद्ध नहीं किया। मेरा विचार है कि बहुत कम आदमी ऐसे होंगे जिन्हें इच्छा के विरुद्ध कुछ करना पड़ता होगा। क्यों वकील साहब! आप इस

सम्बन्ध में क्या कहते हैं ?

वह वकील साहब, जिनसे डिप्टी साहब ने प्रश्न किया था, उन वकीलों में थे जो हाकिमों की खुशामद करके तथा हर प्रकार से उनको प्रसन्न करने की चेष्टा करके उन्हें अपने ऊपर कृपालु बना लेने की घात में रहते हैं। और यह केवल इस लिए कि जिस मुक़दमे में वकील साहब पैरोकार हों उस मुक़दमे को डिप्टी साहब वकील साहब के ही पक्ष में फ़ैसला करें। अतएव उक्त वकील साहब ने कहा—मेरी भी राय आप से मिलती है। जिन लोगों में साहस है, जिनका हृदय बलवान है, वे कभी कोई काम अपनी इच्छा के विरुद्ध नहीं करते।

डिप्टी साहब ने मेहरोत्रा जी से कहा—सुनिये !

मेहरोत्रा जी ने दूसरे वकील साहब से पूछा—क्यों त्रिवेदी जी आप क्या ऐसा ही समझते हैं ?

त्रिवेदी जी यद्यपि डिप्टी साहब को प्रसन्न रखना चाहते थे पर अपने अन्तःकरण की हत्या करके नहीं। अतएव उन्होंने कहा मेरा तो विचार यह है कि एक बार तो क्या मनुष्य के जीवन में अनेक बार ऐसे अवसर आते हैं जब उसे इच्छा-विरुद्ध काम करना पड़ता है।

मेहरोत्रा जी ने डिप्टी साहब से कहा—सुनिये !

डिप्टी साहब के कुछ कहने के पूर्व ही त्रिवेदी जी बोल उठे—सम्भव है ईश्वर की सृष्टि में ऐसे लोग भी हों जो चाहे कैसी ही परिस्थिति क्यों न हो इच्छा-विरुद्ध कोई कार्य न करते हों।

डिप्टी साहब ने मेहरोत्रा जी से कहा—त्रिवेदी जी तो दोनों ही बातें कहते हैं।

मेहरोत्रा जी ने डिप्टी साहब से कहा—अच्छा मैं आप ही से पूछता हूँ कि आपने अभी तक कोई काम इच्छा के विरुद्ध नहीं किया ?

डिप्टी साहब ने कहा—कदापि नहीं।

मेहरोत्रा जी—और न कभी कीजिएगा?

डिप्टी साहब—कदापि नहीं।

यद्यपि मेहरोत्रा जी ने हृदय में डिप्टी साहब की बात पर विश्वास नहीं किया तथापि उन्होंने कहा—यदि यह बात है तो मुझे यह कहते प्रसन्नता होती है कि आप बड़े भाग्यवान आदमी हैं। जिस मनुष्य को कभी कोई काम इच्छा के विरुद्ध न करना पड़े, वह बड़ा ही भाग्यवान आदमी है। क्यों त्रिवेदी जी?

त्रिवेदी जी—इसमें क्या सन्देह है।

दूसरे वकील साहब बोल उठे—हमारे डिप्टी साहब तो भाग्यवान हैं ही, इसमें भी क्या कोई सन्देह है?

डिप्टी साहब—जब से मैंने होश सँभाला और स्वावलम्बी हुआ तब से मैंने आजतक कोई काम अपने हृदय के विरुद्ध नहीं किया।

मेहरोत्रा जी बोले—इतना तो मैं अवश्य कहूँगा कि अब तक आपने चाहे इच्छा-विरुद्ध कोई कार्य न किया हो, परन्तु आगे भी आप सदैव ऐसा ही करेंगे, इसमें मुझे सन्देह है।

डिप्टी साहब—आपको सन्देह भले ही हो पर मुझे तो जरा भी सन्देह नहीं है।

मेहरोत्रा जी—अच्छा भविष्य में यदि कभी ऐसा अवसर पड़े तो आप मेरे इन शब्दों को स्मरण कीजिएगा।

डिप्टी साहब ने मुसकराकर कहा—बहुत अच्छा, अवश्य स्मरण करूँगा।

(२)

उपर्युक्त बात चीत को छः महीने व्यतीत हो गये थे। डिप्टी साहब दौरे पर थे। एक दिन डिप्टी साहब शिकार खेलते हुए जा रहे थे। हठात् उनके साथ के अर्दली ने कहा—"हुजूर

देखिए वह सामने सुरख़ाब का जोड़ा चर रहा है"। डिप्टी साहब ने उस ओर देखकर कहा, हाँ सुरख़ाब ही हैं। यह कह कर उन्होंने बन्दूक उठाई और निशाना बाँधकर दन से दाग दी। एक सुरख़ाब तो वहीं फड़फड़ाने लगा और दूसरा काँव काँव करता हुआ उड़ गया। अर्दली ने दौड़ कर सुरख़ाब उठा लिया। जिस स्थान पर दोनों सुरख़ाब चर रहे थे उसके पीछे ही एक कर्बी का खेत था। बन्दूक के दगने की आवाज होते ही उस खेत से एक बालक की चीत्कार सुनाई पड़ी। परन्तु डिप्टी साहब ने उस चीत्कार पर कुछ ध्यान नहीं दिया, बन्दूक कंधे पर रख कर एक ओर चल दिये। परन्तु वे दस पन्द्रह कदम ही आगे बढ़े थे कि खेत से एक युवक और बलिष्ट कृषक कांधे पर लाठी धरे निकला। डिप्टी साहब हेट लगाये हुए थे अतएव उसने पुकारा—ओ, साहब, अरे सहबऊ हो। डिप्टी साहब ठिठुक कर खड़े हो गये और उसकी ओर देखकर बोले—क्या है ?

कृषक ने कहा—है क्या जरा अपनी करतूत आकर देखो। बड़े शिकारी बने हो, धरली एक टोपी सिर पर और चल दिये। न आदमी देखो न कुछ देखो। हमारे बच्चे को लँगड़ा कर दिया।

डिप्टी साहब भला ऐसी बात चीत सुनने के अभ्यस्त कहाँ थे। मारे क्रोध के मुख लाल हो गया और गाली देकर बोले—क्यों बे सीधी तरह बात नहीं करता।

कृषक बोला—गाली बाली न देना नहीं अभी मारे लाठियों के भुस कर दूंगा, बन्दूक बन्दूक सब धरी रहेगी, हाँ, यह समझ लेना। एक तो बच्चे को लँगड़ा कर दिया दूसरे ऊपर से गाली देते हो। वाह यह भी कोई नवाबी समझ रक्खी है, अङ्गरेज बहादुर का राज न हुआ ठट्ठा हो गया।

डिप्टी साहब तो क्रोध, झेंप तथा "किंकर्तव्य विमूढ़ता" के मारे कुछ बोल न सके परन्तु उनके अर्दली ने कहा, अबे जानता

नहीं कौन हैं ? आदमी देखकर बात नहीं करता, साले दो बरस के लिये भेज दिया जायगा, चक्की पीसते पीसते मर जायगा।

कृषक और अधिक उत्तेजित होकर बोला—काहे को दो बरस को भेजेंगे किसी ससुरे की ········(गाली)।

उसी समय एक स्त्री बालक को गोद में लिये हुये खेत से निकली—बालक रो रहा था। कृषक ने कहा—देखो आकर अपनी करतूत !

अर्दली ने आगे बढ़ कर देखा—बालक के पैर में एक छर्रा लग गया था और घाव से खून बह रहा था। परन्तु छर्रा छिछ-लता हुआ हल्का पड़ा था।

अर्दली ने कहा—हाँ छर्रा लग तो गया है पर कोई चिन्ता की बात नहीं है, दो चार दिन में अच्छा हो जायगा। कुछ जानकर थोड़े ही मारा, धोखे में लग गया।

कृषक—कैसे धोखे में लग जाय ? आदमी देख सुनकर बन्दूक न चलावे। आजकल चारों तरफ़ खेतों में आदमी काम कर रहे हैं।

अर्दली—ख़ैर, जो हुआ सो हुआ। अबे जानता नहीं डिप्टी साहब हैं भलाई इसी में है कि चुपचाप चले जाओ।

कृषक चिल्लाकर बोला—डिप्टी साहब हैं तो क्या किसी के बाल-बच्चे मार डालेंगे ? हाकिम को चाहिये कि परवस्ती करें, न कि उलटे जान लेने पर उतारू हो जायँ। वाह अच्छे डिप्टी साहब हैं।

डिप्टी साहब ने अर्दली से कहा—मार साले के बीस जूते, साला यों ही चला जाता है।

कृषक ने कहा—सरकार अब सीधी तरह चले जाइये। और कोई होता तो छाती पर चढ़के खून पी लेता—आप हाकिम हैं, आप से क्या कहें। पर यह बात अच्छी नहीं है। आप कायदा

क़ानून सब जानते हैं—आपको ऐसा न चाहिए। यह कह कर कृषक ने स्त्री से कहा—"चलो गरीबों की भगवान सुनेगा।" यह कहकर कृषक स्त्री सहित खेत के भीतर घुस गया।

डिप्टी साहब खून पीकर रह गये। बस चलता तो उसे गोली मार देते, पर हृदय में इतना साहस कहां था। सबसे बड़ी झेंप उन्हें इस बात की थी कि उनके अर्दली के सामने एक साधारण कृषक ने उन्हें ऐसी बातें कहीं जो कि उनके नौकरों को भी कहने का कोई साहस नहीं कर सकता।

डिप्टी साहब ने कहा—हसन अली, तुम इसके पीछे जाओ और इसका नाम धाम सब पूछकर आओ—हम डेरे पर चलते हैं।

हसन अली ने कहा—बहुत अच्छा।

डिप्टी साहब डेरे की ओर लौट पड़े।

(३)

डिप्टी साहब डेरे पर लौट आये। उस दिन उन्होंने मारे क्रोध तथा क्षोभ के भोजन न किया। उन्हें यही धुन थी कि जिस तरह बने उस किसान को जेल भेजें। इस समय उन्हें यह ध्यान नहीं था कि पहला अपराध उन्हीं का था और वह ऐसा अपराध था कि जिस पर उन्हें क़ानूनन दण्ड मिल सकता था। पर डिप्टी साहब को दण्ड देने वाला था कौन? किसान को तो वे स्वयम् दण्ड दे सकते थे। इस समय डिप्टी साहब की उसी भेड़िये की सी दशा थी जिसने बकरी के बच्चे को खाने के लिये उसे हर प्रकार से दोषी प्रमाणित करने पर कमर बांधी थी।

निश्चित समय पर हसन अली उस किसान का नाम धाम पूछकर आ गया। हसन अली से सब बातें जानकर उन्होंने उसी समय थानेदार को बुलवाया और उससे कहा—देखो,

चौबीस घण्टे के अन्दर उस किसान का किसी जुर्म में चालान करके उसे हमारी अदालत में पेश करो।

थानेदार ने कहा—हुजूर, उसके बाप को मैं अच्छी तरह जानता हूँ, वह अपने गांव का मुखिया है—बड़ा शरीफ़ आदमी है। उसका लड़का अभी जवान आदमी है—वह भी भला आदमी है। न जाने उसने हुजूर को कैसे नाराज कर दिया।

डिप्टी साहब ने कहा—हम यह कुछ नहीं सुनना चाहते—जो हम कहते हैं वह कीजिये।

थानेदार ने कहा—जो हुक्म !

यह कहकर थानेदार बाहर आया और उसने अर्दली से पूछा—क्यों भाई हसन अली क्या मामला है ? सरकार उस ग़रीब पर इतने क्यों नाराज़ हैं ?

हसन अली ने सब कच्चा चिट्ठा सुनाया। थानेदार ने कहा—इसमें ज्यादती तो डिप्टी साहब ही की थी। उस बेचारे का क्या कसूर था उसका एकलौता लड़का है, उसके छर्रा लगा, जवान आदमी ठहरा, गुस्सा आ गया। यह तो कहो बड़ी खैर हुई नहीं वह बड़ा हथछुट आदमी है—बिना मारे छोड़ता नहीं, चाहे डिप्टी साहब गोली मार देते, चाहे फांसी दिलवा देते।

हसन अली ने कहा—वह बेचारा तो कुछ नहीं बोला उसने तो इतना ही कहा कि बड़े शिकारी बने हो न आदमी देखो न कुछ। बस इतने पर सरकार उसे गाली देने लगे। तब वह भी बिगड़ उठा और ऐसी सुनाई कि क्या कहूँ, तभी तो इतने बिगड़े हुए हैं। और दरोगा साहब ! ज्यादा बात बढ़ती तो वह जरूर हाथ चला बैठता। सरकार तो दूर खड़े थे, मैं उसके पास गया था। बड़ा शहजोर आदमी है और उस वक्त उसकी आंखों में खून उतरा हुआ था, गुस्से से अन्धा हो रहा था। खुदा की क़सम, उसकी सूरत देख कर खौफ़ मालूम होता था।

दारोगा साहब बोले,—भई हसन अली और किसी के लिए डिप्टी साहब कहते तो मुझे ज़रा अफसोस न होता, अभी बांध के भिजवा देता पर यार क्या कहूँ, उसका बाप बड़ा शरीफ़ है और बेचारा हमारी बड़ी ख़ातिर करता है। क्या कहूँ, बड़ी मुसीबत में जान फँसी, साँप छछून्दर की सी हालत है।

हसन अली ने कहा—कुछ भी हो, सरकार का कहना तो करना ही पड़ेगा।

दारोगा—हाँ, पर उसके बाप को मुँह दिखाने क़ाबिल न रहूँगा। इसके अलावा जो सुनेगा वही तअज्जुब करेगा, मैं भी बदनाम हो जाऊँगा। डायन भी एक घर छोड़ देती है।

हसन अली—आप अलग रहियेगा, अपने नायब को लगा दीजिए, वह सब ठीक कर लेगा।

दारोगा साहब यह कह कर कि—"कुछ तो करना ही पड़ेगा" चल दिये।

(४)

तीसरे दिन दोपहर को दो कान्सटेबल उसी युवक कृषक को बाँधे हुए डिप्टी साहब के पड़ाव पर पहुँचे। डिप्टी साहब का पड़ाव आज एक अन्य स्थान पर आ गया है जो पहले स्थान से छः कोस की दूरी पर है। आज सवेरे ही डिप्टी साहब इस नवीन स्थान पर आये हैं। पड़ाव एक आमों के बहुत बड़े बाग़ में पड़ा है। बेगार में पकड़ बुलाये गये देहाती, डेरे-ख़ेमे खड़े कर रहे हैं। गाड़ियों पर सामान लदा चला आ रहा है। दौरे में प्रायः डिप्टी साहब अपने बाल-बच्चे अपने साथ रखते हैं। इस बार भी बाल बच्चे साथ साथ हैं। उनके लिए एक बड़ा पर्देदार डेरा अलग खड़ा किया जा रहा है। खाना अलग बन रहा है। उधर पेशकार साहब की पूरियाँ तली जा रही हैं। घर पर जौ बजड़ा खाने

वाले सिपाही पियादे भी दौरे पर दोनों समय तर पूरियों पर हाथ साफ करते हैं। पेशकार साहब भी साल भर की दौरे ही पर खा लेते हैं। घड़ों दूध चला आ रहा है। एक लोटा दूध की आवश्यकता होती है तो एक घड़ा मँगाया जाता है। किसी चपरासी को किसी चीज़ की आवश्यकता हुई उसने तुरन्त उस गांव के जमींदार से कहलवा भेजा अमुक चीज भेजो। जमींदार ने वह चीज तुरन्त भिजवा दी, वह क्या जाने कि किसने मँगवाई है। वहाँ तो जो कुछ आता है सब डिप्टी साहब के लिए। डिप्टी साहब को भी अपने पद की गुरुता तथा महत्ता का पता दौरे ही पर लगता है। भला से भला आदमी क्यों न हो जहाँ डिप्टी कलक्टर की हैसियत से दौरे पर गया बस फिर क्या है, वह यही समझता है कि इतने संसार का ईश्वर मैं ही हूँ, चाहे जिसे मारूं चाहे जिसे जिलाऊँ। जितने दिन डिप्टी साहब दौरे पर रहेंगे उतने दिन का उनका भोजन खर्च बचेगा, बाल-बच्चे भी साथ ही हैं, और इसीलिए साथ रक्खे जाते हैं, कि दौरे पर भक्त लोग भोग-सामग्री भेजेंगे ही, अतएव घर भर की खूराक का खर्च बचेगा। इधर खूराक खर्च बचा, उधर सरकार से भत्ता मिला, बस फिर क्या चुपड़ी और दो दो! चलिए अच्छा खासा लाभ हो गया, वर्षफल की विधि मिल गई। सिद्धी की दशा अन्य साधारण लोगों के वर्षफल में कभी कभी आती है पर डिप्टी साहब के वर्षफल में प्रत्येक वर्ष सिद्धी आ धमकती है, क्यों न हो हाकिमों से वह भी डरती है।

उधर जिस गाँव में डिप्टी साहब पहुंचे हैं उस गाँव के निवासियों की दशा क्या कही जाय, वे यही समझते हैं कि यमदूत आ गये। वे सोचते हैं कि जो कुछ बाल-बच्चों के खाने के लिए रक्खा है, डिप्टी साहब की नजर कर देंगे, हम समझ लेंगे अकाल पड़ गया।

उस दिन जितने मुकद्दमे थे उन सब की पेशी का समय वही रक्खा गया था, जो प्रायः रक्खा जाता है अर्थात् ग्यारह बजे का। आठ-आठ दस-दस कोस से वे लोग, जिनकी आज पेशी होगी, आकर दस ही बजे से बैठ गये हैं। इधर अमले वाले पूरी, कचौड़ी, दूध, दही उड़ा रहे हैं उधर वे बेचारे सत्तू, चने खाकर पानी पी रहे हैं। बारह बज चुके हैं पर अभी डिप्टी साहब शिकार खेलकर नहीं लौटे। साढे बारह बजे डिप्टी साहब शिकार खेलकर लौटे। लोगों की जान में जान आई।

एक ने चपरासी से पूछा—अब तो डिप्टी साहब आ गये हैं, अब तो इजलास लगेगा।

चपरासी ने देहाती को घूर कर देखा और बोला—"तुम्हारे बाप के नौकर हैं, ना, जो अभी इजलास पर बैठ जायँगे, कुछ खाँय पियेंगे थोड़े ही, तुम सबेरे ही दो सेर धमक कर चले होगे। उन्होंने अभी तक कुछ खाया भी नहीं।" देहाती बेचारा चुप रह गया। उस बेचारे को क्या मालूम कि डिप्टी साहब सबेरे चाय और हलवा उड़ाकर शिकार खेलने निकले थे। साढ़े बारह बजे डिप्टी साहब लौटे, खाते पीते दो बज गये। इधर सब लोग पड़े आँखें सेंक रहे हैं उधर डिप्टी साहब खाना खाकर लम्बे लेट गये। जिन बेचारों को आठ कोस लौट-कर घर जाना है वे बार बार अस्ताचलगामी सूर्य की ओर देख रहे हैं। ज्यों-ज्यों सूर्यदेव पश्चिम की ओर खिसकते हैं त्यों-त्यों उनका हृदय नीचे बैठता जाता है। यह सोच रहे हैं जल्दी छुट्टी मिल जाय तो चिराग जलते जलते घर पहुंच जायँगे नहीं तो बे मौत मरे। जाड़ों के दिन ठहरे पास इतना कपड़ा नहीं कि आम के बाग में रात काट सकें। इसके अतिरिक्त यदि शाम को घर पहुंच जायँगे तो सबेरे ही से अपना काम कर सकेंगे यदि कल सबेरे यहाँ से चले तो दिन भर खराब जायगा। इसी सोच विचार में बैठे हैं।

तीन बज चुकने के पश्चात् खबर मिली कि डिप्टी साहब आते हैं। "डिप्टी साहब आते हैं" यह शब्द प्रतीक्षा करने वालों के कानों को कितने मधुर मालूम हुए। तुरन्त खलबली मच गई। जो लोग लेट रहे थे, वे उठकर बैठ गये। क़ानूनगो साहब ने भी बस्ता दुरुस्त करना आरम्भ किया।

उधर चपरासी ने सवालख्वानी के लिए आवाज़ लगाई। जिन्हें सवाल देना था वे सब दौड़े, एक वृक्ष के नीचे एक मेज़ और तीन चार कुर्सियाँ पड़ी थीं, यही डिप्टी साहब का इजलास था। एक कुर्सी पर पेशकार साहब बैठे, उन्होंने सब के सवाल ले लिये।

अब लोग इस इन्तजार में खड़े हैं कि डिप्टी साहब आवें सब की दृष्टि साहब के डेरे की ओर है। साढ़े तीन बजे डिप्टी साहब डेरे के द्वार पर आकर खड़े हुए और चपरासी से कुछ कहकर भीतर चले गये; लोग फिर घबराये कि "हे भगवान् आते आते फिर क्यों भाग्य की तरह पलट गये"। चपरासी से मालूम हुआ कि डिप्टी साहब पाखाने गये हैं। चलिये आध घंटा और टापना पड़ा। सवा चार बजे डिप्टी साहब ने फिर डेरे के द्वार पर आकर भक्तजनों को दर्शन दिये। भक्त-जन सतृष्ण नेत्रों से उनकी ओर टकटकी लगाये देख रहे हैं। थोड़ी देर डिप्टी साहब खड़े रहे, डेरे की चिकों पर दृष्टि डाली, देखकर मुँह बनाया। चपरासी से बोले—"अरे क्यों यह चिकें कैसी बँधवाई हैं, सब तिरछी बँधी हैं।"

यह कह कर स्वयम् जुट गये और चिकें खोलकर सीधी बाँधनी आरम्भ की।

इधर भक्तजनों ने जब भगवान् की यह निष्ठुरता देखी तो कुछ तो बेचारे ठंडी साँस लेकर रह गये। कुछ भक्तों ने कहा—"ले बैठे हैं आज रात भर तुम्हारे बाप को चुनौती है चाहे जै

बजे आओ।" कुछ ने गालियाँ देनी आरम्भ की—"ससुर जी को इसी बखत चिकें बाँधनी थीं, यह नहीं देखते कि दामाद लोग खड़े हैं।" एक बोला—"गङ्गा कसम ऐस रिस लगत है कि अब हीं मार लाठिन चोकरा कर देन फिर चाहे फाँसी होइ जाय, सरऊ डिप्टी बन के बैठे हैं। ऐसे जननेन तो रान खातिर इन्तजाम करके अबतेन, सरऊ बाप का तो ग्यारे बजे से बुलाय के बैठाय लिहिनि हैं और अब अपना चिकन माँ लाग हैं, चोर कहूँका।"

एक मियाँ साहब जो शहर से आये थे बोले, भइया वह जो कहावत है कि बेदर्द कसाई क्या जाने पीर पराई। आठ रुपये ताँगे का किराया देकर यहाँ आये हैं। दिन भर खाना-पीना हराम रहा, सोचे थे शाम होने पर लौट आयेंगे। यहाँ अभी चिकें ही दुरुस्त की जा रही हैं। देहात में आकर ये लोग फ़िरौन बन जाते हैं। पूछिये दुनिया भर में कायदा है कि ग्यारह बजे से इजलास लगता है। यहाँ चिड़ियों के बसेरे का वक्त आ गया और अभी पता नहीं। अभी चले जायँ तो मुकद्दमा खारिज कर दें, एक तरफ़ा कर दें। खुदा समझे इनसे। इन्हें क्या तर माल उड़ाते हैं मजा करते हैं, मुसीबत हम लोगों की है।

इसी प्रकार भक्तजन भगवान् के प्रति अपने उद्गार प्रकट कर रहे थे।

पाँच बजे के निकट डिप्टी साहब आकर इजलास पर बैठे।

डिप्टी साहब ने बैठते ही आध घण्टे के अन्दर छः सात मुकद्दमों को उड़ा दिया। किसी में तारीख बढ़ा दी, कोई खारिज कर दिया, किसी में वादी प्रतिवादी को दबा कर सुलह करवा दी। मुकद्दमे क्या होते थे, अच्छा खासा मज़ाक था, डिप्टी साहब की ज़बान से जो निकल गया वही फ़ैसला। वहाँ न कोई वकील था न कोई मुख्तार, डिप्टी साहब ने खूब मनमानी घरजानी की।

उस समय हसनअली ने झुककर कुछ कान में कहा। हसन-अली की बात सुनते ही डिप्टी साहब की तेवरी पर बल पड़ गये। चार छः मुक़दमे रह गये थे। अतएव आप ने कहा—"बाकी मुक़दमे एक घण्टे बाद पेश होंगे, सब लोग यहां से चले जायँ। उधर चपरासी को भी हुक्म हुआ कि लोगों को यहाँ से हटाओ।"

सब लोग हटा दिए गये, डिप्टी साहब ने पेशकार साहब से पूछा कहिये, कोई चालान है क्या?

पेशकार साहब ने कहा, हाँ हुजूर एक चोरी का चालान आया है।

डिप्टी साहब—पहिले उसे लाइये।

पेशकार ने उसी समय मिसिल पेश की। अभियुक्त सामने लाया गया, अभियुक्त वही कृषक था जिसके बच्चे की टाँग डिप्टी साहब ने घायल कर दी थी।

डिप्टी साहब ने उसे सिर से पैर तक देखा वह भी खूब तन कर खड़ा हुआ। डिप्टी साहब ने पूछा—तुम्हारा नाम रामसिंह है?

युवक ने कहा—हाँ।

रामसिंह ने कुछ कड़ककर "हाँ" कहा था। डिप्टी साहब ने रामसिंह से आंख मिलाईं, रामसिंह ने इतनी तीव्र दृष्टि से डिप्टी साहब को घूरा कि उन्होंने तुरन्त अपनी आँखें नीची कर लीं। रामसिंह के होठों पर हल्की मुसकराहट दौड़ गई।

डिप्टी साहब ने पूछा—तुमने चोरी की।

रामसिंह बोला—हुजूर सब जानते हैं, की तौ की, नहीं की तौ की!

पेशकार ने पूछा—इसका क्या मतलब?

रामसिंह—सरकार सब समझते हैं।

उसी समय रामसिंह का वृद्ध पिता आगे बढ़कर डिप्टी साहब से बोला—सरकार मेरा बच्चा बिल्कुल बेक़सूर है, इसने आज तक कोई ताँबे का छल्ला तक नहीं चुराया।

रामसिंह पिता से बोला—मरे क्यों जाते हो? कुछ फाँसी लटकी है? जो कुछ भाग्य में बदा है होगा, चार छः महीने काट आवेंगे।

इधर डिप्टी साहब के हृदय में धड़कन उत्पन्न हुई। उन्हें ऊपर सिर उठाना कठिन हो गया। उसी समय गवाह पेश किये गए। गवाह केवल दो थे। डिप्टी साहब ने उनकी गवाही ली। गवाहों के गवाही देने के ढंग से स्पष्ट था कि वे सिखाये पढ़ाये हैं। डिप्टी साहब ने निगाह नीची किये हुये रामसिंह से पूछा—अच्छा तुम सफ़ाई पेश करो। तुम्हें दो रोज़ की मोहलत दी जाती है।

रामसिंह ने कहा—मुझे सफ़ाई वफ़ाई कुछ नहीं देना है, जो हुज़ूर का जी चाहे सो करें।

पेशकार ने कहा—क्यों सफ़ाई क्यों नहीं देते?

रामसिंह—काहे की सफ़ाई दें? कुछ बात भी हो?

डिप्टी साहब रामसिंह की बात-चीत के ढंग तथा उसकी निर्भीकता से घबराये कि कहीं ऐसा न हो कि यह सब साफ़-साफ़ कह चले तो किरकिरी हो, क्योंकि लाख हटाये जाने पर भी कुछ लोग खड़े इस मुकद्दमे को सुन रहे थे। अतएव उन्होंने तुरन्त कहा—अच्छा परसों फ़ैसला सुनाया जायगा।

कान्सटेबल रामसिंह को ले चले। रामसिंह अकड़ता हुआ चला गया।

(५)

डिप्टी साहब ने तजवीज लिखनी आरम्भ की। डिप्टी साहब सोचे बैठे थे कि कम से कम छः महीने की सज़ा देंगे।

पर अब जब तजवीज़ लिखने बैठे तो हाथ काँपने लगा। कई बार लिखी और फाड़ डाली। उनका हृदय तो रामसिंह को दण्ड देने पर तुला हुआ था, पर उनकी आत्मा कहती थी—"वह निर्दोष है, तुम्हें कोई अधिकार नहीं कि उसे दण्ड दो।" डिप्टी साहब अपनी आत्मा की इस पुकार से ऐसे विचलित हो जाते थे कि उनका साहस नहीं पड़ता था कि वह तजवीज़ को समाप्त करके उस पर हस्ताक्षर करें। उन्हें अपनी इस कमजोरी पर बड़ा क्रोध आता था, पर करते क्या विवश थे। इसी प्रकार दो दिन बीत गये। तीसरे दिन तजवीज़ सुनानी थी। निश्चित समय आ गया, पर डिप्टी साहब डेरे के अन्दर विराजमान हैं। शाम के चार बज गये पर डिप्टी साहब इजलास पर नहीं आये। पेशकार साहब ने अर्दली से पूछा—कहो डिप्टी साहब क्या कर रहे हैं?

अर्दली ने कहा—कुछ लिख रहे हैं।

इसी प्रकार आध घण्टा और बीता। उधर रामसिंह अपने पिता से बिदा हो रहा था क्योंकि उसे पूरा विश्वास था कि डिप्टी साहब बिना सजा दिये नहीं छोड़ेंगे। अन्य लोगों का भी विश्वास यही था, क्योंकि एक तो डिप्टी साहब लोगों को छोड़ते बहुत कम थे, दूसरे रामसिंह की ओर से सफ़ाई कुछ भी नहीं दी गई थी। आध घन्टे पश्चात् डिप्टी साहब इजलास पर आये। उनका मुख मलिन हो रहा था। ध्यान पूर्वक देखने से प्रतीत होता था कि डिप्टी साहब इस समय किसी बड़े सङ्कट में हैं। इजलास पर आते ही उन्होंने पेशकार से कहा—रामसिंह को बुलवाओ।

रामसिंह बुलाया गया। डिप्टी साहब ने एक बार उसके मुख की ओर देखा तत्पश्चात् सिर झुकाकर बोले—"रामसिंह, हमने तुम्हें छोड़ दिया।"

रामसिंह अवाक् हो गया। उसके मुँह से बात नहीं निकली। कान्सटेबिलों ने तुरन्त उसकी कमर से रस्सी और हाथों से हथकड़ी निकाल ली।

× × ×

इस घटना के चौथे दिन मेहरोत्रा जी को डिप्टी साहब का एक पत्र मिला। पत्र इस प्रकार था—

प्रिय मेहरोत्रा जी!

आज के लगभग छः महीने पूर्व मैंने आपसे कहा था कि मैं अपनी इच्छा के विरुद्ध कभी कोई काम नहीं करूंगा, परन्तु आज मैं आपको सूचना देता हूँ कि दो दिन हुए एक कार्य मुझे पूर्णतया अपनी इच्छा के विरुद्ध करना पड़ा। मैं इतना विवश हो गया कि अपने जीवन में इसके पूर्व मैं कभी इतना विवश नहीं हुआ था। आपने कहा था कि यदि कभी ऐसा अवसर आवे तो मेरी बात का स्मरण कीजिएगा। अतएव मैं आपकी इस बात को स्मरण करके आपको सूचना देता हूँ। आशा है आप प्रसन्न होंगे।

भवदीय—

आनन्दीप्रसाद

बेदख़ली

(१)

सुन्दरपुर ग्राम के ज़मींदार का कारिन्दा डेरे में बैठा हुआ था। इसके समीप गाँव का पटवारी तथा चार पाँच कृषक बैठे थे। सामने कुछ दूरी पर दो पासी मोटे लट्ठ लिये हुए बैठे थे।

हठात् कारिन्दा ने एक पासी से कहा—मुनुवा, दूध आ गया?

मुनुआ बोला—कह आया हूँ मालिक! अभी आ जायगा।

कारिन्दा—कितना दूध आयेगा?

मुनुआ—आपने पाँच सेर कहा था। वही कह आया हूँ।

कारिन्दा—किसके यहाँ से आवेगा?

मुनुआ—बसन्त अहीर के यहाँ से।

कारिन्दा चुप हो गया और अपने सामने रक्खे हुए कागज पत्र उलटने लगा।

कुछ देर तक कागज-पत्र उलटने के पश्चात् उसने एक कृषक से कहा—तुम्हारे ऊपर खरीफ के दस रुपये बक़ाया हैं।

कृषक बोला—हाँ मालिक, हैं।

कारिन्दा—तो सब मिलाकर पैंतालिस रुपये हुए। पैंतीस इस फसल के और दस बक़ाया ?

कृषक ने टेंट से पैंतालीस रुपये निकाल कर कारिन्दा के सम्मुख रख दिये। कारिन्दा ने पूछा—कितने हैं ?

कृषक—पैंतालीस।

कारिन्दा—दस रुपये बक़ाया रह गये थे, उनका छः महीने का ब्याज भी तो लाओ।

कृषक—अरे मालिक! अब ब्याज-याज न माँगो। अब की कुछ हुआ नहीं। इतने भी न जाने कैसे दिए हैं।

कारिन्दा—ब्याज तो जरूर देना पड़ेगा।

कृषक—नहीं सरकार, इस दफ़े ब्याज की माफ़ी दो। जब होता था तब ब्याज दे देते थे; अब की कुछ हुआ नहीं, इससे कहते हैं। (एक दूसरे कृषक से) जानकी काका पन्द्रह बीघा में दस बीघा गेहूँ बोये थे और पाँच बीघे बेझरा। सो एक बीस मन तो गेहूँ हुए और आठ मन बेझरा। बताओ इसमें क्या अपने खाने को रक्खें, क्या महाजन का बीज दें और क्या लगान दें। और अपने बाल—बच्चों के लिए कपड़े बनवाने हैं सो अलग। वह तो कहो कुछ अरहर हो गई नहीं तो बस राम से ही काम पड़ता।

जानकी काका गम्भीरता-पूर्वक सिर हिलाकर बोले—फ़सल तो अब की बड़ी गड़बड़ हुई, इसमें तो कोई सुभा नहीं है। डेढ़मनी बीघा से किसी के अधिक नहीं हुआ। जिनके दोमनी बीघा हो गया उसे बड़ा भागवान समझो। इन्हीं खेतों में पँचमनी छःमनी बीघा हुआ करता था। समय की बात है भइया!

कारिन्दा बोला—यह हम क्या जानें। जब अधिक होती है तो हमें तो दे नहीं देते।

कृषक—अरे मालिक, आपको देने लायक हम कहाँ? हम तो खुद ही आपकी रोटी खाते हैं।

कारिन्दा—खैर, इन बातों से काम न चलेगा। ब्याज निकालो।

कृषक—नहीं मालिक, इस दफ़े ब्याज की माफ़ी दो।

कारिन्दा—यह कदापि नहीं होगा। ख़रीफ़ में हमने अपने पास से ये दस रुपये जमा किये थे, सो हम तो ब्याज छोड़ेंगे नहीं। किसी दूसरे को उधार देते तो ब्याज मिलता कि नहीं?

कृषक—हाँ मिलता क्यों नहीं?

कारिन्दा—तो बस फिर?

जानकी काका बोल उठे—देओ ब्याज देओ। इन्होंने अपने मालिकों को तुम्हारे दस रुपये पास से दिये थे, तो यह बेचारे घाटा क्यों सहें?

कृषक—हमारे मालिक हैं, हम इनके जियाये जीते हैं। इसमें घाटे की कौन बात है।

कारिन्दा—देखो जी हमें बहुत काम है, यह टिल्लेनवीसी अच्छी नहीं। झटपट ब्याज निकालो।

कारिन्दे की तीव्र दृष्टि देख कर कृषक म्लान मुख होकर बोला—तो कितना ब्याज हुआ?

कारिन्दा—एकन्नी रुपये के हिसाब से छः महीने के पौने चार रुपये हुए।

कृषक—अरे सरकार इस दफ़े अधन्नी का ब्याज लगा लो। भगवान जानते हैं, अब की बड़ी तंगी है।

कारिन्दा—तुम बड़े झमेलिये मालूम होते हो जी। बात बात में मीन-मेष निकालते हो। निकालो झटपट पौने चार रुपये

और एक रुपया हमारे नजराने का पोने पांच निकालो।

कृषक ने देखा कि अधिक कुछ कहने से सम्भव है कारिन्दा साहब नाराज हो जायँ अतएव उसने चुप चाप टेंट से पांच रुपये निकाल कर कारिन्दे के सम्मुख फेंक दिए। कारिन्दा साहब ने चार आने वापिस कर के कहा—मैं खरा आदमी हूँ, मुझे खरा व्यवहार अच्छा लगता है।

कृषक ने कहा—ये पांच रुपये बचा रक्खे थे। सोचा था कुछ कपड़ा ले आवेंगे, बाल-बच्चों को थोड़ा कपड़ा बन जायगा। हम इन्हीं फटे-पुरानों में काट देंगे। सो भगवान् की मर्जी नहीं, है तो न सही।

यह कहते कहते कृषक के नेत्रों में आँसू छलछला आये।

कारिन्दा बोला—पठानों से लेना।

कृषक—अरे मालिक! चाहे नंगा बैठा रहे पर पठानों से कभी न ले। एक तो एक रुपये की चीज के चार लेते हैं और बखत पर न देओ तो बेआबरू कर डालते हैं; भगवान बचावे।

इसी समय बसन्त अहीर गगरी में दूध लाया। कारिन्दे ने पूछा—कितना दूध लाया?

बसन्त—पाँच सेर का हुक्म हुआ था।

कारिन्दा—काहे का दूध है?

बसन्त—सब गबड़ा है मालिक। तीन सेर तो भैंस का है और सेरभर के अन्दाज गाय का होगा और सेर ही भर बकरी का।

कारिन्दा—हैं! इसमें बकरी का दूध मिला दिया?

बसन्त—क्या करें मालिक गाय-भैंस का कहाँ से लावें? तीन सेर भैंस देती है, सो सब दे दिया। सेर भर गाय देती है, सो दे दिया। आपका गुड़ैत बोला कि पाँच सेर देना पड़ेगा, सो इसी मारे सेर भर बकरी का गबड़ दिया।

कारिन्दा—मुनुवा इस साले को एक सौ जूते लगाओ। इसने हमें समझा क्या है? हम बकरी का दूध पीते हैं? हम शहर में तो बकरी का दूध पीते नहीं, यहाँ देहात में आकर बकरी का दूध पियेंगे! साले ने अपने लिए गाय-भैंस का रख लिया होगा, हमें बकरी का दे दिया।

बसन्त—अरे मालिक ऐसा न कहो। अपने खातिर एक बूंद रक्खा हो तो गाय के खून के बराबर है। लड़के-बच्चे रोते रह गये, उन्हें तक तो एक बूंद दिया नहीं।

जानकी काका बोल उठे—इसके यहाँ इतना ही होता है मालिक! झूठ नहीं बोल रहा है। हमारी जानी हुई बात है।

कारिन्दा—खैर अब की दफ़ा तो छोड़े देते हैं। आइन्दा कभी ऐसी हरकत मत करना। हमें बकरी के दूध से नफ़रत है।

इतना कहकर कारिन्दा साहब ने अपने रसोइये से कहा—महाराज, इसकी रबड़ी बना डालो। पीने के काम का तो यह रहा नहीं। बकरी का दूध मिला हुआ है। मुनुवा!

मुनुवा बोला—सरकार!

कारिन्दा—जाओ किसी के यहां से सेर भर गाय का ताजा दूध लाओ। इस समय तो पीने के लिये चाहिये। सवेरे का समय है।

मुनुवा ने अपने पास बैठे हुए दूसरे पासी से कहा—लल्लू, तुम चले जाओ।

लल्लू—किसके यहां जाऊँ?

मुनुवा—अहीर टोले में चले जाओ। जिसके यहां हो, ले आओ।

लल्लू उठकर चलने लगा। उसी समय कारिन्दा साहब ने कहा—अरे हाँ, खूब याद आया। जरा गंगाचरण महाराज को बुला लाना। सीधी तरह आवें तो आवें, नहीं घसीट लाना।

(उपस्थित लोगों की ओर देख कर) गंगाचरण महाराज के ऊपर साल भर की बाकी लगी हुई है। उसका ब्याज अलग है। सब मिलाकर कोई डेढ़ सौ रुपये हैं। महाराज देते नहीं हैं। मैं ब्राह्मण समझ कर अभी तक टालता गया। अब इस दफ़े महाराज न देंगे तो बेदखली हो जायगी।

एक कृषक बोल उठा—उनके पास कुछ है नहीं। उन्हें बेद-खल कर दो। उनकी जमीन बहुत सस्ती है। बत्तीस बीघे जमीन छियानवे रुपये में जोते हुए हैं। उन्हें बेदखल कर देओ तो वही जमीन चार रुपये बीघा में बड़े मजे में उठ जाय। बत्तीस रुपया साल का मुनाफ़ा हो।

कारिन्दा—कौन ? हम उसे पाँच रुपये बीघे से कम में देंगे नहीं ? मामूली जमीन थोड़े ही है।

पटवारी साहब बोल उठे—पाँच रुपये बीघे पर तो लोग इस समय लेने को तैयार हैं। आप जब कहिए, उठा दूँ।

कारिन्दा—हाँ हाँ, उठानी ही पड़ेगी। गंगाचरण महाराज रुपये दे नहीं सकेंगे।

जानकी काका बोले—उनके पास कुछ है नहीं। पारसाल उन्होंने बिटिया का ब्याह किया तभी से उनका फेर बिगड़ गया।

कारिन्दा—वह खुद तो जोतते बोते नहीं ?

जानकी—नहीं शिकमी उठाये हुए हैं। जोतें बोवें कैसे। मजूरों से जुतावें बुवावें तो उन्हें मजूरी देने को नहीं। आप ब्राह्मण आदमी ठहरे—अपने हाथ से जोत-बो नहीं सकते। चार पाँच बीघे जमीन रख छोड़ी है सो वह अधबँटाई पर दे देते हैं। बाकी लगान पर दिये हुए हैं।

कारिन्दा—किस हिसाब से दिये हुए हैं ?

जानकी—पाँच रुपये बीघे पर।

कारिन्दा—यह कहो ! तब फिर हम भी पाँच रुपये बीघे पर उसे उठा सकते हैं।

पटवारी—बड़ी आसानी से।

कारिन्दा—अच्छी बात है। तब तो महाराज को अवश्य बेदखल करना पड़ेगा।

(२)

थोड़ी देर में ललुआ पासी महाराज गंगाचरण को साथ लिए हुए आया। महाराज गंगाचरण प्रौढ़ अवस्था के आदमी थे। बहुत सरल स्वभाव तथा सज्जन थे। उनके पास ३२ बीघा मौरूसी भूमि थी। पहले तो वह उसका अधिकांश मजदूरों से जुतवा-बुवा लेते थे। परन्तु एक वर्ष हुआ उन्हें अपनी कन्या का विवाह करना पड़ा; उनकी पूंजी विवाह में व्यय हो गई। मजदूरों को देने के लिए तथा बीज इत्यादि खरीदने के लिये उनके पास रुपया नहीं रहा। लोगों ने ऋण लेने की सलाह दी। पर गंगाचरण महाराज ऋण लेना एक पाप समझते थे। इस कारण उन्होंने अपनी २८ बीघा भूमि तो लगान पर उठा दी। उससे उन्हें छप्पन रुपये वार्षिक की आय हो जाती थी। चार बीघे भूमि एक कृषक को अधबँटाई में दिए हुए थे। उससे उन्हें अपनी एक भैंस तथा एक गाय के लिए चारा मिल जाता था और थोड़ा अनाज भी मिल जाता था। कुछ, गाँव में कथा-वथा कह कर तथा दानपुण्य से मिल जाता था। इस प्रकार वह बड़े कष्ट से किसी तरह अपना जीवन निर्वाह कर रहे थे। उनके परिवार में इस समय एक आठ वर्ष की कन्या; एक दस वर्ष का पुत्र; उनकी पत्नी तथा वृद्धा माता थी।

इस समय गंगाचरण महाराज गाढ़े की एक फटी मिर्जई पहने हुए थे। वह चुप-चाप आकर कारिन्दे साहब के सम्मुख बैठ गये।

कारिन्दा साहब ने कहा—गंगाचरण महाराज ! आप के ऊपर साल भर का लगान चढ़ गया है। कहिए, अब आप क्या कहते हैं ?

गंगाचरण महाराज बोले—आप मालिक ; हम आपसे कह ही क्या सकते हैं ?

कारिन्दा—कहना सुनना यही है कि रुपये लाओ !

गंगाचरण—रुपये तो इस समय सरकार, हमारे पास हैं नहीं।

कारिन्दा—आप तो जमीन उठाये हुए हैं ?

गंगाचरण—हाँ २८ बीघा जमीन पार साल उठा दी थी।

कारिन्दा—उसका लगान तो मिला होगा ? वह कहाँ गया ?

गंगाचरण—जिसे उठाई थी उससे साल भर का लगान पेशगी ले लिया था। वह, और घर में जो कुछ था वह, सब मिलाकर लड़की के ब्याह में लगा दिया।

कारिन्दा—तो यह कहिये, आप सब पेशगी ही चाटे बैठे हैं।

गंगाचरण—कुछ पेट में तो धर नहीं लिया, लड़की के काम में लगा दिया।

कारिन्दा—बड़ा अच्छा किया परन्तु अब क्या होगा ? मैं अभी तक तो किसी न किसी तरह टालता आया, पर अब मेरे बस की बात नहीं। अब आप सब रुपया चुकता कीजिए, नहीं तो बेदख़ल हो जायँगे।

गंगाचरण—अरे सरकार बेदख़ली न करना, नहीं तो बाल-बच्चे भूखों मर जायँगे। उसी जमीन से हमारी जीविका है।

कारिन्दा—आख़िर बेदख़ली न करायेंगे तो करेंगे क्या ? अपना रुपया किसी तरह वसूल ही करेंगे।

गंगाचरण—आपका रुपया गले बराबर है। सो उसके लिए हम उपाय कर रहे हैं।

कारिन्दा—क्या उपाय कर रहे हो ?

गंगाचरण—उपाय यही कि जोड़-बटोर कर देंगे। खाली आपका साल भर का लगान है, अब आपका लगान नहीं रुकेगा। साल भर के छियानवे रुपये हम थोड़ा-थोड़ा कर के दे देंगे।

कारिन्दा—और उनका ब्याज नहीं दोगे ?

गंगाचरण—अब ब्याज-ब्याज न लगाओ। ब्याज देने का बूता हम में नहीं है। समझ लेना कि लड़की के ब्याह में इतना सहारा आपने भी कर दिया।

कारिन्दा—लीजिये और सुनिए।

गंगाचरण—सुनें क्या ? मालिक हो, इतनी सहायता करो।

कारिन्दा—मैं मालिक काहे को हूँ भाई ! मालिक तो कोई दूसरा ही है।

गंगाचरण—हम तो आप को ही जानते हैं। यहाँ अधिकार आपका ही है। क्यों भाई जानकी कहते क्यों नहीं ?

जानकी—ठीक; इसमें झूँठ क्या है ?

कारिन्दा—मुझको जितना अधिकार है, उतना मैं कर सकता हूं। मुझको यह अधिकार था कि साल-छः महीने टाल ले जाऊँ, सो मैंने किया। अब मेरे किये कुछ हो नहीं सकता। आपको रुपये देने पड़ेंगे और ब्याज भी जरूर ही देना पड़ेगा।

गंगाचरण—अरे सरकार ! ब्याज का ठिकाना यहां कहां ?

कारिन्दा—नहीं है तो जाने दो। हमें क्या ? बेदखल हो जाइएगा।

गंगाचरण—ऐसी खफ़गी ?

कारिन्दा—आप तो गजब करते हैं महाराज ! मैं कौन हूँ जो मेरी खफ़गी और खुशी हो ? जिनकी आप रियाया हैं, मैं उसका नौकर हूँ। जो आपका मालिक है वही मेरा भी है।

में उनका नमक खाता हूँ, इसलिये जिसमें उनका फ़ायदा होगा वही करूँगा।

गंगाचरण—तो मालिक को समझा दीजिएगा।

कारिन्दा—मैं समझा तो सब कुछ दूंगा, पर वह मानेंगे तब न।

गंगाचरण—आप कहेंगे तो मानेंगे क्यों नहीं ?

कारिन्दा—क्यों मानेंगे ? क्या वह मेरे नौकर हैं ? मालिक मालिक ही है।

गंगाचरण—खैर आप कहियेगा तो; न मानेंगे तो देखा जायगा। जब तक आप हैं, मेरा कुछ बिगड़ नहीं सकता। अच्छा तो अब ज़रा हुकुम दीजिये—आज ज़रा बाजार जाना है। रुपया हम कौड़ी-कौड़ी दे देंगे, इससे निश्चिन्त रहना। खाली आपकी दया बनी रहे।

कारिन्दा—दया ईश्वर की चाहिए, हम काहे में हैं।

गंगाचरण—हाँ, ईश्वर तो मुख्य है।

गंगाचरण महाराज बिदा हो गए। उनके जाने के पश्चात् कारिन्दा उपस्थित लोगों से बोला—महाराज बेदखल हो जायँगे, बचेंगे नहीं।

एक कृषक--कहते थे, उपाय कर रहे हैं। उपाय क्या करेंगे ? कौन इनके यहां छप्पर फटेगा। खेती भी तो नहीं करते जो यही समझ में आता कि फ़सल बन गई तो चुकता कर देंगे। इन्हें क्या ? इन्हें तो बँधे टके मिलेंगे। सो जितना मिलता है वह खाने भर को ही नहीं होता।

एक व्यक्ति बोल उठा—खेती क्यों नहीं करते ? चार बीघा बँटाई पर जो दिए हुए हैं।

कृषक—हाँ, सो चार बीघा में सोने की खान निकल आवे तो चाहे भले ही रुपये अदा हो जायँ—खाली अनाज से तो हो

चुके। चार बीघे की तो बिसात ही क्या ?

इसके बाद अन्य सब लोग उठकर चले गये, केवल कारिन्दा, पटवारी तथा एक वह कृषक जो गंगाचरण का विरोधी था, रह गए। उस कृषक ने कहा—मालिक, आप जो हमें महाराजवाली जमीन दिला दें तो बड़ी दया हो जाय।

कारिन्दा—लगान क्या दोगे ?

कृषक—चार रुपये बीघा।

कारिन्दा—अच्छे रहे! पाँच रुपये देने वाले तो न जाने कितने हैं; तुम चार लिये फिरते हो।

कृषक—चार रुपये में दिला दो तो कुछ आपका फायदा भी हो जायगा।

कारिन्दा—बोलो, क्या दोगे ?

कृषक—पचास रुपये।

कारिन्दा—कम हैं।

कृषक—कम नहीं हैं, सरकार।

पटवारी बोल उठा—ऐसी जमीन गांव भर में नहीं है, यह भी जानते हो ? जरा उलट-पलट दिया जाय तो यही जमीन छः सात रुपये में उठ सकती है।

कृषक—अच्छा तो दस रुपये और ले लेना।

कारिन्दा—पूरा सैकड़ा देओ तब तो हम कुछ जोर लगावें, नहीं हमारा क्या बिगड़ता है। एक गरीब ब्राह्मण की रोटी क्यों छीनें ?

कृषक—सौ तो हमारे किये नहीं हो सकता।

कारिन्दा—नहीं हो सकता तो जाने दो।

पटवारी ने कहा—पहले आप बेदखल तो कराइये यह तो नाच कूदकर सैकड़ा देंगे। यह न देंगे तो इनके कितने ही भाई मुँह फैलाये बैठे हैं वे सौ छोड़ सवा सौ देंगे।

(३)

दो मास व्यतीत हो गये।

गंगाचरण महाराज अपने उन खेतों में, जिन्हें वह बँटाई पर दिये हुए थे, घूम रहे थे। वह एक व्यक्ति से कह रहे थे—अब की तो खेती का उठान अच्छा है।

वह व्यक्ति बोला—उठान अच्छा होने से क्या होता है, उठान तो सदा ही अच्छा होता है। जाड़े पाले से बचकर घर में आवे तो जानें।

गंगाचरण—पानी तो अच्छा हो रहा है।

वह व्यक्ति—हाँ, अभी तक तो सब अच्छा हो रहा है। ऐसा ही रहे तब तो कुछ आशा हो जायगी।

गंगाचरण—यह खेत बहुत अच्छा लगा है।

वह व्यक्ति—पाँस नहीं दी गई है? इस बार जितनी पाँस थी सब इन्हीं खेतों में डाली है।

गंगाचरण—पारसाल से हम भी फिर खेती करावेंगे।

वह व्यक्ति—बैल-बैल तो सब बेच डाले, खेती कहाँ से कराओगे।

गंगाचरण—बैलों ही की तो चिन्ता है; बैल मिल जायँ तो फिर काम चल निकले। क्या करें भइया, बिटिया के ब्याह में हम उजड़ गये। इसके पहले पिता मरे, उनके मरने में बहुत रुपया लगा। उसके बाद ही बिटिया का ब्याह करना पड़ा।

वह व्यक्ति—जब से आपके यहाँ चोरी हुई तब से आपका काम बिगड़ता ही चला गया।

गंगाचरण—ठीक कहते हो। तब से छूत ऐसी लग गई है।

उसी समय एक व्यक्ति ने पुकारा-गंगाचरण महाराज, हो!

गंगाचरण—क्या है?

"वह चपरासी तुम्हें पूछता है।"

गंगाचरण—क्यों ?

"सम्मन है।"

सम्मन का नाम सुनकर गंगाचरण का कलेजा धड़कने लगा। शीघ्रतापूर्वक चपरासी के पास पहुंचे। चपरासी ने सम्मन दिखाया, सम्मन देखकर गंगाचरण महाराज को ज्ञात हुआ कि जमींदार ने बेदखली की नालिश कर दी है। उन्होंने चुपचाप हस्ताक्षर कर के सम्मन ले लिया।

चपरासी के चले जाने के पश्चात् उसी कृषक ने, जिससे वह बातें कर रहे थे, पूछा—काहे का सम्मन है ?

गंगाचरण—जमींदार ने बेदखली की है।

कृषक—अच्छा !

गंगाचरण—क्या कहें, इतना कहा-सुना फिर भी नालिश कर ही दी।

कृषक—वह कारिन्दा बड़ा हरामजादा है। है तो जाति का ठाकुर, पर पूरा चमार है।

एक दूसरा व्यक्ति, जो खेत में काम कर रहा था, बोल उठा—कारिन्दा क्या करे, गांव वाले भी तो उतराचढ़ी लगाये हुए हैं। हमने सुना है कि गाँव के कई आदमी महाराज के खेत लेने की ताक में हैं। उन्होंने जोर लगाया होगा, तभी बेदखली कराई गई।

गंगाचरण—हाँ भाई, संसार में सभी तरह के मनुष्य हैं।

कृषक—हमारी समझ में आप सीधे मालिक के पास जाओ, वह जरूर कुछ रियायत करेंगे।

गंगाचरण—हाँ, ऐसा ही करना पड़ेगा।

कृषक—कौन तारीख पड़ी है ?

गंगाचरण—चौबीस तारीख पड़ी है। आज कौन-सी तारीख है—पन्द्रह है—नौ रोज और हैं।

कृषक—तो अभी समय है, आप मालिक के पास जाओ।

गंगाचरण—आज ही जाते हैं।

× × ×

गंगाचरण महाराज जमींदार से बोले—मालिक, हम बड़े ग़रीब ब्राह्मण हैं। आपके गाँव में पड़े हरि-भजन करते हैं। आपकी जो बत्तीस बीघा जमीन है वही हमारी जीविका है। यदि आप बेदख़ल कर देंगे तो हम दाने-दाने को मुहताज हो जायँगे।

जमींदार साहब ने कारिन्दे की ओर देखा। कारिन्दा बोल उठा—साल भर का लगान और उसका ब्याज इनके ऊपर है। जमीन यह पाँच रुपये बीघे पर शिकमी उठाये हुए हैं।

जमींदार—यह क्या देते हैं ?

कारिन्दा—तीन रुपये बीघा।

जमींदार—बड़ा फ़र्क़ है।

कारिन्दा—जी हाँ, उधर तो दो रुपये बीघे का मुनाफ़ा खायँ, इधर हमारा लगान न दें। सो यह तो होशियार ठहरे और हम बेवकूफ़ !

गंगाचरण—अरे साहब, लगान पर तो हमने अभी साल-भर से उठाये हैं; इसके पहले तो हम खुद ही खेती कराते थे। पर इधर हमारा काम बिगड़ गया। पहले चोरी हो गई; उसमें जो कुछ जोड़ी हुई पूंजी थी, निकल गई। फिर पिता का देहान्त हुआ। इसके बाद लड़की का ब्याह करना पड़ा। इन सब कारणों से हमारा खेल बिगड़ गया। अब इस समय हमारी स्त्री के शरीर पर एक गहना तक नहीं है। इसी से लगान पिछड़ गया, नहीं तो हम सब से पहले लगान जमा करते थे।

जमींदार—ख़ैर, आप हमारा लगान और ब्याज जमा कर

दीजिए। हम आपकी बेदख़ली न करावेंगे।

गंगाचरण—धर्मावतार, लगान होता तो हम पहले ही न जमा कर देते। यह नौबत ही क्यों आती। लगान ही तो नहीं है।

ज़मींदार—नहीं है, तो हम विवश हैं।

गंगाचरण—नहीं सरकार, ऐसा न करो। आप लोग सैकड़ों रुपये ग़रीबों को दे डालते हो, शौक़ में खर्च कर देते हो। जानो, यह सौ रुपये भी दान कर दिये। हम यह नहीं कहते कि हम देंगे नहीं। देंगे ज़रूर; पर थोड़ा-थोड़ा करके दे देंगे। एकदम से हमारे किए नहीं होगा। इतनी ही रियायत चाहते हैं।

ज़मींदार—महाराज, बिना रुपये जमा कराये हम कुछ नहीं कर सकते।

गंगाचरण—मालिक बेमौत मर जाऊँगा।

ज़मींदार—तो इसका हम क्या करें?

गंगाचरण—आप सब कुछ कर सकते हैं। भगवान् ने आपको समर्थ बनाया है। एक ब्राह्मण का सर्वनाश करने से आपका कोई बड़ा भारी लाभ न होगा।

ज़मींदार—ज़मींदारी में इन बातों पर ध्यान नहीं दिया जाता। ऐसा सोचें तो फिर ज़मींदारी कर चुके।

कारिन्दा—जितनी अपनी समाई होती है उतना ही प्रतिपाल किया जाता है। अपना घर लुटाकर कोई प्रतिपाल नहीं करता।

गंगाचरण महाराज क्रुद्ध होकर बोले—आप क्यों बीच में टांग अड़ाते हैं? हम मालिक से कहते हैं, बोलते आप हैं!

कारिन्दा—अच्छी बात है, न बोलूंगा।

गंगाचरण—यह सब आग आप ही की लगाई हुई है, ठाकुर साहब! हमारे मालिक ऐसे नहीं हैं जो इतने निर्दयी हो जावें। आपने न जाने क्या उलटा-सीधा समझा दिया है।

जमींदार—यह आपकी भूल है, महाराज! यह बेचारे क्या समझावेंगे। मैं क्या अपना बनता बिगड़ता नहीं समझता हूँ ?

गंगाचरण—सौ-सवासौ रुपल्ली में आपका कुछ नहीं बिगड़ता, सरकार!

जमींदार—हाँ, परन्तु चलन तो बिगड़ता है। और लोग जब यह देखेंगे कि गङ्गाचरण महाराज साफ़ बच गये तो वे भी इसी तरह लगान न देंगे।

गङ्गाचरण महाराज ने बहुत प्रार्थना की, पर जमींदार साहब न पसीजे वरन् उठकर चले गये।

(४)

गङ्गाचरण महाराज लौट आये। रास्ते भर उन्हें अपने भविष्य की चिन्ता रही। जमीन निकल जायगी तो क्या होगा? बाल-बच्चे भूखों मर जाएँगे। जमींदार इतने बड़े आदमी हैं—इनके लिये सौ दो सौ कौन बड़ी बात थी; हमारे जीवन मरण का प्रश्न है। हमारे पास इतनी प्रभुता हो तो हम सौ-दो सौ क्या हजार दो हजार छोड़ देते। हाँ! इस कलिकाल में दया धर्म बिलकुल उठ गया।

इसी प्रकार की बातें सोचते हुए महाराज गाँव लौटे। उस दिन महाराज ने भोजन नहीं किया। रात भर पड़े आकाश-पाताल सोचते रहे। प्रातःकाल होते ही उन्होंने निश्चय किया कि हो न हो किसी से ऋण ले लें। इसके लिये उन्होंने उस दिन बड़ा प्रयास किया; पर उन्हें किसी ने ऋण भी न दिया। लोगों ने सोचा—"इनसे ले क्या लेंगे, इनके पास है क्या?" जिन्हें महाराज से सहानुभूति थी वे इस योग्य न थे कि इतने रुपये दे सकते। इससे गङ्गाचरण को घोर कष्ट हुआ। उन्होंने सोचा—जो काम कभी नहीं किया,—वह काम तक

करने को प्रस्तुत हुए; पर वह भी न हुआ! विपद्‌काल में कोई साथ नहीं देता।

अन्त में वह उस व्यक्ति के पास पहुंचे, जो उनकी भूमि शिकमी लिये हुए था। गङ्गाचरण ने उससे कहा—लछमन, जमीन तो अब जाती है। जमींदार बिना अपने रुपये लिये मानेंगे नहीं।

लछमन—यह तो बड़ा गजब हैं, पण्डित महाराज! बाप-दादा की जमीन छिनी जाती है।

गंगाचरण—नेत्रों को अश्रुपूरित करके बोले—क्या बतावें भइया- कुछ समझ में नहीं आता। हमारी रोटी तो आज-कल इसी जमीन से है। इसके चले जाने पर फिर क्या होगा।

लछमन को महाराज के अश्रुपूर्ण नेत्र देखकर बड़ा दुःख हुआ उसने कहा—क्या कहें, जब इतने बड़े जमींदार को समाई न हुई तो और किसे कहा जाय!

गंगाचरण—आजकल के जमींदार तो चमार हैं। विष्ठा में पड़ा हुआ पैसा उठा लें।

लछमन—वह ठकुरवा सब कर रहा है। हमने सुना है कि एक आदमी से उसके सौ रुपये पटवारी की मार्फत ठहर गये हैं। आपकी जमीन उसी आदमी को दी जायगी।

गंगाचरण महाराज व्यथित होकर बोले—तो फिर क्या उपाय करें? घर में कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसे बेचकर रुपये जमा हो सकें। जनम-भर किसी से उधार नहीं माँगा, सो आज दिन-भर यह भी करके देखा। कोई उधार देने को तैयार नहीं। सबने बहाना कर दिया।

लछमन—बिगड़े समय का साथी कोई नहीं होता, महाराज! हमें आसों (इस वर्ष) बिटिया का ब्याह करना है,—नहीं हमीं कुछ करते।

गंगाचरण—कुछ कर सको तो करो, तुम्हारा भी इस भूमि से लाभ है।

लछमन—लाभ की तो हमें महाराज इतनी चिन्ता नहीं है। हमारे पास ज़मीन की कमी नहीं है। जितना हमसे हो सकता है उतनी ज़मीन हमारे पास है। आपकी जीविका इसीसे है, यही सोचकर कहते थे कि कुछ हो जाता तो अच्छा ही था।

गंगाचरण—तुम चाहो तो हो सकता है।

लछमन—बड़ा कठिन है, महाराज! इस समय हमारे पास रुपया नहीं है। जब था तब आपसे इन्कार नहीं किया। बिटिया के ब्याह में आपने साल भर का लगान पेशगी माँगा, हमने तुरन्त दे दिया।

गंगाचरण—हाँ, सो तो तुमने दिया था। ऐसे ही अब भी कुछ कर दो तो बड़ा उपकार हो।

लछमन—झूठ बात कहो कह दें; पर इस समय हमारे किये कुछ नहीं हो सकता।

अब गंगाचरण महाराज बिलकुल हताश हो गये। २४ तारीख़ में अब केवल दो दिन शेष रह गये थे। महाराज का खाना-पीना छूट गया। दिन-रात पड़े-पड़े यही सोचा करते थे कि अब क्या होगा? भूमि चले जाने पर बाल-बच्चों का पालन-पोषण कहाँ से होगा? छः सात दिन की चिन्ता में ही बेचारे आधे रह गये।

२३ तारीख की शाम को लछमन की स्त्री ने उससे आकर कहा—आज महाराज के घर में रोना-पीटना पड़ा है। कल तारीख़ है।

लछमन—हाँ, कल २४ तारीख़ है। कल उनका मुक़दमा होगा।

स्त्री—महाराज अलग पड़े रो रहे हैं। मेहरी अलग रो रही है। चूल्हा नहीं जला।

लछमन—क्या बतावें, ऐसे भले आदमी को भगवान् ने ऐसा दुःख दे दिया। कुछ समझ में नहीं आता। हमें तो उन पर बड़ी दया आती है।

स्त्री—तो अपना कुछ बस है?

लछमन—रुपये तो हमारे पास डेढ़सौ के लगभग धरे हैं; पर बिटिया का ब्याह करना है।

स्त्री—हाँ, बिटिया का ब्याह थोड़े ही रुक सकता है।

लछमन—सोई तो कहा।

स्त्री—जाओ ज़रा देख आओ, समझा-बुझा आओ।

लछमन गंगाचरण महाराज के घर पर पहुँचा। देखा, घर में दीपक नहीं जला।

लछमन ने पुकारा—पण्डित महाराज!

गंगाचरण महाराज चौपाल में पड़े थे। उन्होंने कहा—

कौन है, लछमन? आओ भय्या।

लछमन उनके निकट पहुंचा और बोला—कैसे पड़े हो? आज दिया नहीं जला?

गंगाचरण—दिया कौन जलावे भय्या, सब पड़े रो रहे हैं।

लछमन ने कहा—रोने-धोने से होगा क्या?

गंगाचरण—यह हम समझते हैं, भय्या! पर चित्त मानता है? बाप-दादों की वस्तु हाथ से चली जा रही है। जीविका का द्वार बन्द हुआ जा रहा है। ऐसी दशा में चित्त शान्त कैसे रह सकता है? कलेजा नुचा आता है लछमन! हाय! हम क्या करेंगे? हमारे छोटे-छोटे बच्चे क्या खाकर जियेंगे? भगवान्, तुम कहाँ हो, हमने तुम्हारा कौन अपराध किया, जो ऐसा कठोर दण्ड दे रहे हो?

यह कहकर महाराज चीत्कार करके रोने लगे।

लछमन का गला भी भर आया। वह चुपचाप महाराज का करुण-क्रन्दन सुनता रहा। अन्त में, उससे जब न देखा गया तब, वह चुपचाप वहां से चला आया।

घर आकर उसने अपनी स्त्री से कहा—महाराज का हाल तो बड़ा खराब है। और बात भी ऐसी ही है। छोटे बच्चे, माँ, स्त्री, पाँच-छः खाने वाले, कैसे गुजारा होगा? अभी बेचारे जौ-बाजरा खाकर, फटा-पुराना पहनकर, बसर कर रहे हैं, फिर क्या होगा?

स्त्री—भगवान् ऐसा दुःख वैरी पर भी न डाले!

लछमन—हमारा गाँव दो कौड़ी का है। हम ऐसे दस-पाँच आदमी मौजूद हैं, जो सौ-दोसौ रुपये दे सकते हैं, पर कोई नहीं फटकता। जब महाराज का समय अच्छा था तब वह सबकी सहायता करते थे। उन पर समय पड़ा तो सब अलग हो गये। हमारा तो मन ऐसा होता है कि तुम बिटिया का ब्याह सह साल टाल दो। महाराज को रुपये दे दो।

स्त्री—अरे नहीं, बिरादरी में बड़ी बदनामी होगी। सब पक्का-पौढ़ हो चुका है।

लछमन—बदनामी हो तो हुआ करे; महाराज का तो संकट कट जायगा। बिटिया का ब्याह तो फिर भी हो जायगा; पर महाराज की जमीन जो चली गई तो फिर नहीं मिलेगी।

स्त्री—ब्याह तो नहीं टल सकता, बदनामी होगी।

लछमन—टल क्यों नहीं सकता, कोई जबरदस्ती है? हम इस साल नहीं करते, पारसाल करेंगे। बदनामी क्यों होगी, किसी ससुरे की चोरी करते हैं क्या? हमारी इच्छा है, इस

साल ब्याह नहीं करते।

स्त्री—समझ लो।

लछमन—समझ लिया है। लाओ रुपये निकालो।

+ + +

गंगाचरण महाराज ने रुपये जमा करदिये। उनकी भूमि बच गई। गाँव में कोई नहीं जानता कि कहाँ से रुपये मिले। कोई कहता था—महाराज बड़े बने हुए हैं, रुपये धरे बैठे रहे और फैल मचाते रहे; जब कोई उपाय न देखा तब रुपये निकाले।

इधर लछमन की कन्या का ब्याह रुक गया। इसका परिणाम यह हुआ कि जहाँ उनकी कन्या का सम्बन्ध हुआ था वहाँ से सम्बन्ध टूट गया। उन्होंने कहा—"या तो इसी वर्ष ब्याह करो, नहीं हम दूसरी जगह कर लेंगे।" लछमन बेचारे को इसके कारण अनेक बातें सुननी पड़ीं, अनेक व्यँग-बचनों के तीखे बाणों का प्रहार सहना पड़ा। पर उसे सन्तोष था कि यह सब उसे एक शुभ कार्य के बदले में सहन करना पड़ रहा है।

पाँच महीने बाद जब खरीफ़ की फसल तैयार हो गई, तो एक दिन लछमन ने गंगाचरण से आकर कहा—पण्डित महाराज, आपका क़र्ज़ा भगवान ने अदा कर दिया।

गंगाचरण महाराज लछमन का तात्पर्य न समझ कर बोले—समझा नहीं।

लछमन—अबकी आपके खेतों में अनाज फट पड़ा। अठमनी बीघा हुआ है। इतना अनाज आज तक गाँव के किसी खेत में नहीं हुआ।

गंगाचरण—भई, तुमने मेरी सहायता की थी, भगवान् ने तुम्हारी सहायता की।

लछमन—आपके रुपये अदा हो गये, अब आप उनकी चिन्ता न करना।

गंगाचरण—भई, वह रुपये तो उधार लिये थे, देने ही पड़ेंगे।

लछमन—अब मैं रुपये-उपये कुछ नहीं लूँगा। आपका क़र्ज़ा भगवान् ने अदा कर दिया।

इतना कहकर लछमन चला गया। गंगाचरण महाराज के नेत्रों में आँसू छलछला आये। उन्होंने कहा, ग़रीब के हृदय में भगवान् बसते हैं। इन धनियों से ये कितने अच्छे हैं!

———

पुरस्कार

(१)

"वाहवा ! वाह ! खूब ! खूब ! कमाल ! यह कविता नहीं जादू है । हाँ, जरा फिर कहिए ।" एक रईस महोदय की सभा जमी हुई थी । रईस महोदय गावतकिए के सहारे बड़े अभिमान पूर्वक बैठे हुए थे । उनके दोनों ओर उनके कुछ मित्र, कवि तथा वेतन-भोगी मुसाहब डटे हुए थे । सामने कवियों का अखाड़ा जमा हुआ था । इनमें जवान, बूढ़े, सभी तरह के कवि थे । इन कवियों की संख्या ८-१० के लगभग थी । सब समस्या-पूर्तियाँ सुना रहे थे । रईस महोदय और उनके मित्र तथा मुसाहब सुन रहे थे । एक कवि जब अपनी समस्या पूर्ति सुनाता, तो अन्य सब कवि वाहवा का चीत्कार कर देते थे । जान पड़ता था, इन सब में समझौता हो गया था कि जब एक कविता पढ़े, तो खूब प्रशंसा की जाय, कविता चाहे प्रशंसा के योग्य

हो या न हो।

एक कवि कविता पढ़ चुका था, उसकी प्रशंसा के पुल बाँधे जा रहे थे, एक महोदय कह रहे थे—नवरत्न भी खूब कहते हैं। प्रास तो ईश्वर ने इन्हीं के हिस्से में डाला है।

दूसरे महोदय बोले—क्या बात है। ऐसा प्रास तो कोई लिख ही नहीं सकता। हाँ सागर जी, अब आप कहिए।

सागरजी दाँत निकालकर बोले—हँ-हँ, मैं! भला ऐसे दिग्गजों के सम्मुख मैं क्या कह सकता हूँ। मैं तो केवल सुनने के अभिप्राय से आया हूँ।

एक कवि महोदय, जो यथेष्ट वृद्ध थे और रईस महोदय की बग़ल में गावतकिए का कोना दाबे बैठे थे, बोले—कहिए-कहिए, हम जानते हैं, आप जैसा लिखते हैं।

सागरजी बोले—यदि आपकी आज्ञा है, तो सुनाता हूँ—आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता।

सागरजी ने अपनी कविता सुनाना आरम्भ किया। उनके पढ़ते ही वाहवा! खूब! इत्यादि के चीत्कारों से प्रशंसा-पत्र की ख़ानापुरी होने लगी।

रईस महोदय और उनके मित्र यद्यपि समझते ख़ाक नहीं थे, पर औरों की देखा-देखी वाहवा कर देते थे। यद्यपि सागरजी की कविता कविता-सागर में गंदे नाले के समान थी, परंतु फिर भी लोगोंने अपना कर्तव्य तो पूरा कर ही दिया—आगे सागरजी का भाग्य।

सागरजी के पढ़ चुकने पर एक कवि ने दूसरे के कान में कहा—यह निरा काठ का उल्लू है!

दूसरा बोला—न जाने इसे कविता करने का परामर्श किस उल्लू के पट्ठे ने दिया ये दोनों वे लोग थे, जो सागरजी के कविता पढ़ते समय प्रशंसा करते हुए भूमि से छः-छः अँगुल

ऊपर उठ जाते थे।

इसके पश्चात् पुनः पुकार हुई, "गागरजी, अब आप सुनाइए।"

गागरजी भी नियमानुसार दाँत निकालकर बोले—सागर के सामने भला गागर क्या टिक सकती है।

एक महोदय बोले—"अजी आप वह गागर हैं, जो सागर को लिए फिरती है।"

इतना सुनते ही "आहाहा! वाह! खूब! बहुत सुन्दर" के ओले बरस पड़े।

गागरजी के भीतर-ही-भीतर मिसरी घुल गई; परंतु ऊपर से मुँह बनाकर, भौहें सिकोड़ कर थोड़ा आगे खिसक आए, और जेब से एक काग़ज़ का टुकड़ा निकालकर पढ़ने लगे। इधर इन्होंने पढ़ना आरम्भ किया। उधर लोगों ने खाना पुरी करनी आरंभ की। जब वह पढ़ चुके, तो एक महोदय बोले—"गागरजी भी खूब कहते हैं-कंठ स्वर कितना सुन्दर है।"

"यही तो विशेषता है।"

"ईश्वर की देन है"

"मेरा तो चित्त प्रसन्न हो गया!"

गागरजी के पश्चात् 'नागरजी' आए और उनके पश्चात् 'उजागरजी'। इस प्रकार जब समस्त 'जी' अपने-अपने जी की हवस निकाल चुके, तो वृद्ध कवि ने दृष्टि उठाकर एक बार सब पर डाली और बोले—अब तो कोई बाक़ी नहीं रह गया?

एक नवयुवक एक कोने में दुबका बैठा था। कवि महोदय की दृष्टि उस पर पड़ी। कवि महोदय ने देखा, नवयुवक देखने में सुन्दर है, पर कपड़े साधारण पहने है।

कवि महोदय ने पूछा—क्यों जी आप भी कुछ सुनाइए।

नवयुवक ने किंचित मुसकिराकर कहा—मैं ऐसा नहीं कहता,

जो आप लोगों के सुनने योग्य हो। इसके अतिरिक्त मुझे 'समस्या' का पता नहीं था—मै परदेशी आदमी हूँ, आज ही इस नगर में आया हूँ।

कवि—आपका नाम ?

युवक—मेरा नाम ? मेरा नाम ब्रजकिशोर है।

कवि—और उपनाम ?

युवक—उपनाम कुछ नहीं।

कवि—खैर, तो कुछ सुनाओ।

युवक—क्या सुनाऊँ।

कवि—अपनी कोई पुरानी रचना सुनाओ।

युवक—आपकी समस्या पर मैंने यहीं बैठे बैठे एक कबित्त बना डाला है; कहिये तो सुनादूं।

कवि—वाह! अवश्य सुनाओ।

युवक ने कहना आरम्भ किया।

जुरे हैं श्रीमान् की सभा में कविवृन्द आज,
चटक मटककर हांक रहे दून की;
पिंगल न जानें कछू कविता न पहचानैं,
ठूंस ठांस करैं हैं फिकर नोन चून की;

युवक इतना ही कह पाया था कि लोगों ने 'खामोश, 'चुप रहो' "बैठ जाओ" इत्यादि कहकर युवक को चुप कर दिय।

युवक ने देखा कि अब यहां ठहरना ठीक नहीं, अतएव वह शीघ्रता पूर्वक वहां से निकल कर बाहर आ गया और एक ओर चल दिया।

युवक के चले जाने के पश्चात् रईस महोदय ने कहा आप लोगों ने उसे भगा दिया, उसकी पूरी कविता भी न सुनी।

वृद्ध कवि बोले—श्रीमान्, वह कविता थी ? न जाने क्या बेहूदा बक रहा था।

सागरजी महाराज बोले—उसे कुछ आता-जाता था। क्यों जी उसने कहा क्या—हमारी तो कुछ समझ में नहीं आया।

सागरजी महाराज ने कहा—अजी वह लौंडा कविता करना क्या जाने; उसे यहां आने किसने दिया?

इसी प्रकार सबने उस पर टीका टिप्पणी की पर चेहरे सबके फक्क थे। रईस महोदय भी इस बात को ताड़ गये। उन्होंने थोड़ीदेर पश्चात् कहा—अच्छा, अब समाप्त कीजिए।

(२)

रईस महोदय अपने मुसाहबों से वार्तालाप कर रहे थे। इस समय वहाँ कोई कवि उपस्थित नहीं था। एक मुसाहब कह रहा था भई, था तो लौंडा, पर सबके कान कतर गया। उसने क्या कहा था—मुझे तो याद नहीं रहा।

दूसरा— यही कहा था कि "फिकर नोन-चून की।" उसका मतलब यही था कि ये कवि लोग कविता करना क्या जानें, इन्हें तो नमक और आटे की फिक्र रहती है।

तीसरा—खूब कविता की। क्यों जी, वह भी कोई कवि होगा?

रईस—कवि न होता, तो इतनी जल्दी कैसे बना लेता। उसकी पूरी कविता उन बेईमानों ने सुनने न दी।

दूसरा—हाँ, आगे न जाने क्या कहा हो।

रईस—क्या बतावें, अफसोस रह गया। भई, उसकी कहीं तलाश करना। राह-घाट मिल जाय, तो ले ही आना छोड़ना नहीं। मैं तो उसकी अदा पर लट्टू हो गया। किस शान से खड़े हो कर कहना आरम्भ किया था।

पहला—बड़ा दिलेर आदमी था। इतने लोगों के बीच में खड़े होकर सबको ललकार जाना काम है।

रईस—परन्तु भाग गया, यह उसने बुरा किया।

पहला—बड़ा बुरा किया, पूछो, भागने का क्या काम था।

रईस—इतना उसने बोदापन दिखाया।

पहला—बिलकुल ! बोदा तो था ही।

रईस—परन्तु एक तरह से देखो; तो उसने ठीक किया। पराई सभा में इस प्रकार की बातें करके ठहरना उल्लूपन था। वह बेचारा अकेला; यहां पन्द्रह बीस आदमी। भागता न तो करता क्या !

पहला—यही बात है। उस समय भागना ही उचित था।

दूसरा—बताइए; अपने प्राण देता।

रईस—उसकी ढूंढ करो। उसकी कविता सुनने को जी चाहता है। हाँ जी उसने क्या कहा था—"फिकर नोन-चून की"।

पहला—मुझे पूरा याद नहीं रहा-इतना ही याद रह गया।

रईस—तुम तो पूरे कुढ़मग्ज़ हो; याद भी न कर लिया। मैं अगर सुन पाता तो अद्धा-पौना याद ही कर लेता। मैंने तो पूरा सुना ही नहीं।

दूसरा—गड़बड़ में मैं भी न सुन पाया, नहीं तो आप जानिए, याद करने में तो अपने बहुत तेज हैं। तीन बार जो बारहमासा पढ़ या सुन लिया, वह फिर कभी भूलता ही नहीं। बचपन के याद किए हुए बारहमासे अभी तक याद हैं। (गाकर) "अरी ओ सखी, उन मदनमोहन बिन कल ना परे री" कितनी अच्छी कविता है—वाहवा ! बारहमासा भी आदमी को मस्त कर देता है। हमें तो बारहमासे के आगे और कुछ जँचता ही नहीं। आजकल के कवि लोगों की कविता हमें तो बिलकुल नहीं जँचती।

पहला—समझ में कम आती है।

दूसरा—जी हाँ, और वह भी कोई कविता है, जो समझ में न आवे।

रईस—हमारी तो सब समझ में आ जाता है।

पहला—यह अच्छी कही—आप न समझेंगे, तो फिर समझेगा कौन। आप हिन्दी जानते हैं, हम हिन्दी जानते नहीं। सदा उर्दू से काम रहा। अब आपकी संगत में थोड़ी-बहुत हिंदी आने लगी है।

रईस—चन्द्रकांता पढ़ डालो, हिन्दी आ जायगी। हमने तो उसी से हिन्दी सीखी। एक ही पुस्तक है। उसके जबाब की किताब अभी तक लिखी नहीं गई।

पहला—जब ऐसी किताब है, तो सौ काम छोड़के पढ़ना चाहिए।

दूसरा—मैं तो आज ही ले आऊँगा।

रईस—ले आने का क्या काम, वह तो हमारे पास रक्खी है। किसी समय निकाल देंगे।

इसी समय रईस महोदय का नौकर उनकी डाक लाकर सामने रख गया। रईस महोदय डाक पढ़ने लगे।

(३)

'साहित्य-गौरव' एक उच्च कोटि का मासिक पत्र उसी नगर से निकलता था, जिस नगर में हमारे रईस महोदय रहते थे। साहित्य-गौरव के सम्पादक एक बड़े विद्वान् तथा प्रतिभाशाली व्यक्ति थे, दोपहर का समय था। सम्पादकजी अपने सम्पादकीय कमरे में बैठे कुछ कागजों को उलट-पुलट रहे थे। उसी समय चपरासी ने आकर कहा—आपसे एक कवि मिलने आए हैं।

संपादक—कौन कवि ?

चपरासी—यह तो मैं जानता नहीं। उन्होंने यही कहा—कह दो, एक कवि मिलना चाहते हैं।

सम्पादक—अच्छा भेज, दो।

कुछ क्षणों में वही हमारा पूर्व-परिचित नवयुवक सम्पादकजी

के सामने आकर खड़ा हो गया! संपादकजी ने उसके प्रणाम का उत्तर देकर एक बार उसे सिर से पैर तक देखा, तत्पश्चात् कुर्सी की ओर संकेत करके कहा—बैठिए!

नवयुवक कुर्सी पर बैठ गया। संपादकजी ने पूछा—आप कहां से आए हैं?

नवयुवक—मैं रहने वाला तो पश्चिम का हूं; पर इस समय घूमता-घामता आ रहा हूं।

संपादक—आपका नाम?

नवयुवक—मेरा नाम ब्रजकिशोर है।

संपादक—आप ब्राह्मण हैं?

नवयुवक—जी नहीं, मैं क्षत्रिय हूँ।

संपादक—यहाँ कैसे आना हुआ?

नवयुवक—ऐसे ही घूमने-फिरने के लिये चला आया।

संपादक—ठहरे कहाँ हैं?

नवयुवक—धर्म-शाला में ठहर गया हूँ।

संपादक—आप कुछ कविता भी करते हैं क्या?

नवयुवक—कविता तो क्या करता हूँ; पर हाँ, अपने हृदय की इच्छा-पूर्ति कर लेता हूँ—कविता करना तो बहुत कठिन है। एक छोटी-सी तुकबंदी आपके लिये लिखकर लाया हूँ—यदि उचित समझिए, तो पत्र में प्रकाशित कर दीजिएगा।

संपादक—लाइए, देखूँ।

ब्रजकिशोर ने कविता जेब से निकालकर संपादकजी के हाथों में दे दी। संपादकजी ने कविता को ध्यानपूर्वक देखा और कहा—कविता तो बहुत सुन्दर है।

ब्रजकिशोर—सुन्दर तो क्या है।

संपादक—नहीं, बहुत अच्छी कविता है। मैं इसे इसी अङ्क

में दिए देता हूं।

ब्रजकिशोर—धन्यवाद!

संपादक—आप लिखा कीजिए, मैं आपकी कविताएँ सहर्ष तथा सधन्यवाद अपने पत्र में प्रकाशित किया करूँगा।

ब्रजकिशोर—यह आपकी दया है, मैं अवश्य लिखूँगा।

संपादक—और मेरे योग्य कोई सेवा?

ब्रजकिशोर—इस नगर में कोई कवि हों, तो उनका पता बता दीजिए, मैं यहाँ के कवियों से मिलना चाहता हूँ।

संपादक—वैसे तो यहाँ कई कवि हैं; पर वे कवि नहीं, तुक्कड़ हैं। तुकबंदियाँ करके अपढ़-कुपढ़ रईसों को सुनाते हैं। और कुछ ले मरते हैं। हाँ एक कवि हैं; वह निस्संदेह अच्छे कवि कहे जा सकते हैं?

ब्रजकिशोर—वह कहाँ रहते हैं?

संपादकजी ने पता बता दिया। इसके पश्चात् बोले—यदि कुछ पैदा करना चाहो, तो यहाँ चतुरसिंह नाम के एक रईस हैं। वह भी क्षत्रिय हैं। उन्हें कविता सुनने का शौक़ है। वह कवियों का आदर-सत्कार करते हैं, उनसे मिल लीजिए।

ब्रजकिशोर—जिस दिन मैं यहाँ आया हूँ, उस दिन घूमता घामता घटनावश एक रईस के यहाँ गया था। वहाँ कुछ कवि जमा थे।

संपादक—किस मुहल्ले में?

ब्रजकिशोर ने पता बताया।

संपादक—वही चतुरसिंह हैं। आप उनसे अवश्य मिलिये। पढ़े-लिखे तो अधिक नहीं है; पर बड़े उत्साही तथा गुणग्राहक हैं। आदमी की क़दर करना जानते हैं।

ब्रजकिशोर—मैं उनसे मिलता तो अवश्य; पर उस दिन मुझसे एक ऐसी हरकत हो गई, जिसके कारण मैं उनके यहाँ

जाते शरमाता हूँ।

संपादक—क्यों, क्या हुआ ?

ब्रजकिशोर—बात यह है कि उस दिन उनके यहाँ जो कवि जमा थे, उनकी कविता मैंने सुनी। वह कविता क्या, कविता की हत्या थी। इस पर मैंने क्रोध में आकर एक कवित्त बनाया जिसमें उनकी असलियत का कुछ वर्णन किया था। रईस की बगल में एक वृद्ध कवि बैठे थे, उनके कहने से मैंने वही कवित्त सुनाया। कवित्त पूरा भी न होने पाया था कि अन्य कवि लोग चिल्ल-पों मचाने लगे। अतएव मैंने वहां ठहरना उचित नहीं समझा और वहां से खिसक आया। ऐसी दशा में अब वहाँ जाते संकोच मालूम होता है। संभव है; ठाकुर साहब रुष्ट हो गये हों। इसके अतिरिक्त मुझसे खुशामद हो नहीं सकती, मैं तो स्पष्ट कहता हूँ, चाहे अच्छी लगे या बुरी, और ये रईस लोग खुशामद के अभ्यस्त होते हैं।

संपादक—हाँ, यह कथन आपका यथार्थ है। पर जहाँ तक मैं चतुरसिंह को जानता हूँ, उसके बल पर मैं यह कहता हूँ। कि वह आपसे रुष्ट कदापि नहीं हुए होंगे। ठाकुर साहब बड़े समझदार तथा उदार-हृदय हैं। यदि आप उन्हें गालियां भी दें और वह यह समझलें कि आप उनको गालियां देने में कुछ अनुचित कार्य नहीं कर रहे हैं, तो वह कभी आपसे रुष्ट नहीं होंगे।

ब्रजकिशोर—हाँ, यदि वह बात हो, तो मैं उनसे भेंट करने का साहस कर सकता हूं।

संपादक—आप अवश्य जाइए। यदि आपको इस प्रकार जाने में कुछ संकोच हो, तो मैं एक पत्र देदूँ।

ब्रजकिशोर—यदि ऐसा हो जाय तो अत्युत्तम हो।

संपादक जी ने उसी समय ठाकुर साहब के नाम एक पत्र

लिख कर ब्रजकिशोर को दे दिया।

(४)

ठाकुर चतुरसिंह अपनी बैठक में बैठे हुए थे। उनके पास वृद्ध कवि भी बैठे हुए थे। उसी समय उनके एक दास ने आकर कहा—आपसे एक आदमी मिलने आए हैं, अपने को कवि बताते हैं।

ठाकुर साहब ने नौकर से कहा—उन्हें ले आओ।

थोड़ी देर में ब्रजकिशोर ठाकुर के सामने आए। उन्हें देखते ही ठाकुर साहब के मुख पर प्रसन्नता की लाली दौड़ गई। उधर कवि महोदय की भृकुटी चढ़ गई। ब्रजकिशोर ने पहले उनके हाथ में संपादकजी का पत्र दिया। ठाकुर साहब ने कवि महोदय से पत्र पढ़वाया। पत्र में ब्रजकिशोर की प्रशंसा लिखने के पश्चात् संपादक महाशय ने ठाकुर साहब से प्रार्थना की थी कि ब्रजकिशोर की कविता सुनें और अपनी गुणग्राहकता का परिचय दें।

पत्र सुनकर ठाकुर साहब ने कहा—आप तो उस दिन ऐसे ग़ायब हुए कि पता ही न लगा।

ब्रजकिशोर—क्या कहूँ श्रीमान्, उस दिन मैंने कुछ ऐसी बात कही थी जो यहाँ उन लोगों को, जो उस समय उपस्थित थे, बुरी लगी। उन सब को क्रुद्ध देखकर मैंने उस समय टल जाना ही उचित समझा।

ठाकुर साहब—मेरे होते हुए वे आपका कुछ बिगाड़ नहीं सकते थे।

ब्रजकिशोर—यह ठीक है, पर मैं क्या जानता था कि श्रीमान् इतने उदार हैं।

कविमहोदय बोल उठे—उस दिन आपने बुराही किया था।

ब्रजकिशोर—हाँ, सत्य बोलना भी कभी-कभी बुरा हो

जाता है।

यह सुनकर कवि महोदय चुप हो गए।

ठाकुर साहब बोले--तो कुछ सुनाइए।

व्रजकिशोर--हाँ सुनिए।

इतना कहकर व्रजकिशोर ने अनेक उत्तम रचनाएं सुनाईं। ठाकुर साहब यद्यपि कविताएं भली भाँति नहीं समझे, पर तारीफ करने लगे। कवि महोदय ने भी प्रशंसा की। व्रजकिशोर भी समझ गए कि ठाकुर साहब में कविता समझने की योग्यता तनिक भी नहीं है। इससे उन्हें दुःख हुआ और साथ ही निराशा भी हुई।

ठाकुर साहब बोले--और कुछ सुनाइए।

व्रजकिशोर--क्या सुनाऊँ।

ठाकुर साहब--हाँ, खूब याद आया। आपने उस दिन जो कविता पढ़नी आरम्भ की थी, वह तो पूरी सुना दीजिए।

व्रजकिशोर--वह आप सुनकर क्या कीजिएगा? वह त कवियों के लिये थी।

ठाकुर साहब--वही कविता मैं सुनना चाहता हूँ।

व्रजकिशोर--वह तो मैं सुनाऊँगा नहीं। यदि आप सुनना ही चाहते हैं, तो उसी ढंग की दूसरी कविता सुना सकता हूँ, जो आप ही के सुनने योग्य है।

ठाकुर साहब--अच्छा वही सुनाइए,

व्रजकिशोर--सुनिए--

कविता को सुनैबो श्रीमानन को
ज्यों कपि को अदरक्ख खवाइबो;
नीति बताइबो है मनो मूढ़ को
कायर को रनभूमि पठाइबो।
दीप दिखाइबो है मनो सूर को

पंगु को है मनो नृत्य सिखाइबो ;
गाइबो ज्यों बहिरे के समक्ष है
भैंस के आगे है बीन बजाइबो।

यह कविता सुनते ही ठाकुर चतुरसिंह सन्नाटे में आगए। उधर कवि महोदय का मुख मारे क्रोध के रक्त वर्ण हो गया। उन्होंने कर्कश स्वर में कहा---इस बदतमीज़ को निकाल······

ठाकुर साहब ने कवि महोदय की बात काटकर कहा---ठहरिए, ठहरिए। मैं अभी इन्हें समुचित दण्ड दिलवाए देता हूँ।

यह कह कर उन्होंने एक आदमी को बुलाकर उसके कान में कुछ कहा।

इधर ब्रजकिशोर मन में सोच रहे थे कि न जाने उन्हें क्या दण्ड दिया जाय। ख़ैर, अब चाहे जो हो, उनके हृदय में जो बात उत्पन्न हुई, वह उन्होंने कह डाली और सर्वथा सत्य है। यही एक सन्तोष का कारण है।

थोड़ी देर में उनका नौकर एक थाली लिए हुए आया और उसने वह थाली ब्रजकिशोर के सम्मुख रख दी।

ब्रजकिशोर ने देखा---थाली में एक दुशाला और दुशाले पर पन्द्रह गिन्नियां रक्खी हुई थीं। ब्रजकिशोर ने अवाक् होकर ठाकुर साहब के मुख की ओर देखा। ठाकुर साहब ने मुसकिरा कर कहा---यह आपका पुरस्कार है। ब्रजकिशोर ने गद्‌गद् कंठ से कहा---श्रीमन, मैंने आपकी गुणग्राहकता की जैसी प्रशँसा सुनी थी, वैसा ही आपको पाया।

वृद्ध-कवि जल-भुनकर बोले---वाह ठाकुर साहब, यह आपने खूब किया। अनेकों कवि आपकी प्रशंसा करते करते थक गए, पर आपने उन्हें कभी इतना पुरस्कार न दिया, इस छोकरे को, जिसने आपका अपमान किया, आपने इतना बड़ा पुरस्कार दिया---वाहवा-वाह! अच्छी गुणग्राहकता दिखाई।

ठाकुर साहब बोले--यह सब झूठी प्रशंसा थी और यह सच्ची बात कही गई है। यह पुरस्कार इनकी निर्भीकता और सत्य बोलने का है। मैं चाहे कविता का मर्म न समझ सकूँ, पर इतना अवश्य समझता हूं कि अच्छा कवि वही हो सकता है, जो निर्भीक और सत्य बोलने वाला हो। खुशामदी और चापलूस कभी अच्छे कवि नहीं हो सकते।

ठाकुर साहब का यह उत्तर सुनकर वृद्ध-कवि ने लज्जित होकर सिर झुका लिया।



नक्कू चौधरी

(१)

"महाराज, चाहे मेरा सरबस लै लेओ, पर किसी जतन से इसे उठाय के खड़ाकर देओ–जनम भर आपका गुन मानूँगा।"

दिन के आठ बज चुके हैं। मंगलपुर ग्राम के अहीर टोले में एक कच्चे मकान के अन्दर चारपाई पर एक रोगिणी लेटी हुई है। उसके समीप दूसरी चारपाई पर एक देहाती वैद्यराज विराजमान हैं—सामने एक अर्द्धवयस्क व्यक्ति हाथ जोड़े खड़ा है—एक द्वादशवर्षीय बालक उस व्यक्ति की कमर पर हाथ रक्खे कभी वैद्यराज के मुख को देखता है और कभी अपने पिता के मुख की ओर ताकता है। चारपाई पर जो रोगिणी पड़ी है, वह इतनी दुर्बल तथा कृशांग हो गई है कि एक अपरिचित व्यक्ति भी प्रथम दृष्टि डालकर ही यह बता सकता है कि रोगिणी को चारपाई पर गिरे हुए एक समय व्यतीत हो चुका है।

वैद्यराज ने उस व्यक्ति के उपर्युक्त वाक्य को सुनकर कहा, चौधरी, घबड़ाओ नहीं अच्छी हो जायँगी। आठ-दस दिन की कसर और है—बुखार कम हो चला है, खाँसी को भी आराम है। भगवान् ने चाहा, तो अब प्रतिदिन अच्छी होती चली जायँगी।

रोगियों के सरहाने तीन-चार स्त्रियाँ बैठी हुई थीं; उन में से एक बोली—वैद्यजी, जैसे बने, तैसे चोधराइन को अच्छी करो—भगवान् आपका भला करें—अब तो आप ही का सहारा है।

वैद्य—ईश्वर को याद करो—करने-धरने वाला वही है—हमारा काम तो केवल दवा देना है! सो उसमें हम कुछ उठा नहीं रख रहे हैं।

चौधरी—आप जो कर रहे हैं, वह हमारा जी जानता है, रोयाँ-रोयाँ आपको असीसता है।

इसके पश्चात् वैद्यराज ने औषध दी और उसकी सेवन-विधि बताकर उठ खड़े हुए। चौधरीने अंटीसे निकालकर एक रुपया वैद्य के हाथ में दिया, वैद्यराज बिदा हो गए।

वैद्यराज के जाने के पश्चात् एक ब्राह्मण देवता हथेली पर तमाखू मलते हुए आये और द्वार पर से ही बोले—काहे चौधरी का हाल है? यह कहते हुए ब्राह्मण देवता भीतर आए। चौधरी ने उन्हें देखते ही कहा—पालागों महाराज!

ब्राह्मण—आशीर्वाद! कहो वैद्यराज का कहत हैं? चौधरी एक दीर्घ निःश्वास लेकर बोला—कहत का हैं—यहै कहत कि आराम होई जाई।

ब्राह्मण—आराम तो तुम जान लेओ होई जहैं जित्ते दिन का शरीर का भोग है, वह तो भोगै का पड़वै करो।

चौधरी—का बतावैं, कुछ अक्किल काम नही करती, ऐसी बीमारी कबहूँ नहीं पाइन।

ब्राह्मण—सो तो तुम जान लेओ ठीकै है, बीमारी कठिन है—परंतु शंकरजी सब आनन्द करिहैं—तुम घबराओ नहीं।

चौधरी—और कुछ नहीं महाराज, जो चौधराइन को कुछ हो गया, तो मेरा बुढ़ापा बिगड़ जायगा।

इतना कहते-कहते चौधरी के नेत्र अश्रु-पूर्ण हो गए।

ब्राह्मण—नहीं सो बात नहीं होगी। तुम जान लेओ इससे कठिन कठिन रोग दूर होई जात हैं।

इसी समय द्वार से किसी ने पुकारा—ननकू काका! चौधरी ने आँखें पोंछते हुए कहा—आओ भइया, चले आओ।

चौधरी के इतना कहते ही एक व्यक्ति, जो वेष-भूषा से कृषक जान पड़ता था और हाथ में खुरपा लिए था—भीतर आया और आते ही बोला—का हाल है?

चौधरी—हाल तो अभी वैसा ही है।

कृषक—हम तो न जाने कित्ते दिनन से चिल्लाइत है कि इनकी दवा से कुछ न होइ—जाना? शिवपुरी के वैद को दिखाओ, उई मरा मनई जियावत हैं—जाना? काहे पण्डित महाराज झूठ कहत हम।

ब्राह्मण—नहीं कहत तो यथार्थ हौ—तुम जान लेओ दोई चार बेर हमरौ साबका पड़ चुका है—वैद तो अव्वलै हैं।

कृपक—चौधरी से बोला—देखो, पण्डित का कहत हैं।

चौधरी—जैसी तुम लोगन की राय होय, तैसा करन। हमारी बुद्धि तो काम नहीं देती।

कृपक—तो उनहूँ का दिखाय देओ, नुकसान का है। काहे पण्डित महाराज?

ब्राह्मण—हाँ हाँ दिखावै मां तुम जान लेओ का हरज है।

चौधरी—अच्छी बात है, अबहीं कौनो का भेजित है—बुलाय लाई। (कृषक से) तुम कैसी जाय रहे हौ।

कृषक—हम तो खेतवा निकावै जाइत है—जाना ?

चौधरी—तौ वैसी से जरा रमचरना को पठै देना।

कृषक—अच्छी बात है, अबहीं भेजित हैं। काका तुम घबराओ नहीं—उई अबतै कौनौ ऐस दवा दे हैं कि दोई तीन दिन माँ चौधराइन तुम्हें रोटी बनाय के खवाय देगी—जाना ?

चौधरी—देखो भइया, तुम लोगन का पुन्न-परताप है, तो आराम हो जायगा।

ब्राह्मण—आराम तो तुम जान लेओ निश्चय करि कै होई है—हाँ, हमार यह बात याद कर लेओ।

चौधरी—आप भगवान् का रूप हैं—आपका आसीर्बाद होई तो जरूर आराम होइ जाई।

कृषक—अच्छा तो हम जाइत हैं—रमचरना का भेजित हैं।

चौधरी—हाँ भइया भेज देओ तो बैद का बुलावैं खातिर पठै देई।

ब्राह्मण—अच्छा तो हमहूँ चलित हैं, अबहीं बहुत काम करै का है।

चौधरी—अच्छा जाओ—ऐसै किरपा बनी रहै। पालागौं।

ब्राह्मण-देवता—"आशीर्वाद !" कह कर विदा हुए।

(२)

ननकू चौधरी मंगलपुर के अहीरों का मुखिया है। उसकी आर्थिक दशा गाँव के अन्य अहीरों की अपेक्षा अधिक सन्तोषजनक है। पन्द्रह-बीस बीघे भूमि की खेती करता है, दो भैंसें तथा चार गाएँ हैं। अपनी जाति के लोगों के साथ कुछ लेन-देन भी करता है। उसके परिवार में केवल चार व्यक्ति हैं। एक तो वह स्वयम्, दूसरी उसकी पत्नी तीसरा एक द्वादशवर्षीय पुत्र, चौथा उसका एक बड़ा पुत्र, जिसका नाम रामचरण है। ननकू की उम्र यद्यपि चालीस वर्ष के लगभग है, परन्तु खुले वायु-मंडल

में रहने तथा खाने-पीने से सुखी होने के कारण वह तीस वर्ष से अधिक का नहीं मालूम होता।

उपर्युक्त घटना के पश्चात् दस दिवस व्यतीत हो गए। इन दस दिनों में ननकू ने चौधराइन को रोग मुक्त करने के लिये अनेक प्रयत्न किए--शिवपुरी के वैद्य को दिखाया, एक अन्य वैद्य की चिकित्सा भी की ; पर चौधराइन की दशा न सुधरी। दसवें दिन संध्या के समय चौधराइन ने चौधरी को अपने पास बुलाकर अत्यन्त क्षीण स्वर में कहा—रामचरण के बापू, अब मैं भगवान के घर जाती हूं।

चौधरी, मृत्यु-शय्या पर पड़ी हुई पत्नी के इस वाक्य का कोई उत्तर न दे सका।। उसके नेत्रों से आसुओं का स्रोत फूट निकला। चौधराइन ने कहा—रोते काहे हो ? भगवान् को याद करो। तुम्हारे रोने से मेरा जी भी दुखी होता है। और तो कोई अभिलाख है नहीं—तुमने मुझे जैसा सुख दिया, उसे देखकर यही कहना पड़ता है कि भगवान् दूसरे जनम में भी तुम्हारी चेरी बनावें—हाँ—रामचरन की दुलहिन का मुँह···। इतना कह कर चौधराइन मौन हो गई—दुर्बलता के कारण इतने वाक्य कहने में ही उसकी श्वास फूल गई। चौधरी उसी प्रकार अश्रु बहाता रहा। उसका कण्ठ इतना रुँध गया था कि वह इच्छा रहते हुए भी पत्नी की बात पर कुछ न कह सका।

कुछ देर दम लेने के पश्चात् चौधराइन फिर बोली—रामचरन की बहू का मुँह देख लेती, तो सुख से मरती। पर इतना सुख भाग में नहीं बदा था। मेरे पीछे मेरे मैकू को अच्छी तरह रखना—उसे किसी बात का दुःख न हो—रामचरन सयाना हो गया है—पर मैकू अभी बच्चा है—उसका ध्यान रखना।

इतना कहकर चौधराइन पुनः मौन हो गई।

चौधरी उसी प्रकार सिर झुकाए अश्रुधारा बहाता रहा। कुछ क्षणों पश्चात चौधराइन ने फिर कहना आरम्भ किया—और तुम ब्याह कर लेना, ब्याह न करने से तुम्हें तकलीफ रहेगी।

ये शब्द कहते हुए चौधराइन के रोगग्रस्त मुख पर विषाद की एक हल्की रेखा दौड़ गई। उसने पति की ओर एक ऐसी दृष्टि डाली, जिसमें अपनी इस बात का उत्तर पाने की उत्कण्ठा भरी थी।

इस बार बहुत चेष्टा करके चौधरी ने गद्‌गद् कण्ठ से कहा—ब्याह! यह तुम क्या कहती हो रामचरन की माँ! अब मैं दूसरा ब्याह करूँगा? तुम्हारे बसाए हुए घर में तुम्हारी सौत लाकर बिठाऊंगा? तुम्हारी जोड़ी हुई गिरस्ती भोगने के लिये दूसरी स्त्री लाऊंगा, ऐसा इस जनम में तो होगा नहीं।

पति के इन वाक्यों से चौधराइन के पीले मुख-मण्डल पर कुछ क्षणों के लिये लाली आ गई। उसके मुख पर ऐसा भाव प्रस्फुटित हुआ, जिससे यह स्पष्ट था कि पति का यह उत्तर मिलने से उसे संतोष हुआ है। चौधराइन पुनः बोली—तुम यह बात इसलिये कह रहे हो कि मुझे दुःख न हो। पर मैं भगवान् की सौगंद खाकर कहती हूं कि मुझे उसी में सुख है, जिसमें तुम्हें सुख है।

चौधरी—इस बात को जाने दो रामचरन की माँ—इन बातों से मुझे दुःख होता है—बस, अब तो भगवान् को याद करो।

चौधराइन—मेरे भगवान् तो तुम्हीं हो—तुम्हें छोड़ मैंने और किसी भगवान् को नहीं जाना। जब तक मेरे सामने तुम हो, तब तक, तब तक······। आह!

पत्नी के ये वाक्य सुनकर चौधरी व्याकुल हो गया। और बच्चों की भाँति ढाढ़ मारकर रोने लगा। वह रोता जाता था

और कहता जाता था—अरे भगवान् तुम कहाँ हो, हाय अब मैं क्या करूं। कोई मेरा सब कुछ लेले मेरी चौधराइन को अच्छा कर दे। हाय राम, तनिक तो दया करो। पति को व्याकुल देखकर चौधराइन भी दुख के मारे बेहोश हो गई। घर की स्त्रियां दौड़ पड़ीं। उन्होंने चौधरी को सँभाला और समझाने बुझाने लगीं।

उसी रात को चौधराइन का शरीरांत हो गया। चौधराइन की मृत्यु से चौधरी को अपने जीवन में एक विशेष परिवर्तन का अनुभव हुआ। एक पथिक जब सीधे मार्ग से भटक कर निर्जन बन में पहुंच जाता है, तब उसकी जो दशा होती है, वही दशा इस समय चौधरी की थी। अपना पिछला सुखमय जीवन उसे इस समय स्वप्नवत् प्रतीत हो रहा था। अपना घर, जो उसके लिए नन्दन-कानन से भी बढ़कर था; वही उसे इस समय काटने दौड़ता था। उसके स्वप्न में भी कभी यह बात नहीं आई थी कि उसके जीवन में कभी ऐसा विकट परिवर्तन होगा। उसे क्या मालूम था कि उसके सुखमय जीवन-मार्ग का मोड़ उसे कंटकाकरिण बन में डाल कर छोड़ देगा। आह! आज उसके नेत्रों में अंधकार है। आज भी भगवान् अंशुमाली अपनी पूर्ण शोभा के साथ उदय होते हैं, परन्तु ननकू को उनका मुख-मंडल रक्त से सना हुआ प्रतीत होता है। आज भी ग्राम के पक्षीगण उसके घर की दीवारों पर आकर बैठते हैं और अपनी मधुर बोलियाँ बोलते हैं, परन्तु ननकू को यह प्रतीत होता है कि वे उसकी चौधराइन के वियोग में व्याकुल होकर चीत्कार कर रहे हैं। द्वार पर बंधी हुई गाय जब राँभती है, तो ननकू समझता है कि वह उसकी चौधराइन को पुकारती है। उसके सामने जब कोई हँसता है, तो उसे प्रतीत होता है कि हंसने वाला संसार की निस्सारता पर हंस रहा है। ननकू को आज ज्ञात हुआ कि किस प्रकार

केवल एक प्राणी का अस्तित्व एक मनुष्य के जीवन को सुखमय बनाए रखता है, उसकी आँखों में संसार को प्रभा-पूर्ण रखता है और उसकी मृत्यु किस प्रकार जीवन को दुःखमय बना देती है, संसार को अंधकार-पूर्ण कर देती है।

(३)

चौधराइन की मृत्यु हुए दो वर्ष व्यतीत हो गए। चौधरी के हृदय में चौधराइन की मृत्यु से जो घाव हो गया था, वह भी काल-वैद्य द्वारा भरा जा चुका था। घाव भर गया था, परंतु उसका चिह्न शेष रह गया था। वह चिह्न, वह दाग चौधरी के हृदय में चौधराइन की स्मृति को स्थायी बनाए हुए था। इस बीच में चौधरी से लोगों ने दूसरा विवाह कर लेने का बहुत अनुरोध किया। अनेक माता-पिताओं ने उसे अपनी कन्याए अर्पित करने की उत्सुकता दिखाई। अनेक युवती विधवाओं ने उसका हृदय-हरण करने की भरसक चेष्टा की, परन्तु किसी को भी सफलता न मिली। चौधराइन की स्मृति चौधरी के हृदय की कवच बनी हुई थी, जिसके कारण किसी भी रमणी के नयन-बाण उसके हृदय को विद्ध नहीं कर सकते थे। चौधरी ने यह व्रत कर लिया था कि अब वह किसी भी स्त्री को काम-पूर्ण दृष्टि से नहीं देखेगा। इस प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुए।

शीत-काल की रात थी। चौधरी के द्वार पर अलाव लगा हुआ था और कुछ लोग बैठे हुए ताप रहे थे। चौधरी भी एक कोने में चुपचाप बैठा हुआ था। इधर उधर की बातें हो रहीं थीं। हठात् एक आदमी बोल उठा—"भइया ननकू, तुम अपना ब्याह करो, न करो पर रामचन्न का ब्याह तो कर देओ। घर माँ कौनौ मेहरिया नहीं है—रोटी-पानी की तकलीफ होती है।"

एक दूसरा व्यक्ति बोला—रोटी-पानी की तकलीफ है, और लड़का भी सयाना हो गया है। तुम लोगों में आठ-आठ दस-

दस बरस के लड़कों का ब्याह होता है—रामचरन तो बीस बरस का होने आया।

चौधरी मानों निद्रा से जागकर बोला—हाँ भाई, यह तो तुमने ठीक कहा—ब्याह तो अब जरूर हो जाना चाहिए—मुझे इसका कुछ ध्यान ही नहीं रहा।

तीसरा व्यक्ति—ध्यान कहाँ से रहे, साल भर तक तो तुम्हारा चित्त ठिकाने नहीं रहा।

दूसरा—भइया ब्याह-काज तभी अच्छा लगता है, जब घर में कोई करने-धरनेवाली हो।

पहला—एही से तो कहत हन कि ननकू भाई पहले अपना ब्याह कर लें, तो सब काम ठीक बन जाय।

चौधरी एक दीर्घ निश्वास लेकर बोला—हमारा ब्याह तो अब चिता के साथ होगा।

तीसरा—अच्छा ब्याह न करो न सही, कौनौ का घर बैठाय लेओ। बिना मेहरिया के घर की शोभा नहीं बनत।

चौधरी—रामचरन का ब्याह हो जायगा, तो घर की शोभा हो जायगी।

चौथा—तो फिर झटपट कर डालो।

चौधरी—अब आज ध्यान आया है, अब हो जायगा।

तीसरा—हमरे मसाने (ननसाल) माँ एक लड़की है—कोई पन्द्रह-सोला साल की। देखै-सुनै माँ नीक है। घरौ अच्छा है। दस बारह बीघा की खेती होत है, गइयाँ-भैंसी हैं—तुम कहो तो बातचीत लगाई।

चौधरी—हाँ हाँ जरूर लगाओ। अब आज से मुझे भी रामचरन के ब्याह की फिकर हो गई।

पहला—हमार राय तो यहै हती कि ननकू भाई पहले अपना ब्याह करें।

चौधरी—अरे क्या बेर-बेर वही बात कहते हो। मैं ब्याह करूँ? इस उमर में ब्याह करूँ, तो लोग क्या कहेंगे। और फिर मुझे चौधराइन-सी औरत मिलेगी कहाँ।

चौथा—औरत तो अव्वल नंबर की थी। इतने दिन हो गए—हमने कभी उसका मुँह नहीं देखा। जब बाहर निकलती, तो मुँह ढाँक कर।

तीसरा—और भइया दयावान भी बड़ी हती—देखो उसका पीठ पीछा है—पर बात जित्ती होगी, उतनी ही कहेंगे। कभी कोई चीज मँगाई—कभी-नाहीं नहीं की—हुई तो जरूर दे दी।

पहला—मेहनतिन कुछ कम हती? घर का सब काम अकेले करत रहै।

चौधरी—एक दीर्घ निश्वास छोड़कर बोला—दो गइयों और दो भैंसों का दूध अकेले मथती थी—आदमी न होय, तो चारा-पानी भी अकेले दे देती थी। हम मरद होके उसके बराबर मेहनत नहीं कर सकते थे।

चौथा—यह बात तो सच्ची है, वैसी औरत मिलना कठिन है।

तीसरा—धर्मात्मा बड़ी हती।

दूसरा—एक दफे हमारा लड़का बीमार हुआ—भइया मैं तुमसे क्या कहूँ—उसने ऐसी सेवा की कि जैसे उसी का लड़का हो। ऐसी धर्मात्मा औरत होना कठिन है।

चौधरी—हाथ इतना खुला हुआ था कि घर में दस-दस सेर पंद्रह पंद्रह सेर दही और मट्ठा होता था, पर किसी-किसी दिन हमें और लड़कों को चाखने तक को नहीं मिलता था—सब बाँट देती थी।

पहला—वह परमेसुर का अंस हती—तबही तो चली गई। परमेसुर जिहिका प्यार करत हैं ओहका जल्दी बुलाय लेत हैं।

चौधरी—सच बात कहते हो, हमारे बड़े भाग थे, जो हमारे घर आई, नहीं भला वह हमारे घर के लायक थी ?

तीसरा—तुम्हारे लायक नहीं हती तभी तो चली गई।

चौथा—उस जनम में उसने कोई पाप किए होंगे, इस वास्ते अहीरों में जनम लिया—नहीं वह इस लायक थी कि किसी राजा-महाराजा के घर जनम लेती।

चौधरी एक लंबी सांस लेकर बोला—यही बात है। एक बात हो तो कहूँ—उसकी सभी बातें अच्छी थीं। वही बातें याद कर करके तो कलेजे में हूक उठती है। तुम लोग कहते हो ब्याह कर लो। किससे ब्याह कर लूं ? उसके तो कोई पैरों की धूल भी नहीं।

इसी समय पर रामचरण भी आ गया। उसे देखते ही एक व्यक्ति बोला—आओ भइया रामचरन—आओ, अच्छे बखत पर आए।

रामचरन चुपचाप आकर उस आदमी के पास बैठ गया।

रामचरण एक सुन्दर युवक था। खूब पुष्ट तथा गठीला शरीर, खुलता हुआ रंग, खुले तथा स्वच्छ वायु-मंडल में रहने के चिन्ह-स्वरूप गालों पर लाली, नेत्र बड़े-बड़े और यथेष्ट काले थे। छोटे-छोटे बालों की काली मूछ ने उसके पुरुष-सौन्दर्य को पूर्णतया विकसित कर दिया था।

रामचरण ग्रामीण पुरुष-सौन्दर्य का एक अच्छा नमूना था।

अलाव में से उठती हुई अग्नि-शिखाओं के प्रकाश में चौधरी ने रामचरण पर दृष्टि डाली। पुत्र को देखकर चौधरी के उदासीन नेत्र प्रेम तथा गर्व से भर गए। वह कुछ क्षणों तक उसके मुख को स्थिर दृष्टि से ताकता रहा; इसके पश्चात् उसने कुछ इस प्रकार से अपनी दृष्टि दूसरी ओर फेरी मानों उसे भय हुआ कि कदाचित् उसकी दृष्टि से रामचरण को कुछ हानि पहुँचे।

रामचरण के पास बैठे हुए व्यक्ति ने रामचरण की पीठ पर हाथ रखके चौधरी से कहा—खैर, अब तुम इनका ब्याह करो धूमधाम से।

चौधरी—करने धरनेवाले सब तुम्हीं लोग हो, मैं तो इसकी महतारी के मरने से अपाहिज-सा हो गया हूँ। और धूमधाम काहे की? अब तो खाली एक रसम पूरी करना है—हाँ, आज इसकी माँ जीती होती तो...।

इतना कहते-कहते चौधरी का कंठ गद्‌गद् हो गया—वह अपने साफे के कोने से आँखें पोंछने लगा।

यह देखकर एक व्यक्ति कुछ बिगड़कर बोला—ननकू भइया, यौ तुम का मेहेरियनकी तना (तरह) करै लागत हौ मनई के मरे मेहेरिया रोवत है, मेहेरिया के मरे कहौं (कहीं) मनई नहीं रोवत हैं। मेहेरिया तो मरै (मरा ही) करत हैं।

एक दूसरा व्यक्ति गम्भीरतापूर्वक सिर हिला कर बोला—भइया, यह मोह बड़ा जबरदस्त होत है। आदमी एक चिड़िया पालता है, तो उसके मरे का रंज होता है—यह तो भला मेहेरिया हती।

रामचरण के पास बैठा हुआ व्यक्ति बोला—हमार मेहेरिया जब मरी रहै, तब हमैं तो रत्ती भर सोच न आ रहै।

एक अन्य व्यक्ति तुरन्त बोल उठा—तो वह तुम्हार मेहेरिया न रही होई।

इस पर सब लोग खिलखिलाकर हँस पड़े। चौधरी भी उदास भाव से किञ्चित मुस्करा दिया।

रामचरण से उसके पास बैठे हुए मनुष्य ने कहा—लेओ अब का चहते हौ—अब तो तुम्हारा बियाह भवा जात है।

पिता की उपस्थिति से उत्पन्न हुई शिष्टता के कारण रामचरण ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया—नीची दृष्टि करके केवल

किञ्चित् मुस्करा दिया।

(४)

रामचरण का विवाह हुए तीन मास व्यतीत हो गए। घर में पुत्र-वधू की उपस्थिति के कारण ननकू की उदासीनता क्रमशः कम होने लगी। पहले वह घर में केवल भोजन करने और सोने के लिये आता था—शेष दिन खेत में काम करने, गाय-भैंस चराने तथा इधर-उधर मित्रों के पास बैठने में बिता देता था। परन्तु अब वह दिन का कुछ अंश घर में बैठकर बिताने लगा। इसी प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुए।

एक दिन दस बजे के लगभग ननकू बाहर से आया और सीधा घर के भीतर चला गया। उस समय उसकी पुत्र-वधू घर के आंगण में बैठी स्नान कर रही थी। चौधरी की दृष्टि पुत्र-वधू के अर्द्ध नग्न शरीर पर पड़ी। उस मूर्तिमान् तरुणता को देखकर चौधरी कुछ क्षणों के लिये स्तम्भित रह गया। रामचरण की पत्नी सुखिया के अङ्ग-प्रत्यंग से यौवन फटा पड़ रहा था। चौधरी के नेत्रों को वह दृश्य बड़ा सुखकर प्रतीत हुआ। उसी समय सुखिया की दृष्टि भी चौधरी पर पड़ी—उसने चमककर अपना शरीर वस्त्र से ढांक लिया। ननकू तुरन्त दृष्टि नीची करके वहां से हट आया।

उसी दिन से पुत्र-वधू के प्रति ननकू का व्यवहार अत्यन्त नम्र तथा उदार हो गया। अब वह सुखिया की छोटी-से-छोटी इच्छा पूर्ण करने का पूरा ध्यान रखने लगा। पहले उसका अधिकाँश समय घर के बाहर व्यतीत होता था; परन्तु अब घर में व्यतीत होने लगा। उसकी यह दशा देखकर उसके शुभ-चिंतकों को प्रसन्नता हुई। उन्होंने सोचा—लड़के का व्याह हो गया, घर में बहू आई, अब ननकू को पुनः घर-गृहस्थी से अनुराग उत्पन्न हो चला। उसके दोनों पुत्रों ने भी पिता की इस

दशा परिवर्तन पर सन्तोष प्रगट किया।

एक दिन रामचरण ने किसी अपराध पर सुखिया के दो-चार तमाचे जड़ दिए। पुत्र के इस कार्य पर ननकू बहुत बिगड़ा। उसने आरक्त नेत्रों से रामचरण की ओर देख कर कहा—काहे, तूने दुलहिन को काहे मारा।

रामचरण नम्रता-पूर्वक बोला—काम खराब करेगी तो मारी ही जायगी।

ननकू—काम खराब किया तो क्या हुआ—अभी ना समझ है, जब उसे ज्ञान हो जायगा, तो कभी काम खराब न करेगी। औरत पर कोई हाथ उठाता है? आज से पीछे जो कभी हाथ चलाया, तो ठीक न होगा। समझा?

रामचरण ने इसका कोई उत्तर न दिया—चुपचाप बाहर चला गया।

रामचरण के चले जाने पर ननकू ने पुकारा—दुलहिन! ओ! दुलहिन—यहाँ आओ।

सुखिया घूंघट में मुख छिपाए लज्जा से सिमटती हुई, ननकू के सामने आकर खड़ी हो गई।

ननकू ने एक बेर उसे सिर से पाँव तक देखा—तत्पश्चात् कहा काहे उसने तुझे काहे मारा?

सुखिया ने कुछ उत्तर न दिया—वह चुपचाप सिर झुकाये पैर के अँगूठे से भूमि खोदने लगी।

ननकू कुछ क्षणों तक प्रतीक्षा करने के उपरांत बोला—काहे बोलती काहे नहीं? ऐसी शरम किस काम की।

सुखिया उसी प्रकार निरुत्तर रही।

ननकू मृदु-स्वर में बोला—ऐसी सरम करोगी तो कैसे काम चलेगा? घर में और कोई है नहीं, अकेली तुम्हीं हो, जो तुम्हीं ऐसा परदा और ऐसी सरम करोगी तो ठीक न होगा, मैं यह

सब ढोंग समझता हूँ। बोल, उसने तुझे क्यों मारा ?

इस बार सुखिया ने कंपित स्वर में कहा—रोटी बनै माँ देर होइ गई।

ननकू—रोटी बनने में देर हो गई तो क्या हुआ—नालायक कहीं का। ऐसे सरऊ बड़े कहूँ के लाट साहब हैं। अबकी मारे तो मुझे बताना, मैं ससुरे को ठीक कर दूंगा।

सुखिया श्वसुर की कृपा तथा दयालुता पर मन ही मन प्रसन्न होती हुई ननकू के सामने से चली गई।

उस दिन से सुखिया श्वसुर से बोलने-चालने लगी। रामचरण को यह बात मालूम हुई—परंतु उसने इस पर कोई आपत्ति नहीं की। उसने सोचा—एक औरत है—बिना बोलेचाले गुजारा होना कठिन है।

क्रमशः यह दशा हो गई कि जहाँ पहले सुखिया ननकू के सामने लम्बा घूंघट निकाल कर आती थी, वहीं अब इतना छोटा घूंघट निकालकर आने लगी कि उससे उसका आधा मुख दिखाई पड़ता रहता था।

\+ \+ \+

रात के नौ बज चुके थे। ननकू के दोनों पुत्र खेतों में सिंचाई कर रहे थे—ननकू अकेला घर में था। भोजन करने के पश्चात् वह अपनी चारपाई पर लेटा हुक्का पी रहा था। वह हुक्का पीता जाता था और साथ ही किसी महत्वपूर्ण विषय पर विचार कर रहा था। हुक्का पीते-पीते वह कुछ सोचकर उठने को हुआ—परन्तु फिर अपनी चारपाई पर बैठ गया और पुनः हुक्का पीने लगा। थोड़ी देर में वह लेट गया और कुछ क्षणों तक चुपचाप लेटा रहा। अब उसने करवट ली और आँखें बंद करके सोने की चेष्टा करने लगा। परन्तु कुछ ही क्षणों में उसने पुनः आँखें खोल दीं और चित लेट गया। कुछ देर तक पड़ा

सोचता रहा। हठात् अपने आप ही बोल उठा—"ऊहूँ यह काम खराब है।" यह कहकर वह फिर करवट से लेट गया और उसने आँखें बंद कर लीं। इसी प्रकार कुछ देर तक वह करवटें बदलता रहा। उसने सोने की बहुत चेष्टा की, परन्तु उसे नींद न आई। हठात् वह उठकर बैठ गया और अपने आप बोला—"जो होगा देखा जायगा। भगवान् की ऐसी ही इच्छा है।"

यह बड़बड़ाकर उसने पुकारा—दुलहिन, तनिक एकगिलास पानी दे जाओ।

घर के दूसरी ओर बरतन खटकने का शब्द हुआ। बरतनों के खटकने का शब्द सुनकर ननकू ने एक जोर की अँगड़ाई ली। एक क्षण के पश्चात् सुखिया गिलास लिये श्वसुर के सामने आ खड़ी हुई और उसने गिलास श्वसुर की ओर बढ़ाया। इधर ननकू ने गिलास पकड़ने के लिए अपना हाथ बढ़ाया; परन्तु वह हाथ गिलास पर न जाकर सुखिया की कलाई पर पहुंचा—ननकू ने सुखिया की कलाई पकड़ ली। सुखिया ने पहले तो यह समझा कि अंधेरा के कारण श्वसुर गिलास को नहीं देख सके इस लिए हाथ कलाई पर पड़ गया। परन्तु जब ननकू ने सुखिया की कलाई दृढ़तापूर्वक पकड़कर उसे अपनी ओर घसीटने का प्रयत्न किया—तब सुखिया श्वसुर का अभिप्राय समझी। उसके हाथ से गिलास छूट पड़ा। यद्यपि सुखिया श्वसुर के प्रेम पूर्ण व्यवहारसे परम संतुष्ट थी-संतुष्ट ही नहीं कृतज्ञ थी, यद्यपि वह श्वसुरकी सेवा करने के लिये सदैव हर्षपूर्वक तत्पर रहती थी—यद्यपि श्वसुर को प्रसन्न करना वह अपना कर्त्तव्य समझती थी, तथापि वह ऐसे व्यवहार के लिए तैयार न थी। "हैं! हैं! यौ का करत हौ" कहकर उसने एक जोर का झटका दिया—ननकू के हाथ से उसकी कलाई छूट गई। सुखिया तेजी के साथ भागकर एक कोठरी में घुस गई और इस भय से कि कहीं श्वसुर

महोदय वहाँ भी न पहुंचे उसने भीतर से कोठरी के किवाड़े बंद कर लिये।

इधर ननकू कुछ क्षणों तक मूर्तिवत् बैठा रहा। असफलता के धक्के ने उसके अंतःकरण को जागृत कर दिया। वह सोचने लगा—"यह मैंने क्या किया? जिसे संसार बेटी के समान समझता है उस पर मैंने पाप-दृष्टि डाली! क्या इसीलिए मैंने व्रत किया था कि मैं अब किसी स्त्री पर बुरी दृष्टि न डालूंगा। ओह मुझे यह क्या हो गया था। उफ़! हाय रामचरन की माँ तुम कहाँ हो? तुम्हारे वियोग ने आज मुझे इतना पतित बना दिया। तुम्हारे होते हुए मैंने कभी किसी स्त्री पर बुरी निगाह नहीं डाली। परंतु तुम्हारे न रहने पर तुम्हारे सामने वादा करके भी, अपने मन में व्रत करके भी, मैंने तुम्हारे बेटे की बहू पर... ......!" इतना सोचके ननकू फूट-फूटकर रोने लगा। सहसा उसके अश्रु पूर्ण नेत्रों के सामने अंधकार में चौधराइन की मूर्ति दिखाई पड़ी। ननकू को ऐसा मालूम हुआ मानो उसकी चौध-राइन उसकी ओर देख रही है। मूर्ति की दृष्टि में उसके प्रति प्रेम तथा दया है, ओठों पर मृदु-मुस्कान है। ननकू चौधरी रोना भूल गया, वह हाथ फैलाकर चारपाई से उठा और "रामचरन की माँ" कहता हुआ आगे बढ़ा। परन्तु उसके उठते ही, उसे यह प्रतीत हुआ कि मूर्ति ने अपना सिर इस प्रकार हिलाया मानो वह ननकू को अपने पास आने से मना कर रही है। ननकू आगे बढ़ा—परन्तु उसी क्षण वह मूर्ति अंधकार में विलीन हो गई। ननकू पीछे हटकर अपनी चारपाई पर गिर पड़ा।

इसके पश्चात् वह कुछ देर तक बैठा ध्यान मग्न रहा। सहसा उसने सिरहाने से अपनी मिर्जई उठाकर पहनी—सिर पर साफ़ा बाँधा और जिस कोठरी में सुखिया घुस गई थी, सके द्वार पर जाकर बोला—'दुलहिन—आज तुमने अपने को

नहीं, मुझे एक घोर पाप से बचाया है। इसके लिये मैं जब तक जीता रहूँगा तुम्हारे सुख-सौभाग्य के लिए भगवान् से प्रार्थना करता रहूँगा। अब मैं अपना पापी मुँह तुम्हें नहीं दिखाऊँगा। मैं तुमसे केवल एक भीख माँगता हूँ और वह यह कि इस बात की चर्चा किसी से मत करना—मेरे नाम को इस कलंक से बचाना बस, यही भीख तुमसे माँगता हूँ।" ननकू इतना कहकर तथा उत्तर पाने की प्रतीक्षा न कर के झटपट घर के बाहर आया और रात्रि के निबिड़ अंधकार में विलीन हो गया।

\+ + +

उस दिन से फिर ननकू चौधरी का पता न लगा कि वह कहाँ गया। उसके दोनों पुत्र तथा गाँव के लोग उसके इस प्रकार गायब हो जाने पर आश्चर्य करते हैं। उनकी समझ में आज तक यह बात नहीं आई कि आखिर ननकू चौधरी के इस प्रकार लापता हो जाने का कारण क्या है। इसका रहस्य संसार में केवल एक प्राणी जानता है—वह प्राणी सुखिया है। आज भी जब कभी सुखिया एकान्त में बैठती है, तो अपने श्वसुर के अन्तिम शब्द स्मरण कर के एक ठण्डी साँस खींचती है और आँखों में आँसू भर लाती है।

एप्रिल फूल

(१)

पंडित श्यामनाथ ने मुस्कराकर अपने मित्रों से कहा—वाह ! इस धोखे में न रहना, मैं इतना उल्लू नहीं हूं जितना आप लोग समझते हैं।

गंगाविष्णु नामक उनके एक मित्र ने मुस्कराकर कहा—खैर जितना हम समझते हैं उतने न सही; पर कुछ तो अवश्य हो, क्यों न ?

श्यामनाथ—इसका क्या तात्पर्य्य ?

दूसरा मित्र राधेलाल बोल उठा—इसका तात्पर्य्य आपको शीघ्र मालूम हो जायगा, घबराइये नहीं।

श्यामनाथ—मालूम क्या हो जायगा ? मैं ज़रा टेढ़ा आदमी हूँ, मेरे साथ ज़रा सँभलकर बातचीत कीजिये-समझे ?

गंगाविष्णु—जी हाँ, हम अच्छी तरह समझते हैं कि आप बड़े टेढ़े आदमी हैं। कमर कुछ झुकी हुई है, नाक भी टेढ़ी है ये

सब बातें आपके टेढ़े होने का मूर्तिमान प्रमाण है।

तीसरा मित्र रामचन्द्र बोला—आप टेढ़े हों या तिरछे, इससे हम लोगों को कोई मतलब नहीं, हम लोग जो चाहते हैं वही होगा।

श्यामनाथ—होगा कैसे, कोई दिल्लगीबाजी है।

गंगाविष्णु—खैर देखा जायगा। अच्छा अब यह बताओ कि कुछ पान,वान खिलाओगे या नहीं?

श्यामनाथ—हाँ हाँ, पान खाओ, चाहे जो खाओ।

यह कहकर उन्होंने नौकर को आवाज दी, परन्तु नौकर के न बोलने पर, 'न जाने कमबख्त कहां मर गया!' कहते हुए स्वयम् ही घर के भीतर गये। श्यामनाथ के जाते ही इधर मित्र मण्डली में खिचड़ी पकने लगी।

गंगाविष्णु—यार, मामला जरा मुश्किल है, चौकन्ना बहुत है।

रामचन्द्र—चाहे जितना चौकन्ना हो, पर बन जायगा।

राधेलाल—देखो, वैसे तो गोल आदमी है।

रामचन्द्र—अजी, पूरा बौड़म है।

गंगाविष्णु—मगर किस तरह काम होना चाहिये, यह तो सोचो।

राधेलाल—यह तो मुख्य बात है।

इतने ही में पं० श्यामनाथ एक तश्तरी में पान लिए हुए आये। मित्रों के सामने तश्तरी रखकर बोले—लीजिये खाइये।

गंगाविष्णु ने पान उठाते हुए श्यामनाथ से पूछा—क्यों यार तुम्हारी जोरू की शादी कब हुई थी?

श्यामनाथ—बहुत दिन हो गये।

राधेलाल—पहले आपकी शादी हुई थी या आपकी जोरू की।

श्यामनाथ कुछ घबराकर बोले—पहले तो शायद हमारी ही हुई थी।

यद्यपि यह बात हँसने की थी, पर किसी के मुख पर ज़रा भी मुस्कराहट न आई। राधेलाल ने पूछा—भई एक बात पूछें, ठीक ठीक बताना।

श्यामनाथ—हाँ हाँ ठीक ही बताऊंगा। आप तो जानते ही हैं कि मैं झूठ बहुत कम बोलता हूँ।

राधेलाल—आपकी उम्र अधिक है या आपकी पत्नी की।

श्यामनाथ—हमारी पत्नी हम से केवल दो वर्ष बड़ी है।

गंगाविष्णु—तो पहलौठी की वही है, आप उनके बाद तवल्लुद हुए।

श्यामनाथ—तवल्लुद के क्या अर्थ ? पैदा हुए कहो।

राधेलाल—यह एक ही बात है, दोनों के अर्थ एक ही हैं।

श्यामनाथ—हाँ हम उनसे दो वर्ष बाद पैदा हुए थे।

गंगाविष्णु—आपकी और उनकी सूरत भी बहुत कुछ मिलती होगी।

श्यामनाथ—नहीं यार, वह हमसे सुन्दर हैं।

राधेलाल—देखिये, भाग्य की बात है, हालाँ कि सुन्दर आपको होना चाहिये था।

श्यामनाथ—तो मैं भी कुछ ऐसा बुरा नहीं हूँ, नाक-नक़्शे से दुरुस्त हूं।

गंगाविष्णु—कौन आप ? हज़ारों में एक हैं।

श्यामनाथ—यार जब मैं आयना देखता हूं तब कभी कभी मुझे भी शक हो जाता है कि मैं सुन्दर हूँ।

रामचन्द्र—आपका शक बिल्कुल ठीक है।

राधेलाल—मगर हम लोगों को एक अफ़सोस रहा।

श्यामनाथ—वह क्या ?

राधेलाल—आपने आज तक अपनी जोरू न दिखाई। जान पड़ता है वह सुन्दर नहीं है! तभी तुम नहीं दिखाते।

श्यामनाथ—अरे, यार वह बड़ी सुन्दर है। तुम्हें विश्वास ही नहीं आता, मगर खैर-यह कौन बात है, आप जब चाहें देख लें-यह तो घर की बात है।

गंगाबिष्णु—तो फिर किसी दिन दिखाओ।

श्यामनाथ—जब इच्छा हो देख लो। मगर मुंह दिखाई देनी पड़ेगी।

राधेलाल—मुंह की दिखाई चाहे जो ले लेना।

श्यामनाथ—मैं क्या करूंगा, उन्हीं को देना।

रामचन्द्र—खैर हमें तो मुंह-दिखाई देना ही है, चाहे आप ले लीजिए चाहे वह ले लें।

राधेलाल—तो फिर एक दिन नियुक्त कर दो।

श्यामनाथ—अभी नहीं पहले उनसे भी तो सलाह ले लूं।

रामचन्द्र—क्यों उनसे सलाह की क्या आवश्यकता है।

श्यामनाथ—मैं उनकी सलाह लिये बिना कोई काम नहीं करता।

राधेलाल—तो भला वह काहे को राजी होंगी।

श्यामनाथ—राजी क्यों न होंगी, इसमें हर्ज ही क्या है।

रामचन्द्र—खैर, यदि आपको विश्वास हो कि वह राजी हो जायँगी तो कोई हर्ज नहीं, सलाह ले लीजिए।

गंगाबिष्णु—हम लोगों को उत्तर कब तक मिल जायगा?

श्यामनाथ—कल या परसों।

राधेलाल अच्छी बात है। तो पक्की बात है न?

श्यामनाथ—बिल्कुल पक्की।

❀ ❀ ❀

(२)

पं० श्यामनाथ नवयुवक हैं। वैसे पढ़े तो एफ़० ए० तक हैं, परन्तु ईश्वर ने बुद्धि वाजिबी ही वाजिबी दी है। वह अपने को बड़ा बुद्धिमान और चालाक समझते हैं। मित्र मण्डली में वह खूब बनाये जाते हैं, किन्तु उनको इसकी कुछ परवाह नहीं। वह समझते हैं कि उनके मित्र बेवकूफ़ हैं—वे ऐसे ही निरर्थक हँसा करते हैं। उन्हें बहुधा इस बात पर आश्चर्य होता है कि उनके मित्रगण उन बातों पर भी हँसा करते हैं जिन पर उनकी (श्यामनाथ की) समझ में हँसने का कोई कारण नहीं!

उसी दिन रात को एकान्त में पं० श्यामनाथ अपनी पत्नी से बोले—हमारे मित्र तुम्हें देखना चाहते हैं।

पत्नी ने भौंहें चढ़ाकर कहा—यह क्या? इसका क्या अर्थ?

श्यामनाथ—इसका अर्थ यह है कि वे लोग तुम्हें देखना चाहते हैं।

पत्नी—क्यों देखना चाहते हैं?

श्यामनाथ—वैसे ही, कोई खास मतलब नहीं, केवल दिल्लगी के तौर पर।

पत्नी—वाह अच्छी दिल्लगी है, मुझे ऐसी दिल्लगी पसन्द नहीं।

श्यामनाथ—तो इसमें हर्ज ही क्या है।

पत्नी—तुम तो पूरे······अब क्या कहूँ!

श्यामनाथ—वे लोग समझते हैं कि तुम सुन्दर नहीं हो। उन्हें तुम्हारे सुन्दर होने में कुछ सन्देह है इसलिए वे देखना चाहते हैं।

पत्नी—सन्देह है तो हुआ करे।

श्यामनाथ—मेरी हार्दिक इच्छा है कि उनका यह सन्देह दूर कर दूँ।

पत्नी—आवश्यकता क्या है ?

श्यामनाथ—वे तुम्हें बदसूरत समझते हैं।

पत्नी—तो समझने दो।

श्यामनाथ—मैं यह बात सहन नहीं कर सकता कि कोई तुम्हें बदसूरत समझे।

पत्नी—तुम तो पागलपने की बातें करते हो।

श्यामनाथ—यही तो तुम समझी नहीं, आज कल जोरुओं को दिखाना फैशन में दाखिल है।

पत्नी—होगा फैशन-वैशन, मुझे ऐसा फैशन पसन्द नहीं।

श्यामनाथ—यह मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि वे तुम्हें हाथ न लगाने पावेंगे, केवल दूर से देख लेंगे।

पत्नी—तुम न जाने क्या बक रहे हो; न जाने तुम्हें कब समझ आवेगी।

श्यामनाथ कुछ बिगड़ कर बोले—इसके क्या अर्थ ? क्या मैं फिलहाल नासमझ हूँ। मैं दुनियां को चराये घूमता हूँ, तुम कहती हो कब समझ आवेगी ? वाह ! अन्धे के आगे रोवे अपने दीदे खोवे। बड़ों बड़ों को तो मैं रास्ता बताता हूँ।

पत्नी—ये सब समझ ही की बातें तो कर रहे हो।

श्यामनाथ—और नहीं तो क्या ना-समझी की बातें हैं।

पत्नी—जोरू को दूसरों को दिखाना समझ की बात ही तो है न।

श्यामनाथ—इसमें कोई हर्ज नहीं, यह सब आज कल फैशन में दाखिल है—टुम काला औरट इशको समजने नहीं शकता—हम शाहब लोग शमजटा है। हम जिश माफिक बोलेगा, उस माफिक तुम को करना होगा।

पत्नी—मेरे सामने यह गिटपिट तो करो नहीं।

श्यामनाथ—(हाथ जोड़कर) बस एक बार अपना मुखड़ा

हमारे यारों को दिखा दो—वह भी क्या याद करेंगे। बदमाश समझते हैं कि तुम सुन्दर नहीं हो। क़सम है तुम्हारे सिरकी, देखकर आंख झपक जायँगी।

पत्नी—वाह मेरा सिर क्या कद्दू समझ रक्खा है—जब देखो मेरे ही सिर की कसम खाने लगते हैं।

श्यामनाथ—यह सब मुहब्बत की बातें हैं।

पत्नी—मुझे ये बातें अच्छी नहीं लगतीं।

श्यामनाथ—हम अपने मित्रों को वचन दे चुके हैं कि तुम्हें अपनी प्राणप्यारी का झमकड़ा अवश्य दिखायेंगे, फिर भला अपने वचन से कैसे फिरें। प्राण जांय पर वचन न जाई।

पत्नी—तुमसे किसने यह बात कही थी?

श्यामनाथ—वैसे कहते तो सभी भले आदमी हैं; पर विशेष करके राधेलाल से बात चीत हुई थी। उसी ने उलाहना दिया था।

पत्नी—हूँ-तो वही देखेंगे।

श्यामनाथ—वह तो देखेगाही-उसकी दुम में बँधे हुए अन्य दो चार मित्र भी देख लेंगे।

पत्नी—मुझे तो ये बातें पसन्द नहीं, पर तुम कहते हो तो तुम्हारी बात माननी ही पड़ेगी।

श्यामनाथ—वाह री मेरी आज्ञाकारिणी जोरू, बस, अब क्या है-अब सब साले झेंप जायँगे। हाँ पर यह तो बताओ कि दिन कौनसा रक्खा जाय।

पत्नी—यह तो तुम सोच लो, मैं क्या बताऊँ।

श्यामनाथ—नहीं दिन भी तुम्हीं नियुक्त करो। तभी आनन्द है।

पत्नी—अच्छा कल सोचकर बताऊँगी।

श्यामनाथ—तो दिखाने की बात तो पक्की है, अपने मित्रों से विशेष कर राधेलाल से कह दूं।

पत्नी—हाँ कह दो।

श्यामनाथ—बस, अब तुम मुझे बड़ी प्यारी लग रही हो। देखो उस दिन खूब अच्छे कपड़े पहनना। वह बनारसी साड़ी जो दो सौ की आई है उसे अवश्य पहनना।

पत्नी—इससे तुम्हें कोई मतलब नहीं, मैं जो चाहे सो पहनूँ।

श्यामनाथ—अच्छी बात है, जो तुम्हारी इच्छा हो पहनना। तुम चाहे जो पहनो-ओढ़ो सदैव सुन्दर ही लगोगी।

❀ ❀ ❀

(३)

राधेलाल के मकान पर एक कमरे में रामचन्द्र, गङ्गाविष्णु तथा राधेलाल में बात चीत हो रही थी। रामचन्द्र कह रहे थे:—वह तो तैयार हो गया मगर उसकी पत्नी कभी राज़ी न होगी।

राधेलाल बोल उठे—यही मेरा ख़याल है।

गङ्गाविष्णु—और जो वह भी अपने पति ही की तरह बुद्धिमान हुई तो शायद राज़ी भी हो जायँ।

रामचन्द्र—यार मज़ा तो तब आवे जब वह भी राज़ी हो जावें और दिन तय हो जावे।

गङ्गाविष्णु—ऐसा हो तो मेरी सलाह तो यह है कि पहली अप्रैल रक्खी जावे।

राधेलाल—पहली अप्रैल रखने से कहीं वह समझ न जावे कि बेवकूफ़ बनाते हैं।

रामचन्द्र—कभी न समझेगा, पूरा चै, ग़ैन, दाल है।

राधेलाल—चाहे जितना बेवकूफ़ हो, पर पहली अप्रैल का नाम लेते ही उसे ख़याल आ जायगा।

गङ्गाविष्णु—देखा जायगा, ख़याल आ जायगा तो हम लोग बात बना लेंगे।

रामचन्द्र—तो तुमने क्या विचार किया है।

गङ्गाविष्णु—यदि वह अपनी पत्नी को दिखाने के लिए पहली अप्रैल रक्खे तो बस यह करेंगे कि सब लोग उसके घर चलेंगे और ठीक उस समय जब कि वह अपनी बीबी साहबा को तैयार कर के हमें बुलाने आवे तो, सब लोग कह देंगे—'एप्रिल फूल ! जाओ हम लोग नहीं देखते, क्यों है न ठीक ?

राधेलाल—बात तो बड़ी अच्छी है ; पर कहीं बिगड़ न उठे।

गंगाविष्णु—बिगड़ेगा तो हम लोगों का क्या बना लेगा ?

राधेलाल—नहीं, आखिर अपना मित्र है, उसके कारण हम लोगों का मनोरंजन होता रहता है। कोई काम ऐसा न करना चाहिये जिससे उसका हृदय दुखे।

गंगाविष्णु—आप भी चोंचपने की बातें करते हैं–ऐसा कभी नहीं हो सकता। वह कभी बुरा न मानेगा।

राधेलाल—खैर भाई तुम जानो, मेरे जी में जो बात आई मैंने कह दी।

उसी समय पं० श्यामनाथ आ पहुंचे। सब को एकत्र देखते ही बोले--भाई वाह ! यह बड़ा अच्छा हुआ, सब लोग एक ही जगह मिल गये।

राधेलाल—क्यों क्यों ? क्या बात है।

श्यामनाथ—सब फ़तह है। हमारी बीबी साहबा राजी हो गईं।

गंगाविष्णु—बड़ी समझदार स्त्री हैं।

रामचन्द्र—हम लोग तो समझते थे कि आप ही अक्लमन्द हैं, परन्तु आज मालूम हुआ कि आपकी अर्द्धाङ्गिनी भी बड़ी बुद्धिमान हैं।

श्यामनाथ—अरे यार वह बड़ी समझदार हैं। पहले तो कुछ लाल-पीली पड़ीं, परन्तु अन्त में राजी हो गईं।

राधेलाल—तो फिर किस दिन ?

श्यामनाथ—दिन यदि आप लोग बतादें तो अच्छा है, उन्हें क्या वह तो हर समय तैयार हैं।

रामचन्द्र—चाहे जो दिन रखलो, एक ही बात है।

गङ्गाविष्णु—परसों कौन दिन है ?

राधेलाल—परसों तो वृहस्पति है।

गङ्गाविष्णु—तो बस परसों ही ठीक है। क्यों न ?

रामचन्द्र—हाँ और क्या ? क्यों भाई श्यामनाथ परसों आपको कुछ असुविधा तो न होगी।

श्यामनाथ—मुझे कोई असुविधा नहीं, आप लोग अपनी सुविधा असुविधा देख लीजिए।

राधेलाल—तो बस परसों ही ठीक है।

रामचन्द्र—बस यही तय रहा।

गंगाविष्णु—तो अब हम इस बात का विश्वास रक्खें न, ऐसा न हो कि आप हम लोगों को बेवकूफ बनावें।

श्यामनाथ—ऐसी बात है भला—मैं ऐसा आदमी नहीं हूँ जो किसी को बेवकूफ बनाऊं।

राधेलाल—आपको ईश्वर ने ऐसा हृदय दिया है कि आप किसी को बेवकूफ बना ही नहीं सकते।

श्यामनाथ—वाक़ई, यही बात है। मेरी आदत ही नहीं जो किसी को बनाऊँ।

राधेलाल मेरा तो खयाल है कि आप चाहें स्वयम् उल्लू बन जाँय, परन्तु दूसरे को बनाना कभी पसन्द नहीं करते, क्यों न ?

श्यामनाथ—नहीं, यह बात तो नहीं है, न मैं खुद बनूँ और न किसी को बनाऊँ। हाँ यह तो बताइये कि मुँह दिखाई के लिए क्या-क्या लाइयेगा ?

राधेलाल—इससे आप को कोई मतलब नहीं। यह हम

लोगों का काम है। हमारी जो इच्छा होगी लावेंगे।

श्यामनाथ—आखिर कुछ हमें भी तो मालूम हो,

रामचन्द्र—आपको उसी समय मालूम हो जावेगा।

श्यामनाथ—अच्छा न बताओ।

रामचन्द्र—हाँ दिन तो तय हो गया, परन्तु समय तो तयही नहीं हुआ।

गंगाविष्णु—यह आपने अच्छी सोची, यह बात हम लोग भूले ही जा रहे थे।

श्यामनाथ—मेरी समझ में तो दोपहर का समय ही ठीक है।

राधेलाल—दोपहर को ?

श्यामनाथ—और क्या ?

श्यामनाथ—मगर परसों दोपहर में कैसे सम्भव हो सकता है ? आप लोग सब उस समय अपने अपने काम में होंगे।

राधेलाल—इसकी चिन्ता आप मत कीजिए, हम लोग एक दिन की छुट्टी ले लेंगे।

श्यामनाथ—छुट्टी ले लोगे ?

गंगाविष्णु—इससे आपको क्या बहस-हम चाहे जो करें।

श्यामनाथ—अरे भई, तो अपने काम का हर्ज क्यों करो ? शाम को चार बजे क्यों न रक्खो। अपने अपने आफ़िस से लौटते हुए सीधे मेरी तरफ़ चले आना।

गंगाविष्णु—यह भी ठीक है कहता तो पते की है।

राधेलाल—मगर उस्ताद, आफ़िस से भूके-प्यासे लौटेंगे, कुछ जलपान भी कराना पड़ेगा।

श्यामनाथ—अरे यह कितनी बात है-चाहे जो खाओ। जलपान क्या, कहो पूरा भोजन तैयार करा रक्खूँ।

राधेलाल—वाह नेकी और पूछ पूछ ! इससे बढ़के और कौन सी बात है।

श्यामनाथ—अच्छी बात है तो भोजन भी हमारे ही यहाँ रहा।

रामचन्द्र—यार यह समय निश्चित करने की बात अच्छी निकली, इससे लाभ हुआ।

श्यामनाथ—अच्छा तो अब मैं चलता हूँ, आप लोग परसों की बात याद रखियेगा, भूल न जाइयेगा।

गंगाविष्णु—भूलने की एक ही कही। ऐसी बात भूल सकते हैं-एक तो आपकी अर्द्धाङ्गिनी के दर्शन दूसरे भोजन। दो दो लाभ की बातें कौन भूल सकता है।

रामचन्द्र—और आप भी याद रखियेगा। ऐसा न हो कि उस समय कहदो कि–मुझे तो याद नहीं रहा, क्षमा कीजिये।

श्यामनाथ—अधिक से अधिक भोजन बनवाना भूल जाऊँगा रही हमारी बीबी के दर्शनों की बात सो उसमें भूलने की कोई बात ही नहीं, वह तो हर समय हो सकती है।

राधेलाल—आपकी ऐसी-तैसी! भोजन की बात आप भूल गये तो हम लोग आपको कच्चा ही चबा जायंगे। भूके शरीफ़ आदमी से ज्यादा ख़तरनाक कोई नहीं होता, इतना याद रखियेगा।

श्यामनाथ—अजी नहीं, आप भी क्या बातें करते हैं, मैं भला भूल सकता हूँ? और मैं चाहे भूल भी जाऊँ मगर मेरी पत्नी कैसे भूल सकती है।

गंगाविष्णु—ठीक है, आख़िर वह भी तो हम लोगों को छवि दिखाने के लिए उत्सुक होगी।

श्यामनाथ—हाँ क्यों नहीं, मुझ से पूछती थी कि कौन से कपड़े पहनूँ।

राधेलाल हँसी रोक कर बोले—आपने क्या कहा?

श्यामनाथ—मैंने कहा, चाहे जैसे कपड़े पहन लो।

रामचन्द्र—बस तुम यहीं पर चूक गये, आपको कहना चाहिये था कि ऐसे कपड़े पहनो; जिसमें अत्यन्त सुन्दर दिखाई पड़ो।

श्यामनाथ—अरे भाई, वह चाहे जैसे कपड़े पहनें सुन्दर ही मालूम होंगी।

रामचन्द्र—यह ईश्वरीय बात है।

गंगाविष्णु—और क्या, ऐसी बात बहुत कम औरतों में होती है।

श्यामनाथ—उनकी ऐसी सुन्दर औरत मैंने तो कोई देखी नहीं बस एक मनिहारिन है वह तो उनसे कुछ कुछ टक्कर लेती है, वह भी केवल नाक-नक़्शे में, रँग में नहीं। हमारी बीबी का रङ्ग मनिहारिन से अधिक साफ़ है।

राधेलाल मुंह फेर कर मुस्कराये, गंगाविष्णु ने बड़ी कठिनता से हँसी रोकी, रामचन्द्र खाँसकर थूकने के बहाने बाहर चले गले और एकान्त में खूब हँसे। श्यामनाथ वृहस्पति के लिए पक्की-पोढ़ी करके विदा हुए।

उनके जाते ही तीनों मित्रों ने क़हक़हा लगाया। खूब हँस चुकने के पश्चात् रामचन्द्र बोले—ओफ़ओह! ऐसा काठ का उल्लू भी दूसरा न मिलेगा कहता है कि मनिहारिन से सूरत मिलती है। हद हो गई।

राधेलाल—वृहस्पति का नाम सुनकर सनका नहीं।

गङ्गाविष्णु—यह अच्छा हुआ कि तारीख़ का नाम नहीं लिया गया, वृहस्पति को पहिली अप्रैल है।

रामचन्द्र—हाँ तारीख़ सुनता तो शायद सनक जाता। उसे यह याद नहीं कि वृहस्पति को पहली अप्रैल है।

राधेलाल—भई मेरा तो विचार बदल रहा है।

रामचन्द्र—वह क्या?

राधेलाल—मेरी राय है कि उसकी जोरू अवश्य देखी जाय। बड़ी प्रशंसा करता है, जरा देखना भी तो चाहिए।

रामचन्द्र—यह फिजूल बात है, मैं ऐसी सलाह कदापि न दूंगा।

राधेलाल—हर्ज क्या है! बङ्गालियों में तथा कुछ अन्य जातियों में रस्म है कि मित्रों को पत्नी का मुँह दिखाते हैं!

गङ्गाविष्णु—हाँ रस्म तो है।

राधेलाल—ईश्वर न करे, हम लोगों की नीयत तो कुछ खराब है नहीं-फिर क्या हर्ज है?

रामचन्द्र—फिर एप्रिल फूल का मजा जाता रहेगा।

राधेलाल—अरे यार, वह रोज ही एप्रिल फूल बना रहता है, वह तो बारहमासी फूल है। उसे जब चाहो बना दो।

रामचन्द्र—हाँ यह तो ठीक है, उसे एप्रिल फूल बनाने में कोई अधिक आनन्द नहीं मिलेगा।

गङ्गाविष्णु—तो फिर यही तय रहा कि उसकी जोरू के दर्शन अवश्य किये जावें।

राधेलाल—तब तो यार मुंह दिखाई सचमुच देनी पड़ेगी।

रामचन्द्र—यह घाटे की बात है।

राधेलाल—नहीं तो, फोकट में ही उसकी जोरू देख लोगे।

रामचन्द्र—जो देखना चाहता हो उससे कहो, मेरी तो ऐसी इच्छा है नहीं।

गङ्गाविष्णु—अरे तो कौन बड़ी बात है—दो दो रुपये दे देना।

राधेलाल—दो दो रुपये नहीं, पाँच पाँच रुपये से कम कोई न दे।

रामचन्द्र—क्या यह अवश्यक है कि रुपये ही हों।

राधेलाल—नहीं, कोई चीज भी दे सकते हो।

रामचन्द्र—तो बस हम चीज दे देंगे।

गङ्गाविष्णु—कौन चीज़ ?

रामचन्द्र—इससे आप से क्या सरोकार, आप अपनी फ़िक्र कीजिए ।

गंगाविष्णु—ख़ैर देखा जायगा ।

राधेलाल—तो यही तय रहा न कि उसकी जोरू की मुँह दिखाई की जाय ।

गंगाविष्णु—यही तय रहा ।

❀ ❀ ❀

(४)

बृहस्पतिवार का दिन आ गया । पं० श्यामनाथ ने अपनी पत्नी से प्रातःकाल उठते ही कहा था—आज खूब अच्छी अच्छी चीज़ें बनाना, वे लोग भोजन भी यहीं करेंगे ।

पत्नी ने श्यामनाथ के कथनानुसार-भोजन का प्रबन्ध कर लिया था ।

तीन बजे के निकट पं० श्यामनाथ पत्नी से बोले—अब लोग आते ही होंगे-तुम तैयार रहो । आज तुम्हारी कुछ सहेलियाँ भी तो आई हुई हैं । ये कब जायँगी ?

पत्नी ने पूछा—क्यों मेरी सहेलियाँ तुम्हें क्यों खलती हैं ।

श्यामनाथ—सहेलियों के रहते हुए वे तुम्हें कैसे देख सकेंगे ? सहेलियों को मालूम न हो जायगा ।

पत्नी—मालूम ही हो जायगा, तो क्या होगा ।

श्यामनाथ—वे इधर उधर हँसी उड़ाती फिरेंगी ।

पत्नी—चलो तुम इस चिन्ता में न पड़ो, मैं सब ठीक कर लूंगी ।

श्यामनाथ—ख़ैर, तुम जानो तुम्हारा काम, मैंने तुम्हें चिता दिया ।

पत्नी—तुम निश्चिन्त रहो ।

साढ़े तीन बजे के लगभग सब लोग आ पहुंचे। श्यामनाथ ने पूछा-आज बड़ी जल्दी लौट आये ?

राधेलाल बोले—हाँ, आज हम लोगों ने जल्दी छुट्टी ले ली।

गंगाविष्णु—हम लोगों ने सोचा कि कहीं देर होने से आप टाल न जायं।

श्यामनाथ—आप लोग तो हैं अक़्ल के दुश्मन, टाले जाने के क्या अर्थ ? ऐसे मामले कहीं टला करते हैं।

रामचन्द्र—ख़ैर, अगर जल्दी चले आये तो कौन पाप किया।

श्यामनाथ—नहीं, इसमें पाप काहे का।

राधेलाल—तो बस अब शीघ्र प्रबन्ध कीजिए।

श्यामनाथ—अच्छा यह बताइये कि पहले आप लोग भोजन करेंगे।

रामचन्द्र—यह आपकी सुविधा पर है। चाहे पहले अपनी बीबी को दिखाइये, चाहे पहले भोजन खिलाइये।

श्यामनाथ—नहीं जैसा आप लोग चाहें।

रामचन्द्र—आप अपनी मालकिन से पूछ आइये। वह समझदार हैं, उचित बात बतावेंगी।

श्यामनाथ—अच्छी बात है।

श्यामनाथ घर के अन्दर पहुंचे और पत्नी से बोले—वे लोग आ गये हैं, कहो पहले भोजन खिलाओगी या मुँह दिखाओगी।

पत्नी—पहले मुँह दिखाई हो जाना चाहिये, बाद को भोजन। यही अच्छा रहेगा।

श्यामनाथ—अच्छी बात है। तो बस अब सज जाओ। मगर देखना ऐसा शृङ्गार हो कि उनकी आँखें झपक जायँ।

पत्नी—आँखें क्या, वह भी याद करेंगे कि किसी को देखा।

श्यामनाथ—बस, बस मैं यही चाहता हूँ।

पत्नी—अच्छा तो तुम जाओ, ठीक दस मिनट पश्चात्

सबको ले आना।

श्यामनाथ—कहाँ ?

पत्नी—मेरे कमरे में, मैं वहीं बैठूंगी।

श्यामनाथ—अच्छी बात है।

श्यामनाथ बाहर आकर बोले—पहले मुँह दिखाई होगी, बाद को भोजन।

राधेलाल—देखा आपने, कितनी सुन्दर बात बताई है।

श्यामनाथ—अरे यार वह बड़ी अक्लमन्द हैं।

गंगाविष्णु—मगर आप पूरे बछिया के ताऊ ही रहे।

श्यामनाथ—कौन मैं ? नहीं यह बात तो नहीं है—हम भी कुछ कम अक्लमन्द नहीं हैं। हाँ कभी कभी बेवकूफी कर बैठते हैं।

राधेलाल—तो फिर क्या देर दार है।

श्यामनाथ—दस मिनिट की देर है, जरा ठहर जाइये।

राधेलाल—क्यों, दस मिनिट की देर क्यों है।

श्यामनाथ—जरा कपड़े वपड़े पहन रही हैं।

गंगाविष्णु—ठीक है, तब तो ठहरना ही पड़ेगा।

दस मिनट व्यतीत होने पर पं० श्यामनाथ बोले—चलिये। सब लोग उठकर चले। आगे आगे पं० श्यामनाथ थे। जीने से चढ़कर सब लोग ऊपर पहुंचे। पं० श्यामनाथ ने एक कमरे का द्वार खोल कर कहा—'चलिये।'

राधेलाल—आप आगे चलिये न।

श्यामनाथ—'चलिये, चलिये, बहुत तकल्लुफ न कीजिए।' तीनों आदमी कमरे में प्रवृष्टि हुए। कमरे में चार स्त्रियाँ बैठी बातें कर रही थीं। जैसे ही ये लोग कमरे में प्रविष्ट हुए वैसे ही उन्होंने चौंककर इनकी ओर देखा। इन तीनों ने भी उनको देखा। स्त्रियों को देखते ही इन तीनों के मुँह से निकला अरे; उधर उन चार स्त्रियों में से तीन के मुँह से भी निकला-अरे !'

चौथी बोल उठी—'एप्रिल फूल।'

तीनों उल्टे पैरों लौट-पड़े और बिना कुछ कहे सुने शीघ्रता-पूर्वक जीने से उतर कर बाहर वाले कमरे में आ गये। इधर श्यामनाथ—'क्यों, क्यों!' कहते हुए उनकी ओर आश्चर्य से खड़े देखते रहे।

जब उनकी समझ में कुछ न आया तब वह अपनी पत्नी के पास पहुँचे। और बोले—यह क्या गड़बड़ हो गया? ये लोग भाग क्यों गये? कमरे में कौन कौन था?

पत्नी ने मुस्कराकर कहा—उन्हीं से पूछो जाके।

श्यामनाथ—उनसे क्या पूछूं, वे लोग नाराज से हो गये, न जाने तुमने क्या गड़बड़ किया।

पत्नी—नाराज नहीं हो सकते।

श्यामनाथ—बात क्या हुई यह तो बताओ।

पत्नी—तुम तो भोले-भाले आदमी हो। इन लोगों ने तुम्हें बेवकूफ़ बनाना चाहा था; पर बन गये अपने आप। मैंने पहले से इन तीनों की पत्नियों को बुला लिया था। तुमने जो मेरी सहेलियों के सम्बन्ध में कहा था वे सहेलियाँ इन्हीं तीनों की पत्नियाँ हैं। कमरे में वही तीनों और मैं बैठी थी। वे तीनों अपनी पत्नियों को देखकर भाग गये। मैंने कह दिया—'एप्रिल फूल'। इससे तीनों कट गये होंगे।

श्यामनाथ—तुम्हें तो उन्होंने देख ही लिया।

पत्नी—चार स्त्रियाँ थीं, उनमें से प्रत्येक ने केवल अपनी पत्नी को पहचाना, शेष तीन को वे नहीं पहचान सके, इसलिए

वह क्या जाने कि शेष तीन में मैं कौन सी थी। बेवकूफ भी बने और उनकी इच्छा भी पूरी नहीं हुई। कहो कैसी तरकीब रही ?

श्यामनाथ की समझ में अब सब बातें आ गई। वह हँसते हुए अपने कमरे में आये-वहाँ देखा तो कोई नहीं।

श्यामनाथ हँसते हुए अपने ही आप बोले—खाना भी नहीं खाया! यों ही भाग गये, पूरे 'एप्रिल फूल' बन गये।

वीर श्रेष्ठ

(१)

ग्रीष्म ऋतु थी; ज्येष्ठ मास था। गर्म वायु शीतल हो चली थी। रजीतपुर ग्राम के ढोर गाँव की ओर लौट रहे थे। उसी समय में एक चौपाल के आगे चारपाई पर एक अर्द्धवयस्क व्यक्ति बैठा हुआ हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। यह व्यक्ति दीर्घकाय तथा पुष्टअङ्ग था, मुखमण्डल पर खुले वायुमण्डल में रहने के कारण, सुर्खी थी। नेत्र बड़े-बड़े और कुछ उबले हुए थे; मूँछें बड़ी बड़ी और ऊपर को चढ़ी हुई थीं। उसमें इधर-उधर चमकने वाले श्वेत बाल यौवन की विदा और वृद्धापा के आगमन की सूचना दे रहे थे।

यह व्यक्ति हुक्का पीता जाता था और अपने ही आप मुस-करा रहा था। उसी समय एक नवयुवक उसके पास आया और बोला—"चाचा पाँव छुई" वह व्यक्ति बोला—"जीते रहो

बेटा—आओ बैठो।"

युवक चारपाई के पैताने की ओर बैठ गया। थोड़ी देर तक युवक चुपचाप बैठा रहा। वह व्यक्ति भी मौन धारण किये हुये हुक्का पीता रहा।

हठात उस व्यक्ति ने युवक से पूछा-"कहो बबुआ; कहाँ से आ रहे हो?"

युवक ने उत्तर दिया—"आ तो घर ही से रहा हूं। अभी ढोरों को चारा पानी देकर छुट्टी पाई थी, जी में आया जरा चाचा के पास चलें।"

उक्त व्यक्ति ने पूछा—'गाँव के क्या समाचार हैं।

युवक—समाचार अच्छे हैं, आप पर चढ़ाई करने की सलाहें हो रही हैं।

वह व्यक्ति मुसकराया, परन्तु उसने मुख से कुछ नहीं कहा।

युवक—आज सबेरे सुन्दरसिंह कह रहे थे कि जो मेरा नाम सुन्दरसिंह है तो मैं उजागरसिंह के हाथ पैर तोड़ के छोड़ूंगा। वह व्यक्ति जिसका नाम उजागरसिंह था, पुनः मुसकराकर बोला-"बड़ी बात है, सुन्दरसिंह में इतनी हिम्मत तो हुई।"

युवक—हाँ, सो मैंने सोचा कि चलो उजागर चाचा को सचेत कर दूँ।

उजागरसिंह बोला—बेटा की बातें, अरे मुझे सचेत करना न करना दोनों एक हैं। मैं तो सदा एक सा रहता हूं। मुझे क्या, चाहे जिस दिन आ जायँ, मैं हर समय तैयार हूँ। मुझे तो बड़ी प्रसन्नता है कि सुन्दरसिंह में कुछ गर्मी तो है। ठाकुरों को ऐसा ही होना चाहिए। जो ऐसा न हो वह ठाकुर ही नहीं।

युवक आश्चर्यान्वित होकर बोला—चाचा आप तो सुन्दर-सिंह की प्रशंसा करते हैं।

उजागरसिंह ने कहा—हाँ मैं निस्सन्देह प्रशंसा करता हूँ।

जो प्रशंसा की बात होगी उसकी सदा प्रशंसा करूँगा। सुन्दर-सिंह ठाकुरों की सी बात करता है इसलिए मैं उसकी प्रशंसा करता हूँ बेटा, ठाकुर ऐसे ही होते हैं। ठाकुर कभी किसी से दब कर बात नहीं करता। और बेटा बच्चनसिंह तुझ से भी मैं यही कहूंगा कि कभी किसी से दबकर बात न करना। वैसे जो बात अच्छी और सच्ची हो वही करना, पर बात आ पड़ने पर कभी किसी से न दबना—सच्चे क्षत्रिय का यही धर्म है। गाँव में बड़े बड़े अकड़बाज और लठधारी हैं, पर आज तक किसी ने मेरे लिए ऐसी बात नहीं कही; पर सुन्दरसिंह ऐसा कहता है—बड़ी हिम्मत का काम है।

बच्चनसिंह ने कहा—खैर, मैंने आपको जता दिया अब आप जाने आपका काम।

उजागरसिंह तूने बड़ा अच्छा किया। मैं जानता हूँ तू मुझसे स्नेह रखता है। पर यदि तू मुझ से न भी कहता तो तब भी मेरी कोई हानि नहीं थी। मेरा कोई कुछ बना बिगाड़ नहीं सकता। दूसरे मैं तो हर समय मरने पर कमर कसे रहता हूँ। किसी सच्चे क्षत्रिय के हाथों मेरी मौत हो जाय तो इससे बढ़कर और क्या बात है। क्षत्री युद्ध ही में मरते हैं, चारपाई पर कभी नहीं मरता। बेटा, ये पहले की बातें जाती रहीं। अब न क्षत्रिय रहे और न क्षत्रियपन। सब एक ही घाट पानी पीते हैं।

बच्चनसिंह बोला—हाँ चाचा यह तो आप ठीक ही कहते हैं।

उसी समय एक और व्यक्ति आ गया। उसे देखकर उजागरसिंह बोला—आओ भाई बसन्तसिंह—बैठो।

बसन्तसिंह भी उजागरसिंह का समवयस्क था। वह उसी चारपाई पर एक कोने में बैठ गया। बसन्तसिंह के सामने हुक्का खिसका कर उजागरसिंह ने कहा—लेओ, पियो।

बसन्तसिंह ने हुक्का ठीक करके पीना आरम्भ किया। दो

तीन कश लेने के पश्चात् उसने पूछा—काहे; उजागर भाई, क्या बातें हो रही थी।

उजागरसिंह—कुछ नहीं भइया; ये ही गाँव-गली की बात-चीत हो रही थी। सुन्दरसिंह हमें मारने कहते हैं।

बसन्तसिंह ने हुक्के की नली छोड़ दी और उजागरसिंह की ओर देखकर कहा—कौन सुन्दरसिंह ?

उजागरसिंह—हाँ, सुन्दरसिंह।

बसन्तसिंह—अरे उसकी ऐसी तैसी। उसकी इतनी हिम्मत कबसे हुई ? जिस दिन कहो, घरके भीतर घुस के मारूँ। भइया के हुक्म भरकी देर है। अभी कल नंगे घूमते थे आज तीस मार-खाँ हो गये।

उजागरसिंह ने मुसकराकर कहा—तो भइया, इसमें हरज क्या है। ये तो खुशी की बात है कि हमारे लड़के ऐसे उठ रहे हैं। लड़कों का हौसला है, होने दो, उनके हौसले को पस्त नहीं करना चाहिए। जब मारने आवेगा तब देखा जायगा।

बसन्तसिंह—अरे भइया तुम्हें साला क्या खाकर मारेगा। तुम एक लप्पर मार देओ तो बुखार आ जाय। ऊँह, तुम्हें मारेगा। 'बाप न मारी पिद्की बेटा तीरअन्दाज।'

उजागरसिंह—भाई, मैं उसकी इस बात पर मुग्ध हूँ। उसकी इतनी हिम्मत तो है।

बसन्तसिंह—अरे मरी सुसरी ऐसी हिम्मत। बड़े छोटे का भी तो ध्यान रक्खा जाता है। अभी मुंह से दूध की गन्ध नहीं गई और बड़ों बूढ़ों के मुंह चढ़ने लगा। अभी कान पकड़के दो तमांचे मार दूं तो रोता हुआ घर जाय—बातें ऐसी करता है।

इस अवसर पर बचनसिंह बोल उठा—बसन्त चाचा, सो डौल नहीं है। कान पकड़कर तमांचे मारना खेल नहीं है वह भी बड़ा हथछूट है। उसके शरीर में बल भी बहुत है। रोज कसरत

करता है, गाँव में उसके मुक़ाबिले में उजागर चाचा को छोड़कर कोई लाठी चला नहीं सकता। ऐसा वैसा थोड़ा ही है। देखते नहीं हो हाथी का बच्चा सा हो रहा है। भैंस का पाँच सेर दूध रोज़ पी जाता है, पाव भर घी रोज़ खा जाता है। रोज़ अखाड़े में चार जवानों को जोर कराता है।

बसन्तसिंह हँसकर बोला—बेटा, ये सब बातें तुम्हारे से छोकरों के लिए हैं। हमारे सामने वह क्या ठहर सकता है। हम लोगों ने जितना दूध घी खा लिया इतना आज दिन किसी को पानी नसीब नहीं। (हाथ दिखाकर) ये हड्डियाँ लोहे की हैं। जिस दिन सामना पड़ जायगा उस दिन अम्माँ याद आवेगी।

उजागरसिंह मुस्कराकर बोला—भइया, तुम भी किस की बातों में लगे हो। अरे कहने दो। मैं तो कह चुका, लड़कों की हिम्मत इसी तरह बढ़ती रहे तो अच्छा है। भई मुझे तो प्रसन्नता है।

बसन्तसिंह—हिम्मत बढ़ाने के लिए तो कोई बुरी बात नहीं परंतु ऐसे लड़कों को बहुत मुँह लगाना ठीक नहीं।

उजागरसिंह—खैर देखा जायगा। चिन्ता क्या है?

(२)

सुन्दरसिंह अपनी चौपाल में बैठा हुआ था—पास उसके इष्ट-मित्र बैठे थे। सुन्दरसिंह एक सुन्दर तथा बलिष्ठ युवक था। वयस २४, २५ वर्ष की थी। मुख पर ब्रह्मचर्य का तेज था। ये लोग आपस में बातें कर रहे थे, उसी समय बसन्तसिंह उधर से निकले। उन्हें देखते ही सुन्दरसिंह बोल उठा—चाचा, चरण छुई। बसन्तसिंह ने उत्तर दिया—'चिरंजीव रहो।' अरे बेटा सुन्दर यह गाँव में कैसी खबरें उड़ रही हैं, लोग कहते हैं—तुम उजागरसिंह से लड़ाई ठाने बैठे हो।

सुन्दरसिंह छाती ऊँची कर के बोला—'जो कुछ आपने सुना वह ठीक है।'

बसन्तसिंह खड़े हो गये, बोले—'आखिर ऐसी कौन बात हुई जो तुम इतने चिढ़ गये?'

सुन्दरसिंह—'अब चाचा बात क्या बताऊँ!'

बसन्तसिंह—'आखिर बात तो कुछ होगी, बिना बात तो ऐसा हो नहीं सकता।'

सुन्दरसिंह—'बात क्यों नहीं है—मैं पागल तो हूँ नहीं जो बिना कारण किसी से लड़ाई मोल लूँ।'

बसन्तसिंह—'तो वही तो मैं पूछता हूँ कि बात क्या है।'

सुन्दरसिंह—'चाचा यहाँ आकर बैठो तो बताऊँ।'

बसन्तसिंह चौपाल में चले गये और एक चारपाई पर बैठकर बोले—'हाँ बताओ।'

सुन्दरसिंह—बात यह है कि परसों रात को हमारी भैंस खुल गई थी सो घूमती घूमती कहीं उनके खेत में चली गई! भगवान जाने वह कब खुली और कब खेत में पहुँची—मुझे कुछ मालूम नहीं। मैं भोजन करके उठा था उसी समय एक आदमी ने आकर कहा—'तुम्हारी भैंस उजागरसिंह के खेत में घुस गई थी सो उन्होंने काँजीहौस भिजवा दी।' पहले तो मुझे इस पर विश्वास नहीं हुआ, मैंने खबर लानेवाले से कहा 'उजागर चाचा तो ऐसा करेंगे नहीं, किसी और ने भिजवा दी होगी।'

उस आदमी ने कहा—'नहीं भैया, खास उजागरसिंह ने ऐसा किया। जब उनके आदमियों ने भैंस पकड़ी तो उन्होंने पूछा—'सुन्दरसिंह की मालूम होती है।' इतना सुनते ही पहले तो वह कुछ देर तक सोचते रहे फिर बोले—'किसी की हो—जाओ काँजीहौस ले जाओ।' सो चाचा भैंस उसी समय कांजी-हौस भेज दी गई। मैंने जो यह सुना तो मुझे बड़ा बुरा लगा

मैंने कहा—'अव्वल तो कांजीहौस भेजने का काम क्या था। जानवर सभी के पास हैं और सभी के कभी कभी खुल जाते हैं और जिस खेत में चाहते हैं घुस जाते हैं। जो सब इसीतरह काँजीहौस भेजने लगें तो काम कैसे चले। कई दफ़े ख़ास उनके जानवर हमारे खेत में चर गये पर हमने चं नहीं की, चुपचाप पकड़कर उनके खूंटे में बांध आये। ख़ैर, मैं उसी समय उजागर चाचा के पास पहुँचा। मैंने उनसे बड़ी नम्रता से कहा 'उजागर चाचा, हमारी भैंस आपने कांजीहौस क्यों भिजवादी ?,

परन्तु उजागर चाचा उस समय सातवें आसमान पर थे—बात क्या कही मानों काटने दौड़े, बोले—भिजवा न दें तो क्या करें, अपना खेत चरवा डालें—और मैं क्या जानूं किसकी भैंस थी कुछ तुम्हारा उस पर नाम तो लिखा था ही नहीं। और, अब तो मैंने सोच लिया है कि किसी को रियायत न करूँगा, चाहे जो हो, और चाहे जिसका जानवर हो, अपने खेत के पास भी पा जाऊँगा तो कांजीहाउस भिजवा दूंगा। सालों ने नाक में दम कर रक्खा है—घर में बांध कर खिलाया नहीं जाता, रात में खेत चरने को छोड़ देते हैं। अब चराने का मजा मिलेगा।

मेरे मुंहसे निकला—'चाचा, यह मल्लाही तो ठीक नहीं यह तो दुनिया जानती है कि भैंस मेरी है—आपको ऐसा नहीं चाहिए था—आपके भी जानवर हैं और वे भी कभी कभी खुल जाते हैं। बस चाचा मेरा इतना कहना था कि उजागर चाचा जामे के बाहर हो गये, कड़ककर बोले—मेरे जानवर किसी······ (गाली) के खेत में जावें तो उसका जी चाहे सो करे, चाहे कांजीहौस भेजे चाहे क़साई को दे दे और मैं भी अब ऐसा ही करूँगा। वाह, अच्छी धांधली मचा रक्खी है, खेत का खेत चरावें और ऊपर से उपदेश देने आवें। कल का लौंडा चला

वहां से बड़ा कहीं का लाल बुझक्कड़ बनकर।

इतना सुनकर, चाचा, मुझे भी क्रोध आ गया—तुम जानो हम भी आध सेर आटा खाते हैं—हमारे शरीर में भी खून है। मैंने कहा—आप इतना जामेसे बाहर क्यों हुए जाते हैं मैं तो चाचा--चाचा कह रहा हूं और आप सिर ही पर चढ़े बैठते हैं। आखिर आपने समझ क्या रक्खा है। जब तक चाचा कहता हूँ तभी तक खैर है---जिस दिन सामने खड़ा हो गया उस दिन छठी का दूध याद आ जायगा। और देखूं आप कैसे मेरे जानवर कांजीहौस भेजते हैं—मेरे जानवर रोज खुलेंगे और जहां चाहेंगे चरेंगे-जिसमें हिम्मत हो कांजीहौस भेजे, पर कांजीहौस भेजने के पहले सिर पर लोहे का तवा भी जड़वा ले।

इतना सुनते ही उजागर चाचा बाहर निकल आये और आते ही एक तमांचा मेरे मुंह पर मारा, क्या कहूँ चाचा, मेरी जगह दूसरा होता तो चक्कर खाकर गिर जाता, मेरी भी आँखें तले अंधेरा छा गया। मेरे पास उस समय कोई लाठी डंडा नहीं—जल्दी में खाली हाथ ही चल दिया था इस लिये मैंने उस समय लड़ना ठीक न समझा। इतना मैंने जरूर कहा—चाचा तुमने मुझे बेक़सूर मारा है—इसका बदला मैं जरूर लूंगा—जो न लूं तो ठाकुर से नहीं चमार से पैदा समझना।

इस पर वह बोले—तू चमार तेरी सात पीढ़ी चमार—तू ठाकूर कब से हुआ ?

मैंने इसका कोई जवाब नहीं दिया, चुपचाप घर चला आया। सो चाचा, अब तो मैं क़सम खा चुका हूँ कि तमांचे का बदलो जरूर लूँगा, चाहे इधर की दुनिया उधर हो जाय।

इतना सुनकर बसन्तसिंह सर हिलाकर बोले—उजागर भाई ने गलती की जो ऐसा किया, उन्हें ऐसा नहीं चाहिये था। एक तो भैंस को काँजीहौस भेजना ही बुरा था—जानवर तो खुलते ही

रहते हैं और खेत भी चर जाते हैं, पर क्या किया जाय। अभी तीन चार दिन हुए अंगनू अहीर का बैल रात में हमारे खेत में घुस गया। किसी को पता न लगा; वह साला रात भर मजो में छकता रहा। सबेरे लोगों ने देखा और पकड़ लिया। और मुझे खबर हुई मैंने जाकर छुड़वा दिया। एक जगह रह कर ऐसी बातें नहीं चाहिये। खैर बेटा, वह गाँव के बड़े बूढ़े हैं उनकी बात का बुरा मत मानो। तुम जानते ही हो वह बड़े-क्रोधी हैं—जरा ही में उन्हें क्रोध आता है।

सुन्दरसिंह मूछों पर ताव देकर बोले—वह क्रोधी हैं तो हम भी बड़े क्रोधी हैं—हमने अपना क्रोध किसी ससुरे के हाथ बेच नहीं खाया है। जिस समय तमांचा मारा था उस समय मैं न जाने क्या समझकर चुपचाप चला आया नहीं उसी समय छाती पर चढ़ कर खून पी लेता। मगर खैर-अब भी क्या हुआ—चोर जाते रहे कि अंधियारी।

बसन्तसिंह बोले—नहीं बेटा ऐसी बातें न करो, इसमें बड़ी बदनामी की बात है। वह चाहे तुम्हारे दस तमांचे मारें—तुम्हारी कुछ आबरू नहीं घटेगी—और जो कहीं तुम हाथ चला बैठे तो सब तुम्हीं को थूकेंगे।

सुन्दरसिंह—अब चाहे कोई थूके, चाहे चूमे, अब तो तमांचे का बदला लिया ही जायगा। कसूर होता तो तमाचा क्या जूता मार देते तब भी चूं न करता। एक तो खुद ही गलती की भैंस कांजीहौस भिजवा दी—दूसरे हाथ चला दिया, यह बात क्या मैं भूल थोड़ा ही सकता हूँ।

बसन्तसिंह—खैर बेटा समझाना मेरा काम था—जो तुम्हारा जी चाहे सो करो। यह कह कर बसन्तसिंह उठकर चल दिये।

(३)

रात के नौ बज चुके हैं। पूर्णमासी का चन्द्रमा अपना

शीतल किरणों से संसार को आलोकित कर रहा है। उसी समय ठाकुर उजागरसिंह हाथ में एक लट्ठ लिए, अपने खेतों की मेंड़ पर घूम रहे हैं। खेत में कुछ मजदूर पानी काट रहे हैं। उसी समय उजागरसिंह ने पूछा—कितना खेत सिंच गया? एक मजदूर ने कहा—मालिक, आधा हो गया है आधा और बाक़ी है।

उजागरसिंह 'हूँ' करके चुप हो गये और इधर-उधर टहलने लगे। आध घण्टा इसी प्रकार व्यतीत हुआ। आध घण्टे पश्चात् हठात् एक आदमी उनकी ओर दौड़ता हुआ आया और बोला—चाचा, सुन्दरसिंह अपने खेत में पानी काटे ले रहे हैं। मैंने मना किया पर माने नहीं। आप चलकर कहिये तो चाहे मान जाँय।

यह सुनते ही उजागरसिंह कुछ मुसकराकर बोले—इस लौण्डे की हिम्मत बहुत बढ़ती जाती है—अच्छा चलो। यह कह कर उजागरसिंह उस आदमी के साथ हो लिये। थोड़ी दूर चलकर सुन्दरसिंह के खेतों के पास पहुँच गये। सुन्दरसिंह खड़ा कह रहा था—काट लो पानी, कुछ परवाह नहीं, जो होगा देखा जायगा।

उजागरसिंह सुन्दरसिंह के सामने पहुंचे और बोले—क्यों सुन्दरसिंह क्या बात है? जब हमारे खेतों में पानी जा रहा है तो तुमने क्यों अपने खेतों में काट लिया?

सुन्दरसिंह तो उजागरसिंह से झगड़ा करने का अवसर ढूँढ़ ही रहा था। अपने खेतों में पानी काट लेने का अभिप्राय यही था कि झगड़ा हो। अतएव वह बोला—काट लिया तो क्या बुरा किया, दिन भर आपने सींचा अब रात में हम सींचेंगे।

उजागरसिंह—हमारा खेत अधूरा पड़ा है—रात भर में पूरा हो जायगा कल सुबह से तुम सींचना।

सुन्दरसिंह लापरवाही से बोला—यह तो नहीं हो सकता—अब आज रात में हमारा ही खेत सींचा जायगा।

उजागरसिंह—यह तो तुम्हारा अन्याय है।

सुन्दरसिंह—गाँव में न्याय है कहाँ, न्याय तो यहां से उठ गया अब तो जिसकी लाठी उसकी भैंस।

उजागरसिंह—लाठी में भी हम किसी से कमजोर नहीं हैं—पर व्यर्थ झगड़ा क्यों बढ़े—यही विचार है।

सुन्दरसिंह—सो तो हो नहीं सकता। आज रात को तो हमारा ही खेत सिंचेगा।

इतना सुनते ही उजागरसिंह का चेहरा तमतमा उठा–आँखें रक्तपूर्ण हो गईं। बोले—'यह तो नहीं होने पायेगा। खेत सिंचेगा तो हमारा नहीं तो दोनों में से एक का भी नहीं सिंचने पायेगा।' इतना कहकर वह आगे बढ़े। सुन्दरसिंह उनका तात्पर्य समझ गया और बोला—चाचा, कुलाबे के पास न जाइयेगा, नहीं तो अच्छा न होगा।

उजागरसिंह ने कहा—जो तुम्हें करना हो सो करो—हम पानी जरूर बन्द करेंगे।

इतना सुनते ही सुन्दरसिंह लाठी लेकर बढ़ा। उसे आते देख उजागरसिंह खड़े हो गये। सुन्दरसिंह ने कहा—भलाई इसी में है कि चुपचाप लौट जाइये।

उजागरसिंह—नहीं तो क्या करोगे ?

सुन्दरसिंह—करेंगे क्या, आपकी और अपनी जान एक करेंगे।

उजागरसिंह—अबे लौण्डे, तेरी यह हिम्मत कब से हुई—अभी कुछ दिन घर में बैठकर दूध-घी खा—तब फिर हमारे सामने आना। तूने समझा होगा कि बुड्ढा आदमी है—धमका लो, सो बेटा, हम ऐसी धमकियों में नहीं आयेंगे।

सुन्दरसिंह ने कहा—दूध घी तो आपके प्रताप से बहुत खाया और खायेंगे—इन बातों से कोई लाभ न होगा। आप चुपचाप लौट जाइये।

उजागरसिंह—हम तो बिना पानी बन्द किये लौटेंगे नहीं।

इतना कह कर उजागरसिंह फिर चले। सुन्दरसिंह उनको रोककर खड़ा हो गया और लाठी उठा कर बोला—'चाचा' आज तमाँचे का बदला निकलेगा। उजागरसिंह कुछ क्षणों तक चुप खड़े उसका मुँह ताकते रहे तत्पश्चात बोले—कुछ तमाँचे और खाले फिर तमाँचे का बदला लेना।

यह कहकर उन्होंने लाठी फेंक दी और यह कहते हुए आगे बढ़े तेरे लौण्डे के सामने मैं क्या लाठी हाथ में लूं—कहा मान जा, रास्ता छोड़ दे।,

परन्तु सुन्दरसिंह टस से मस न हुआ। यह देखकर उजागरसिंह आगे बढ़े और उन्होंने सुन्दरसिंह का गला पकड़कर उसे एक धक्का दिया। सुन्दरसिंह गिरते गिरते संभला और संभलते ही उसने लाठी का वार किया। उजागरसिंह पहले ही से होशियार थे—उन्होंने तुरन्त पैतरा बदलकर वार को बचाया। सुन्दरसिंह झोंके में मुंह के बल भूमि पर आ रहा पर तुरन्त ही पुनः संभल गया। संभलकर उसने पुनः लाठी उठानी चाही। उसके लाठी उठाने के पूर्व ही उजागरसिंह ने लपक कर उसकी कलाई पकड़ ली, हाथ मरोड़कर लाठी छीन ली और तड़ाक से एक तमाँचा उसके मुंह पर मारा। तमाँचा खाते ही सुन्दरसिंह तिलमिला गया। उसने बड़ी चेष्टा की, कलाई छुड़ाने के लिए बड़ा जोर लगाया परन्तु वृद्ध उजागरसिंह के शरीर में न जाने कहाँ का बल आगया कि उन्होंने कलाई न छोड़ी। सुन्दरसिंह हाँपने लगा। उजागरसिंह ने कहा—क्यों, इसी बल पर लाठी बांधे घूमता है। तूने समझा होगा कि उजागर चाचा बुड्ढे हैं—

हमारा क्या कर लेंगे। सो बच्चा इस धोके में न रहना–इस बार तो छोड़े देता हूँ जो आगे हमारे मुंह लगा तो मारते मारते बेदम कर दूंगा।,

यह कहकर उजागरसिंह ने सुन्दरसिंह की कलाई छोड़ दी और बोले—'खैर, आज रात को तुम्हीं पानी लेलो-पर इतना याद रखना कल दिन में हमारे खेत सिंचेंगे, समझे! यह बात याद रखना, भूल न जाना।'

इतना कहकर उजागरसिंह अपनी लाठी उठाकर अपने खेतों की ओर लौट पड़े।

(४)

उपरोक्त घटना को एक मास व्यतीत हो गया। सुन्दरसिंह का हृदय लज्जा तथा क्षोभ से जला जा रहा था। उसे स्वप्न में भी विश्वास न था कि वह उजागरसिंह से इतनी बुरी तरह पछाड़ खा जायगा। उसे अपने शारीरिक बल पर बड़ा अभिमान तथा भरोसा था। परन्तु उसका वह विश्वास, वह भरोसा सब बालू की भीत की भांति धराशायी हो गया।

अब सुन्दरसिंह को यह चिन्ता हुई कि जिस प्रकार बने उजागरसिंह को नीचा दिखाना चाहिए। लज्जा तथा झेंप मनुष्य को पागल बना देती है—उसे उचितानुचित का ध्यान नहीं रहता। झेंपा हुआ आदमी अपनी झेंप मिटाने के लिए नीच से नीच कर्म करने के लिए उद्यत हो जाता है। उसका लक्ष्य केवल अपने उस प्रतिद्वन्द्वी को नीचा दिखाना हो जाता है जो कि उसके झेंपने का कारण होता है। सुन्दरसिंह की भी यही दशा हुई। वह अब उजागरसिंह को हानि पहुंचाने के लिए सब कुछ करने के लिए कटिबद्ध हो गया।

दोपहर का समय था। सुन्दरसिंह एक वृक्ष के नीचे अपने तीन चार मित्रों को लिये बैठा था। वह कह रहा था—भैय्या

सम्पतसिंह, अब चाहे जो हो, उजागरसिंह को नीचा दिखाना ही पड़ेगा।

सम्पतसिंह बोला—भई; यह जरा टेढ़ी खीर है। उजागर ऐसे वैसे आदमी नहीं हैं। गाँव भर के ज्वानों में तुम्हीं सब से तगड़े हो; जब उन्होंने तुम्हें कुछ नहीं समझा तब दूसरे की क्या हिम्मत है जो उनके सामने ठहर सके।

सुन्दरसिंह—नहीं भैय्या मैं अकेले सामना करने की बात नहीं कहता—मैं तो चाहता हूँ कि उन्हें नीचा दिखाऊँ चाहे इसे एक आदमी करे चाहे तीन चार आदमी मिलकर करें।

दूसरा साथी बोला—तीन चार आदमी मिलकर? यह तो कायरपने का काम है।

सुन्दरसिंह—इस समय मेरे सामने नीति शास्त्र तो बखानो नहीं—जो मैं कहता हूँ उसकी युक्ति सोचो। और देखो, जो इस मामले में तुम लोगों ने मेरा साथ न दिया तो जन्म भर के लिए तुम लोगों से दुश्मनी हो जायगी।

तीसरा बोला—यार सुन्दर, यह बात तुम्हारी बेजा है—तुम अपने साथ हमें भी डुबोने की बातें कर रहे हो।

सुन्दरसिंह—इसमें डुबोने की बात क्या है, हमारे दोस्त हो तो हमारा साथ दो।

सम्पतसिंह—कल तक तो तुम उन्हें चाचा कहते थे और आज उन्हें पीटने की तरकीबें सोच रहे हो—यह कैसी बात है?

सुन्दरसिंह—जब तक चाचा थे तब तक थे, अब तो वह मेरे शत्रु हैं और मैं उनका शत्रु हूं। या तो मैं अपनी जान दे दूँगा या उनकी ले लूँगा।

तीसरा—अरे राम राम, ऐसी बात मुंह से न निकालो।

सुन्दरसिंह—भाई साहब, जैसा मेरा अपमान हुआ वैसा जो तुम्हारा होता तो तुम्हारी भी मेरी ही सी दशा हो जाती।

उन्होंने दो दफ़े मुझे बेकसूर मारा है।

दूसरा—अरे तो बड़े हैं-मार दिया तो क्या हुआ—उनके मारने पीटने से कुछ तुम्हारी इज्जत नहीं चली गई।

सुन्दरसिंह—अच्छा अब यह उपदेश अपने पास रक्खो—यह बताओ कि मेरा साथ दोगे या नहीं।

दूसरा—यार हम तो तुम्हारे दोस्त हैं, जैसा कहोगे करेंगे, पर क्यों अपने साथ हमें भी नर्क का भागी बनाते हो।

सुन्दरसिंह—दोस्ती के माने यही हैं कि चाहे अच्छा काम हो चाहे बुरा—दोस्त को हर हाल में साथ देना चाहिए।

सम्पतसिंह—अच्छा भाई, जैसा कहोगे करना पड़ेगा।

सुन्दरसिंह ने अन्य दो दोस्तों की ओर देख कर कहा—और तुम लोग ?

वे दोनों एक स्वर से बोले—हम भी तुम्हारे साथ हैं जो कहोगे करना पड़ेगा।

सुन्दरसिंह—अच्छा तो सुनो :—

यह कहकर सुन्दरसिंह ने धीरे-धीरे उनसे कुछ देर तक बातें कीं। तीनों ने कहा—अच्छा, ऐसा ही होगा।

इस घटना के तीन दिन पश्चात् उजागरसिंह शाम को झुट-पुटे समय पाख़ाने होकर गाँव की ओर लौट रहे थे—हठात् एक झाड़ी से चार आदमी लाठी लिये हुए निकले और बिना कुछ कहे सुने चारों ने उजागरसिंह पर लाठियाँ बरसानी आरम्भ कीं। उजागरसिंह पहले तो चौंधिया गये—उनकी समझ में न आया कि मामला क्या है, पर जब बराबर लाठियाँ पड़ती रहीं तब उन्होंने भी अपना डण्डा सँभाला और पैंतरा बदलकर वार बचाने लगे। पाँच ही मिनट के भीतर उन्होंने एक व्यक्ति को धराशायी कर दिया। शेष तीन आदमी बराबर वार करते रहे। उजागर सिंह ने तीन मिनटों में एक दूसरे आदमी को

भी गिरा दिया। यद्यपि वे लहू से तरबतर हो गये थे, पर उनका हाथ बराबर चल रहा था। अन्त को जब शेष दो आदमियों ने देखा कि बुड्ढे पर पेश पाना कठिन है तो वे भाग खड़े हुए।

उजागरसिंह जब अकेले रह गये तो उन्होंने एक ओर की हाँक लगाई—पास के खेतों में से एक आदमी दौड़ता हुआ आया। उसने आते ही पूँछा क्या है काका ?

उजागरसिंह ने कहा—अरे ज़रा दियासलाई तो ला—देखूं तो ये कौन हैं।

वह आदमी दौड़ता हुआ गया और दियासलाई लाया। उसने दियासलाई जलाई और भूमि पर पड़े हुए लोगों के पास ले गया। देखते ही वह बोला—अरे यह तो सुन्दरसिंह और सम्पतसिंह हैं। उजागरसिंह का कलेजा धक से हुआ, उन्होंने कहा—अरे! यह तो बड़ा अनर्थ हुआ। मैं क्या जानता था कि ये अपने ही गाँव के लड़के हैं मैंने समझा कोई चोर बदमाश हैं। राम राम, यह तो बड़ा बुरा हुआ। जल्दी आदमी लाओ इन्हें उठाकर ले चलें।

उस आदमी ने एक फूस का गट्ठा सुलगा लिया था, उसकी रोशनी में उसने उजागरसिंह के मुख को देखा--देखते ही वह घबराकर बोला—उजागर काका, तुम्हारे कपड़े तो रक्त में तर हैं।

उजागर बोले—तू मेरी चिंता न कर, जल्दी जाकर आदमियों को ला।

वह आदमी तुरन्त दौड़ा हुआ गया और तीन चार आदमी साथ ले आया। सुन्दरसिंह के पिता को भी सूचना मिल गई, वह भी दौड़ता हुआ आया। सब ने मिलकर दोनों आदमियों को उठाया और ले चले। उजागरसिंह ने रास्ते में कहा—इन्हें मेरे ही घर ले चलो।

दोनों आदमी उजागरसिंह के घर पहुंचाये गये। यद्यपि उजागरसिंह का सर फट गया था और उससे बराबर रक्तस्राव हो रहा था परन्तु उजागरसिंह को इसकी कुछ भी चिन्ता न थी, उनका ध्यान सुन्दरसिंह तथा सम्पतसिंह की ओर था।

घर पहुंचकर उन्होंने पहिले साधारण रूप से अपने घाव को बाँध लिया, तत्पश्चात् तुरन्त ही दोनों घायलों की सेवा सुश्रूषा में लग गये।

सुन्दरसिंह तथा सम्पतसिंह के खासी चोट आ गई थी। एक सप्ताह तक वे दोनों चारपाई पर पड़े रहे। कभी होश आ-जाता था और कभी बेहोश हो जाते थे। एक सप्ताह पश्चात् सुन्दरसिंह को भली भाँति ज्ञान हुआ। उसने देखा कि उजागर-सिंह उसके सिरहाने बैठे हैं। सुन्दरसिंह को चारों ओर निहारते देख उजागरसिंह बोले-'बेटा सुन्दर कैसा जी है। बेटा, तुमने बड़ा गजब किया था, जो कहीं मेरे हाथों से तुम्हारे गहरी चोट लग जाती तो मैं गाँववालों को और तुम्हारे पिता को कैसे मुंह दिखाता। राम राम, कोई ऐसा काम करता है। आखिर अभी लड़के ही हो। बेटा, मैं तो अपना बच्चा समझकर तुम्हारे एकाध तमाँचे मार दिये थे, मैं अपने रघुबीर को भी कभी मार बैठता हूँ, क्या करूँ, मेरा स्वभाव ही खराब है कि गुस्सा आता है तो हाथ चल ही जाता है, रघुबीर की उम्र तुम से कुछ अधिक ही है कम नहीं, पर मैं उसे भी मार देता हूँ, बेटा, मुझसे जो कसूर हुआ हो उसे माफ करो, भगवान जाने गुस्सा आने पर मुझे भले बुरे का ज्ञान नहीं रहता। बेटा, मेरे हाथों से तुम्हारे इतनी चोट लगी है— मेरा कलेजा नुचा आता है, जिसे गोदियों में खिलाया वह मेरे हाथों घायल हुआ—मैंने उसका रक्त बहाया। यह दुख मुझे जन्म भर रहेगा। यह कहते कहते उजा-गरसिंह के नेत्रों से आँसू बहने लगे।

सुन्दरसिंह हाथ जोड़कर बोला—चाचा, मेरा कसूर माफ़ करो, मुझे नहीं मालूम था कि तुम्हें मेरी इतनी मुहब्बत है, मेरी आँखों पर पर्दा पड़ गया था, मैं तुम्हें अपना दुश्मन समझने लगा था। चाचा, अब आज से मैं तुम्हें अपने पिता से अधिक समझूँगा—तमांचा क्या तुम जूतियाँ भी मारोगे तो कभी चूँ न करूँगा।

यह कहकर सुन्दरसिंह ने उजागरसिंह के चरणों की ओर हाथ बढ़ाया, उजागरसिंह ने उठकर उसे छाती से लगा लिया।

दिवाली

(१)

दोपहर का समय है। एक सुन्दर भवन के एक सुसज्जित कमरे में दो युवतियाँ बैठी वार्तालाप कर रही हैं। एक जो गृहस्वामिनी प्रतीत होती है, उसकी वयस २० वर्ष के लगभग होगी। देखने में सुन्दरी है। दूसरी की वयस २२ वर्ष के लगभग है। गृहस्वामिनी कह रही है—क्या कहूँ बहिन, दिवाली आने पर लोगों को प्रसन्नता होती है; पर मेरा तो कलेजा धड़कने लगता है। यही खटका लगा रहता है कि देखें अब की क्या हो।

दूसरी स्त्री बोली—अरी बहिन मर्द तो सभी जुआ खेलते हैं।

गृहस्वामिनी—कायदे-कायदे के सब काम अच्छे होते हैं, ऐसा नहीं होना चाहिए कि उसके पीछे पागल हो जाय।

दूसरी—तो तुम्हारे बाबू तो पढ़े-लिखे समझदार हैं। वह ऐसा उल्टा-पल्टा काम थोड़ा ही कर सकते हैं।

गृहस्वामिनी—लाख पढ़े-लिखे हों पर दिवाली के दिनों में तो उन पर भूत सवार रहता है। न खाने की सुधि रहती है न नहाने की, बस रात-दिन जुआ।

दूसरी—अरे तो साल भर का त्योहार है, दो-तीन दिन खेल लेते हैं तो क्या बुरा करते हैं।

गृहस्वामिनी—भला तेरे बाबू भी खेलते हैं।

दूसरी—नहीं, उन्हें तो जुए के नाम से चिढ़ है।

गृहस्वामिनी—तो फिर तू यह क्यों कहती है कि सभी ऐसा करते हैं।

दूसरी—अरे एक उन्होंने न किया तो क्या हुआ।

गृहस्वामिनी—पारसाल पाँच-छः सौ रुपये हार गये थे। मैंने ऐसी कई घटनाएँ अखबारों में पढ़ी हैं और सुनी हैं कि लोग जुए में अपनी पत्नी तक को हार गये हैं। अनेकों ने विष खाकर प्राण दे दिए। इन्हीं सब बातों के कारण कलेजा दहला करता है।

दूसरी—तो तुम्हारे बाबू इतने नासमझ नहीं हैं जो ऐसी नौबत आवे।

गृहस्वामिनी—कौन? यह सब कहने की बातें हैं। जुए के समय तुमने उन्हें देखा नहीं है। मुझे यह विश्वास है कि यदि उन्हें रुपये न मिलें तो वह गहने ले जायँ और कुछ न मिले तो मुझे ही दाँव पर लगादें। वह तो कहो बहिन, ईश्वर की दया है हजार-पाँच सौ में अपना कुछ बनता बिगड़ता नहीं, इसलिए निभा चला जाता है। पर लाख कुछ हो, दिवाली भर मुझे नींद भर सोना नसीब नहीं होता। जुआ फिर जुआ ही है, एक दाँव में आदमी सर्वस्व हार सकता है मैं तो कहती हूं कि इनकी यह आदत जाय तो मैं दिवाली पर घी के दीपकों की रोशनी करूं। एक दफे चाहे दस हजार खर्च हो जाँय पर इनकी यह आदत छूट जाय।

दूसरी—आदत कैसे छूटे ?

गृहस्वामिनी—यार दोस्त चाहें तो छूट सकती है। पर वे ऐसा चाहने क्यों लगे, वे तो उन्हें खिलाते हैं। तुम्हारे बाबू तो खेलते नहीं, उनसे मेरी ओर से हाथ जोड़कर कहो कि और किसी काम में चाहे दो चार सौ खर्च करा दिया करें, पर जुए की लत छुड़ा दें।

दूसरी—उनका कहना भला वह मानेंगे।

गृहस्वामिनी—मानेंगे क्यों नहीं। जब जोर देकर कहेंगे समझायेंगे ऊँच नीच सुझायेंगे तब मानेंगे। हाँ वैसे सहज में तो मानने वाले हैं नहीं।

दूसरी—अच्छा देखो कहूंगी।

गृहस्वामिनी—जरूर कहना बहिन, मैं तेरे हाथ जोड़ती हूँ। इतना काम करा दिया तो मैं जन्म भर तेरा एहसान मानूंगी। जो इसमें कुछ खर्च हो तो वह भी देने को तैयार हूँ।

दूसरी—अरे खर्च की कौन जरूरत है—और होगी तो ले लूंगी, पहले वह राजी तो हों।

गृहस्वामिनी—मेरी तरफ से हाथ जोड़ कर कहेगी तो जरूर राजी हो जाँयगे।

दूसरी—कहने को तो मैं अपनी और तेरी दोनों की तरफ से कहूँगी।

गृहस्वामिनी—तब तो वह जरूर राजी हो जाँयगे।

दूसरी—पर जब वह तेरा कहना नहीं मानते तो भला उनका कहना क्या मानेंगे ?

गृह-स्वामिनी—आखिर खेलते तो यार दोस्तों ही के साथ हैं जब वह मना करेंगे तो क्यों नहीं मानेंगे।

दूसरी—देखो मुझे तो आशा कम है। बहुतेरे तो ऐसे हैं कि

यह कहते हैं कि जो दिवाली पर जुआ न खेले वह हिन्दू ही नहीं

गृह-स्वामिनी—न जाने किस दाढ़ी जरू ने दिवाली ऐसे अच्छे त्योहार में जुआ घुसेड़ दिया। त्योहार होता है खुशी मनाने के लिए। सो खुशी आनन्द तो दूर रहा, उल्टा क्लेश हो जाता है।

दूसरी—हमारे यहाँ तो बहिन इस जुए निगोड़े का कोई काम ही नहीं। दिवाली में खूब आनन्द से खाते पीते हैं और आनन्द मनाते हैं।

गृह-स्वामिनी—त्योहार में यही होता है। यह नहीं होता कि पागल बने फिरें—घर में जो कुछ हो वह जुए में हार जावें-अन्त में अफीम खाने की नौबत आवे। ऐसा त्योहार किस काम का। कभी कभी मैं सोचती हूं कि साल भर में दो तीन दिन खेलते हैं तब तो यह दशा होती है। और जो रोज खेलते हैं उनके घर की क्या दशा होती होगी।

दूसरी—अरे राम राम, बस यह समझ लो कि जिस घर में ऐसा मर्द है वह पूरा नरक है।

गृह-स्वामिनी—भगवान बड़े से बड़े बैरी के घर में भी यह छूत न लगावे।

इसी प्रकार की बातचीत में तीन बज गये। तीन बजने के उपरान्त दूसरी युवती ने गृहस्वामिनी से कहा—अच्छा अब जाऊँगी, उनके आने का समय हो गया।

गृह-स्वामिनी—तो मेरी बात याद रखना।

दूसरी—जरूर, ऐसी बात भला भूल सकती हूँ।

गृह-स्वामिनी—यह समझ लेना कि जन्म भर तुम्हारा अहसान न भूलूँगी।

दूसरी—यह बात ही कौन है बहिन! भगवान् सब अच्छा करेंगे।

(२)

"सुनते हो भाई चन्द्रकिशोर, दीपावली आ रही है होशियार रहना।"

"होशियार तो हर साल रहते हैं-कोई नई बात थोड़ा ही है।"

"पार साल तो उस्ताद तुम गहरा गप्पा खा गये थे।"

"हाँ यार पार साल तो पाँचसौ रुपयेकी हार में रहे थे। इस साल ईश्वर चाहेगा तो सब टोटा पूरा हो जायगा।"

शाम के सात बज चुके हैं। हमारे पूर्व परिचित सुन्दर भवन के एक सुसज्जित मर्दाने कमरे में दो नवयुवक बैठे वार्त्तालाप कर रहे हैं। दोनों समवयस्क हैं। दोनों की वयस २५ वर्ष के लगभग है। ये दोनों बातचीत कर रहे थे कि उसी समय एक तीसरे व्यक्ति, जिनकी वयस ३० वर्ष के लगभग थी, आये। उनको देखते ही चन्द्रकिशोर किंचित मुस्कराकर बोले आइये, पधारिये। कहिए सब आनन्द है?

नवागन्तुक महोदय चन्द्रकिशोर की बगल वाली रिक्त कुर्सी पर बैठते हुए बोले—सब आपकी दया है।

यह कह कर उन्होंने दूसरे युवक की ओर देखा और कहा-कहिये बद्रीनाथजी, आप प्रसन्न तो हैं?

बद्रीनाथ हाथ जोड़ कर बोले—सब आपकी कृपा है।

थोड़ी देर तक सब लोग मौन बैठे रहे। हठात नवागन्तुक महाशय मुस्कराकर बोले—क्या बातें हो रही थीं।

बद्रीनाथ दाँत निकाल कर बोले—कुछ नहीं ऐसे ही गपशप हो रही थी।

चन्द्रकिशोर—दीपावली की बातचीत हो रही थी। यह मुझे होशियार कर रहे थे।

नवागन्तुक—किस बात के लिए?

चन्द्रकिशोर—यही खेलने-खाने के सम्बन्ध में।

नवागन्तुक—जुआ खेलने के सम्बन्ध में ?

चन्द्रकिशोर—जी हाँ।

नवागन्तुक—अभी जुआ खेलना जारी है ?

चन्द्रकिशोर—जी हाँ, साल भर का त्योहार है, सौ-पचास रुपये से खेल लेता हूँ।

नवागन्तुक—भला कभी जीतते भी हो ?

चन्द्रकिशोर—पार साल हार गया था, इसके पहले साल जीता था।

बद्रीनाथ बोल उठे—पार साल तो पाँच सौ रुपये हार गये थे।

चन्द्रकिशोर—अरे तो फिर क्या हुआ, पाँच सौ क्या हजार हार जाते तो क्या था। हर साल जीतते हैं, एक साल हार ही गये तो क्या हुआ ?

बद्रीनाथ—तो आप इतना बिगड़ते क्यों हैं ?

चन्द्रकिशोर—आप कई बार कह चुके—पाँच सौ हारे थे, पाँच सौ हारे थे, इसलिये मुझे कहना पड़ा। जो होना था हो गया, उसका जिक्र क्या! पांच सौ भी कोई लम्बी रक़म है ?

बद्रीनाथ—तुम बड़े आदमी हो तुम्हारे लिए पांच सौ कुछ नहीं, हम साधारण स्थिति के आदमियों के लिए तो पाँच सौ बहुत हैं।

नवागन्तुक—भाई चन्द्रकिशोर तुम जुआ खेलते हो यह बुरा करते हो। जुआ मत खेला करो।

चन्द्रकिशोर—अजी साल भर में एक-दो दिन जुआ खेल लेने में क्या हानि है। हम लोगों का त्योहार है इसमें खेलना बुरा नहीं है।

नवागन्तुक—यह ठीक है कि उससे अभी तुम्हें अधिक हानि नहीं पहुंची है; परन्तु ऐसा अवसर आ सकता है जब कि अधिक

हानि भी हो सकती है ?

चन्द्रकिशोर—अजी राम भजो मैं इस ढङ्ग से खेलता हूं कि ऐसा अवसर कभी आ ही नहीं सकता।

नवागन्तुक—मैं इसका क़ायल नहीं हूँ। जुआ किसी के वश का नहीं है।

चन्द्रकिशोर—मैं तो कभी हारता ही नहीं।

बदरीनाथ बोल उठे—यार कहने से तुम बिगड़ने लगते हो, परन्तु मुझे पुनः कहना पड़ रहा है कि पार साल तुम पाँच सौ हारे थे।

चन्द्रकिशोर अप्रसन्नता सूचक मुख बनाकर बोले—वह एक संयोग था।

नवागन्तुक—वह संयोग फिर आ सकता है।

चन्द्रकिशोर—हाँ आ सकता है, पर इतनी जल्दी नहीं, इस साल तो मैं हार नहीं सकता।

नवागन्तुक—तो इससे मालूम होता है कि तुम जीतने की कोई विशेष युक्ति जानते हो।

चन्द्रकिशोर—जुए में कोई युक्ति काम नहीं देती। दूसरों के भी तो आँख-कान हैं। अपना पैसा कोई सहज में नहीं दे देता। यदि जीतने की युक्ति जानता होता तो पार साल पाँच सौ हार कैसे जाता।

नवागन्तुक—तब फिर यह कैसे कहते हो कि इस वर्ष जीतोगे।

चन्द्रकिशोर—यह तो मैंने नहीं कहा कि जीतूंगा। मैंने केवल यह कहा है कि हारूँगा नहीं।

बदरीनाथ—यह बात तो कोई जोर देकर नहीं कह सकता।

चन्द्रकिशोर—मैं तो कह रहा हूं। अजी जनाब खेलने खेलने में भी भेद है। पारसाल तो मैं अपनी बेवकूफी से हार गया था।

नवागन्तुक—वह कौनसी बेवकूफी थी ?

चन्द्रकिशोर हँसकर बोले—आप तो क्रमशः सब पूछ लेते हैं। मैं अपनी मूर्खता स्वयम् बताऊँ ? यह अच्छा मजाक है।

बद्रीनाथ—वही बेवकूफी इस वर्ष भी हो सकती है।

चन्द्रकिशोर—कदापि नहीं।

नवागन्तुक—और जो हो गई ?

चन्द्रकिशोर—कैसे होगी ? मैं करूँगा तब होगी।

नवागन्तुक—अच्छा यही सही। मैं कभी जुए के पास भी नहीं फटकता; परन्तु इस वर्ष में भी जुआ खेलूँगा।

चन्द्रकिशोर नेत्र विस्फारित करके बोले—क्या कहा ? जुआ खेलोगे।

नवागन्तुक—हाँ खेलूँगा। और तुम्हारे साथ खेलूंगा।

चन्द्रकिशोर—बड़ी प्रसन्नता की बात है। परन्तु आप तो सदैव मुझे उपदेश दिया करते हैं आज यह उल्टी बयार क्यों बहने लगी।

नवागन्तुक—उपदेशों का कुछ प्रभाव पड़ता दिखाई नहीं पड़ता, इसलिए········?

चन्द्रकिशोर—इसलिये खेलना आरम्भ करोगे !

नवागन्तुक—हाँ बात तो ऐसी ही है। जब मैं तुमको अपने जैसा नहीं बना सका तो मैं ही तुम्हारे जैसा बन जाऊँ—मित्रता ऐसी ही दशा में निभ सकती है।

चन्द्रकिशोर—तब तो मेरी विजय हुई।

नवागन्तुक महाशय मुस्कराकर बोले—हाँ अभी तक तो ऐसी ही बात है।

चन्द्रकिशोर—अच्छा तो कितने रुपयों से खेलोगे।

नवागन्तुक—जितने से तुम्हारी इच्छा हो।

चन्द्रकिशोर—अच्छी बात है देखा जायगा।

नवागन्तुक—परन्तु एक दाँव तो तुम्हें अभी बदना पड़ेगा।

चन्द्रकिशोर—क्यों ?

नवागन्तुक—तुम कहते हो कि इस वर्ष तुम नहीं हारोगे।

चन्द्रकिशोर—हाँ कहता तो हूँ।

नवागन्तुक—यदि हार गये तो क्या करोगे ?

चन्द्रकिशोर—हार गये तो सदा के लिए खेलना छोड़ दूंगा। बस अब तो आपको संतोष हुआ।

नवागन्तुक—यह तो बहुधा कहा करते हो, सभी जुआरी ऐसी बातें कहते हैं।

चन्द्रकिशोर—तो क्या बाण्ड लिखवाइयेगा।

नवागन्तुक—नहीं, शर्त बदो।

चन्द्रकिशोर—यदि आप खेलने को कहें तो ऐसा भी कर सकता हूँ।

नवागन्तुक—स्वीकार है। मैं खेलूंगा तो इसी शर्त पर खेलूंगा। कि यदि तुम इस वर्ष हार गये तो फिर कभी जुआ न खेलना।

चन्द्रकिशोर—यह तो बड़ी शर्त है।

नवागन्तुक—मुझे खिलाना सरल नहीं है।

चन्द्रकिशोर कुछ क्षणों तक सोच कर बोले—अच्छा स्वीकार है आप खेलिये तो किसी तरह !

नवागन्तुक—अच्छा तो मारो हाथ पर हाथ ! बदरीनाथ तुम साक्षी हो।

चन्द्रकिशोर ने नवागन्तुक के हाथ मार कर कहा—लीजिये अब तो संतोष है।

नवागन्तुक—हाँ सन्तोष है।

(३)

ठीक दीपमालिका के दिन शाम को बदरीनाथ चन्द्रकिशोर

से मिले और बोले-कहिये, आज रात को खेल होगा न ?

चन्द्रकिशोर—हाँ होगा और अवश्य होगा।

बदरीनाथ—पण्डित कामताप्रसाद भी तैयार बैठे हैं। उन्होंने आप को अपने घर पर ही बुलाया है।

चन्द्रकिशोर—अपने घर पर बुलाया है, यहाँ क्यों नहीं आजाते।

बदरीनाथ—बात यह है कि उनके घर पर उनके दो-चार इष्ट-मित्र भी आवेंगे।

चन्द्रकिशोर—वे यहां भी आ सकते हैं।

बदरीनाथ—उनका यहां आना ठीक नहीं।

चन्द्रकिशोर—क्यों ?

बदरीनाथ—वे लोग अपरिचित स्थान में खेलना उचित नहीं समझते।

चन्द्रकिशोर—यह बुरी रही, मैंने तो यहीं सब प्रबन्ध किया था।

बदरीनाथ—तो क्या हर्ज है वहीं चले चलियेगा बात एक ही है, आप को खेलने से मतलब !

चन्द्रकिशोर—उन्हें यहीं लाते तो अच्छा रहता।

बदरीनाथ—अधिक हठ कीजियेगा तो वह कदाचित खेलें ही नहीं। आप ही ऐसे हैं जो इतने बड़े घाघ को अपने रङ्ग पर ले आये। उन्हें खिलाना है तो जैसा वह कहें चुप-चाप वैसा ही कीजिये।

चन्द्रकिशोर—कहते तो ठीक हो। अच्छा तुम उनसे कुछ मत कहना। मैं वहीं आजाऊँगा। भला इस वर्ष आरम्भ तो करें फिर तो उन्हें स्वयम् चस्का लग जायगा।

बदरीनाथ—जुआ चीज ही ऐसी है, जहाँ एक बार आनन्द आया कि फिर छोड़ने को जी नहीं चाहता। अच्छा तो मैं

चलता हूँ। यही कहने के लिए आया था। लक्ष्मी-पूजन करके वहीं आजाइयेगा।

चन्द्रकिशोर—आ जाऊँगा।

रात के लगभग १० बजे चन्द्रकिशोर भोजन इत्यादि करके और जेब में पाँच सौ के नोट डालकर कामताप्रसाद के घर पहुँचे। कामताप्रसाद उनकी प्रतीक्षा ही कर रहे थे। बदरीनाथ तथा तीन अन्य सज्जन जो चन्द्रशेखर के लिये अपरिचित थे, चन्द्रकिशोर के पहुंचते ही सब लोग ढङ्ग से बैठे और 'सोलही' भवानी बीच में रखी गई।

कामताप्रसाद चन्द्रकिशोर से बोले भाई यह मेरे एक मित्र हैं, इनका नाम शिवराजसिंह है। कौड़ी गिनने में इन्हें कमाल हासिल है। इधर कौड़ी हाथ से छूटी नहीं कि यह तुरन्त बता देते हैं कि कितनी चित हैं।

चन्द्रकिशोर हाथ में कौड़ियाँ लेकर बोले--गिनता तो मैं भी बड़ी जल्दी हूँ, पर इतना अभ्यास नहीं कि भूमि पर गिरते ही बता दूँ। अच्छा तो आरम्भ कीजिये। मैं तो जो सदैव फेंकता हूँ वही फेकूँगा।

बदरीनाथ—अच्छा तो आप ही शुरू किजिए। मैं सात पर खेलता हूँ।

सबने दाँव लगाये। चन्द्रकिशोर ने कौड़ी फेंकी। कौड़ियों के भूमि पर गिरते ही शिवराजसिंह ने उन्हें समेट लिया और बोले-नौ चित आई।

चन्द्रकिशोर को बड़ा आश्चर्य हुआ कि इतनी जल्दी इन्होंने कैसे गिन लीं। परन्तु दाँव उन्हीं का आया था, इसलिए कुछ बोले नहीं। इस दाँव में चन्द्रकिशोर ने पच्चीस रुपये के लगभग जीते।

कामताप्रसाद बोले—देखा आपने कितनी जल्दी कौड़ी

गिन लीं।

चन्द्रकिशोर—वाक़ई कमाल है।

चन्द्रकिशोर ने पुनः कौड़ी फेंकी। शिवराजसिंह ने पुनः भूमि पर गिरते ही कौड़ी समेट लीं और चन्द्रकिशोर से बोले आपने फिर जीत लिया। नौ चित पड़ी थीं।

चन्द्रकिशोर दाँव पर के रुपये समेटते हुए बोले-आपको बड़ा अभ्यास है। मैं तो दोनों बेर नहीं देख पाया।

इसी प्रकार चन्द्रकिशोर ने लगातार चार दांव जीते। चार बेर में उन्होंने सौ रुपये के लगभग जीत लिये। पाँचवीं बार कौड़ी फेंकने के पूर्व चन्द्रकिशोर—बोले जरा लम्बा दाँव लगाओ। क्या दस-दस पाँच-पाँच लगाते हो।

कामताप्रसाद ने यह सुनकर एक दम पचास रुपये लगा दिये। उनकी देखा-देखी अन्य लोगों ने भी उसी परिमाण में लगा दिये।

चन्द्रकिशोर ने कौड़ी फेंकी।

शिवराजसिंह ने पुनः उसी प्रकार समेट लीं और बोले—इस बार छः आई।

छः के दाँव पर ही कामताप्रसाद तथा दो अन्य लोगों ने लगाये थे। अतएव वह जीत गये। चन्द्रकिशोर इस दाँव में सवा सौ के लगभग हारे।

इसके पश्चात लगातार तीन बार पुनः चन्द्रकिशोर का दाँव आया और इनमें उन्होंने फिर अपने हारे हुए रुपये वापिस ले लिये।

रात के बारह बजे तक यही दशा रही। चन्द्रकिशोर ही जीतते रहे। परन्तु जितना वह तीन चार बार में जीतते थे उतना एक ही दाँव में निकल जाता था।

यह देखकर चन्द्रकिशोर ने लम्बा दाँव लगाना आरम्भ

किया। इसका परिणाम यह हुआ कि रात के दो बजे तक चन्द्रकिशोर अपने पास के पाँच सौ हार गये।

हार जाने पर वह बोले—अब तो मेरे पास कुछ रहा नहीं।

कामताप्रसाद बोले—तो इससे क्या हुआ। जितना रुपया चाहो हम से ले लो।

चन्द्रकिशोर की तुष्टि हुई नहीं थी। हार जाने के कारण उन पर जुआ पूर्ण रूप से सवार हो गया था। उन्हें अपने हारे हुए रुपये लौटाने की धुन थी। अतएव वह राजी हो गये। उन्होंने कामताप्रसाद से दो सौ रुपये उधार लिये।

इस बार उन्होंने स्वयं ही कामताप्रसाद से कहा—भाई दो सौ और दे दो। आज तो बहुत हार गये।

कामताप्रसाद ने दो सौ पुनः दे दिये।

प्रातःकाल होते होते ये दो सौ भी खिसक गये। इस प्रकार चन्द्रकिशोर कुल नौ सौ रुपये की हार में रहे।

प्रातःकाल हो गया था अतएव सबकी राय हुई कि अब खेल समाप्त होना चाहिये।

चन्द्रकिशोर चलते समय शुष्क तथा म्लान मुख से बोले—दोपहर को खेलोगे न।

कामताप्रसाद बड़ी लापरवाही से बोले—अगर आ जाओगे तो खेल लेंगे।

चन्द्रकिशोर—मैं तो अवश्य आऊँगा।

कामताप्रसाद अन्य लोगों से बोले—तो आप लोग भी आ जाइयेगा।

चन्द्रकिशोर को भला चैन कहाँ। वह भोजन इत्यादि करके ग्यारह बजे ही कामताप्रसाद के मकान पर पहुँच गये। बारह बजते बजते अन्य लोग भी आ गये और खेल प्रारम्भ हुआ। शाम तक खेल होता रहा। चन्द्रकिशोर बीच में दो तीन सौ रुपये

जात गये थे, परन्तु सन्ध्या होते होते यह सब हार गये और पास के चार सौ भी हार गए। इस प्रकार कुल तेरह सौ रुपये हारे।

लोगों ने कहा—अब शाम हो गई है अब समाप्त करो।

चन्द्रकिशोर को बड़ी निराशा हुई। उन्होंने कहा—तो रात को बैठोगे हो ?

कामताप्रसाद—अरे भाई तुम आदमी हो या कौन हो? कल रात भर नहीं सोये, दिन को भी नहीं सोये, अब आज रात को तो सोने दो।

चन्द्रकिशोर—अरे यार आखिरी रात है आज और खेल लो। मेरा तो अभी जी नहीं भरा। तुम तो जीते हो इससे तुम्हें क्या चाहे खेलो चाहे न खेलो। मेरे जी से पूछो-तेरह सौ गँवाये बैठा हूँ। मेरे तो तलुवों से लगी है।

कामताप्रसाद ने अन्य लोगों की ओर देखकर पूछा—क्यों साहब आप लोगों की क्या राय है।

एक स्वर से सब ने कहा—अब तो समाप्त कीजिये। ऐसा ही है तो रात में बारह बजे तक खेल लेंगे।

चन्द्रकिशोर प्रसन्न होकर बोले—यह बात है। बस यही तय रहा। आठ बजे से बारह बजे तक।

कामताप्रसाद—अच्छा ऐसा ही सही। परन्तु बारह बजे के पश्चात् मैं कदापि न खेलूंगा।

चन्द्रकिशोर—अच्छी बात है न खेलना। ईश्वर ने चाहा तो बारह बजे तक सब लौट आवेंगे।

रात को आठ बजे के पूर्व ही चन्द्रकिशोर कामताप्रसाद के मकान पर पहुंच गये। थोड़ी ही देर में अन्य लोग भी आ गये और खेल आरम्भ हुआ।

बारह बजे तक चन्द्रकिशोर तीन सौ और हार गये। इस

प्रकार कुल सोलह सौ की हार रही।

बारह बज जाने पर कामताप्रसाद ने कहा—बस बन्द करो, नींद के मारे आंखें झुकी पड़ती हैं।

चन्द्रकिशोर के मुख पर हवाइयां उड़ रही थीं। मुंह शुष्क मलिन हो रहा था। वह भर्राए हुए कण्ठ स्वर से बोले—अफसोस कुछ आनन्द न आया। और दिलकी दिल ही में रही।

कामताप्रसाद बोले—अपना वचन याद है? अब तो आज से जुआ न खेलोगे?

चन्द्रकिशोर—यार इस समय बोलो नहीं, जले पर नमक छिड़कते हो। यह रुपये तो आज से लेकर पारसाल तक वापिस ही करूँगा।

कामताप्रसाद—यें तो फिर खेलोगे। वचन का कुछ ध्यान नहीं।

चन्द्रकिशोर—वचन कैसा, वह मजाक था।

कामताप्रसाद—हाथ पर हाथ मारा था, मजाक नहीं था, बद्रीनाथ साक्षी है।

चन्द्रकिशोर—खैर देखा जायगा।

कामताप्रसाद— तब तो तुम पूरे जुआरी निकले। वह जो कहा करते हैं कि "चोर, लबार, जुआरी; इनसे गंगा हारी।" सो वह ठीक ही निकला। तुम्हें अपने वचन का भी कुछ विचार नहीं।

चन्द्रकिशोर ने निर्लज्जता पूर्वक मुस्कराकर कहा—सोलह सौ की हार में हूँ यह याद रखिये।

कामताप्रसाद का मुख तमतमा उठा। उन्होंने कहा—तुम रुपये के गुलाम हो, तुम्हें अपने रुपयों का इतना मोह है, वचन का ख़याल बिल्कुल नहीं। अच्छा एक दांव और खेलो—खाली मैं और तुम रहूँ। यदि यह दाँव तुम जीते तो मैं तुम्हारे सोलह

सौ लौटा दूंगा, परन्तु यदि तुम हार गये तो तुम्हें आज से जुआ छोड़ना पड़ेगा।

चन्द्रकिशोर बोले—स्वीकार है।

कामताप्रसाद—तुम्हारी बात का विश्वास कैसे हो। तुम्हारी मौखिक बात तो अब मानी नहीं जायगी।

चन्द्रकिशोर बोले—जिस प्रकार विश्वास हो वह करो।

कामताप्रसाद—अच्छा गंगा जल का लोटा हाथ पर रख कर कसम खाओ।

चन्द्रकिशोर—इतना जलील करोगे ?

कामताप्रसाद—जिनकी जबान का कोई ठीक नहीं उनके साथ ऐसा ही व्यवहार किया जाता है।

चन्द्रकिशोर—झेंप कर बोले—अच्छा भाई जैसा कहोगे करना पड़ेगा।

गङ्गाजल का लोटा मँगाया गया। चन्द्रकिशोर ने लोटा हाथ पर रख कर कामताप्रसाद के आदेशानुसार कसम खाई। इसके पश्चात् कामताप्रसाद ने कहा—अच्छा फेंको कौड़ी। और देखो, कौड़ी कोई समेटना मत आखिरी दाँव है। खूब देख भाल कर निर्णय होगा। आखिरी हाथ ईमानदारी का होना चाहिए।

चन्द्रकिशोर—अच्छा तो अभी तक क्या कोई बेईमानी कर रहा था।

यह कहते हुए चन्द्रकिशोर ने कौड़ी फेंकी। कौड़ी फेंकने के पश्चात् चन्द्रकिशोर ने उन्हें गिना तो छः चित्त पड़ी थीं। यह देखते ही वह काठ हो गये।

× × × ×

दूसरे दिवस चन्द्रकिशोर जब दिन को दस बजे के लगभग सोकर उठे तो उन्होंने देखा कि उनकी पत्नी उनके पलङ्ग के पास

खड़ी एक पत्र पढ़ कर अपने ही आप मुस्करा रही है।

चन्द्रकिशोर ने आँखें मलते हुए कहा—किसका पत्र है ?

उनकी पत्नी ने पत्र उनकी ओर फेंककर कहा—पढ़ो।

चन्द्रकिशोर ने पत्र पढ़ा। लिखा था—

प्यारी बहिनजी;

ईश्वर ने तुम्हारा मनोरथ पूरा किया। कल रातमें हमारे घर में तुम्हारे बाबू साहब हाथ पर गङ्गा जल का लोटा लेकर यह क़सम खा गये हैं कि अब कभी जुआ न खेलेंगे। इस पत्र के साथ १२००) रुपये के नोट, जो बाबू साहब हमारे घर पर हारे थे, लौटाये जाते हैं। बाबू जी ने इतने रुपये कैसे हारे इसका ब्योरा मिलने पर बताऊँगी।

तुम्हारी प्यारी

स्नेहलता

चन्द्रकिशोर ने इस पत्र को तीन बार पढ़ा। उसी समय उनकी पत्नी भी आगईं और बोली पढ़ लिया ?

चन्द्रकिशोर—हाँ पढ़ लिया। अब मेरी समझ में आ गया कि मैं इतना क्यों हार गया।

पत्नी—कैसे हारे मुझे भी बता दो।

चन्द्रकिशोर—कामताप्रसाद ने बेईमानी की ! बड़ा धूर्त निकला।

पत्नी—बेईमानी कैसी की।

चन्द्रकिशोर—एक उनके मित्र थे शिवराजसिंह, वह कौड़ी तुरन्त समेट लेते थे, मैं गिन भी न पाता था। जो वह कह देते थे वह मान लेता था। अतएव जब उन्होंने चाहा तब जिता दिया और जब चाहा हरा दिया। मैं स्वयम् तो कुछ देखने न पाता था जो कह देते थे वही मुझे मानना पड़ता था !

पत्नी—तो तुमने उन्हें ऐसा करने क्यों दिया।

चन्द्रकिशोर—आरम्भ में धूर्तों ने मुझे खूब जिताया इसलिए मुझे उनकी बात पर विश्वास हो गया। सब मिले हुए थे। राम राम अच्छा उल्लू बनाया। इसीलिए अन्त में कामताप्रसाद ने कहा था कि—आखिरी दाँव ईमानदारी का होना चाहिए। उस समय मैं इस बात का मर्म नहीं समझा था। परन्तु जब उसने रुपये लौटा दिये तब फिर उसने इतनी बेईमानी क्यों की? यह मेरी समझ में नहीं आता।

पत्नी ने कहा—यह उन्होंने मेरी प्रार्थना पर किया। यह कहकर पत्नी ने सब ब्योरा आदि से अन्त तक सुना दिया।

सब सुन चुकने पर चन्द्रकिशोर बोले—अच्छा तो यह काँटे तुम्हीं ने बोये। तभी कामताप्रसाद जुआ खेलने पर राजी हो गये थे। मुझे आश्चर्य था कि जो व्यक्ति कभी जुआ नहीं खेलता वह कैसे जुआ खेलने के लिये प्रस्तुत हो गया। उस समय मैंने समझा था कि मेरे सङ्गति का प्रभाव पड़ा। बड़ी मूर्खता हुई।

पत्नी—अब तो जुआ न खेलोगे—क़सम खा चुके हो यह याद रखना!

चन्द्रकिशोर—क़सम न भी खाई होती तब भी मैं कभी जुआ न खेलता। जिस खेल में इतना उल्लू बना, उस खेल को फिर खेलूंगा राम-राम अब तो मुझे जुए के नाम से घृणा हो गई।

पत्नी—तो बस मेरी सच्ची दीपमालिका आज ही है। आज मैं घी के दीपकों से घर भर में रोशनी करूँगी।

चन्द्रकिशोर—अरे मेरा सच्चा लक्ष्मी-पूजन भी आज ही होगा। आज मैं गृह-लक्ष्मी का पूजन करके अपने पिछले दुष्कर्मों का प्रायश्चित्त करूँगा।

———

हिन्दुस्तानी

खाँ साहब को रंग में शराबोर देखकर उनका नौकर गफ़ूर बोला--'हुज़ूर यह रंग कैसा?'

खाँ साहब ने उत्तर दिया—'भाई क्या कहूँ, किशोरीलाल के यहाँ बैठा हुआ था, वहीं एक साहब ने धोखे से मुझ पर डाल दिया।'

गफ़ूर—'कौन मरदूद था? खुदा की क़सम अगर बाबू किशोरीलाल के घर की बात न होती तो अभी जाके टाँगें चीर डालता मरदूद की—वह भी क्या याद करता कि किसी के साथ होली खेली थी।'

खाँ साहब मुस्करा कर बोले—अरे भाई उन्हें यह मालूम होता मैं मुसलमान हूँ तो वह कभी ऐसी हिम्मत न करते। किशोरी लाल ने उन्हें बहुत क़ायल माकूल किया। वह बेचारे भी

बड़े शर्मिंदा हुए, माफ़ी बाफ़ी माँगने लगे ।

ग़फ़ूर—तो हुज़ूर ग़ुस्ल (स्नान) करके कपड़े बदल डालें ।

'हाँ ग़ुस्ल कर डालूंगा' यह कहते हुए खाँ साहब घर के भीतर चले गये। घर में पहुंचते ही पहले पत्नी से भेंट हुई वह खाँ साहब को इस रंग में देख कर झुंझला कर बोली—ऊई ! आज यह क्या सूरत बनाई है ? हिन्दुओं के साथ बैठ कर होली भी खेलने लगे ?

खाँ साहब—मआज़ अल्लाह ! तुम भी क्या बातें करती हो !

खाँ साहब की पत्नी ने कहा—तो आख़िर यह सूरत कैसे बनी ?

खाँ साहब— बाबू किशोरी लाल के यहाँ बैठा था—एक साहब ने औरों पर रंग छोड़ा, धोके से मुझ पर भी डाल दिया। लोग हाँ हाँ करते ही रहे, मगर उन्होंने कुछ ख़याल न किया। जब उन्हें मालूम हुआ कि मैं मुसलमान हूँ तो बेचारे बहुत शर्माये ।

पत्नी—तो तुम्हें आज कल ऐसी जगह जाने ही की क्या ज़रूरत थी ? होली के दिनों में तो हिन्दुओं पर शैतान सवार रहता है।

खाँ साहब—शैतान सवार रहता है गंवारों पर, यह तो एक इत्तफ़ाक़िया बात थी।

पत्नी—किशोरी लाल के घर में मुझे इन दिनों कई बार बुलाया मगर मैं इसी डर से नहीं गई। वह बेचारी तो हमारी मजहबी (धार्मिक) बातें जानती हैं; मगर उनके यहाँ इधर उधर की मस्तानियाँ जमा होती हैं, वे इतना ऊधम मचाती हैं कि तौबा ! अपने आगे किसी की सुनती ही नहीं।

खाँ साहब—उनका तो तिहवार है उनके यहां तो रँग खेलना ज़रूरी बात है।

पत्नी—तो उनके यहाँ हुआ करे, हमारे यहाँ तो नहीं है। ख़ैर, जो हुआ सो हुआ, अब गुस्ल कर डालो, कपड़े तो बर्बाद हो ही गये—यह रंग भला अब क्या छूटेगा?

खाँ साहब—'कच्चा होगा तो छूट जायगा।'

यह कह कर खां साहब अपने कमरे में चले गये। खां साहब की सज्जनता को सब मानते थे। उनके सब से मिल-जुल कर रहने के स्वभाव ने क्या हिन्दू और क्या मुसलमान सब को उनका शुभ-चिन्तक बना रक्खा था। विशेषत: बाबू किशोरीलाल तो खां साहब के व्यवहार से इतने प्रसन्न थे कि वह खां साहब को अपना सच्चा मित्र समझते थे। वह प्राय: अपने मित्रों से कहा करते थे कि—'यदि आज तक मुझे कोई ऐसा व्यक्ति मिला है जिसमें धार्मिक द्वेष छू नहीं गया तो वह हमारे मुहल्ले के अब्बासअली खां हैं।' यह असंभव था कि कोई खां साहब को बुरा कहे और किशोरीलाल चुपचाप सुना करें। प्राय: ऐसा होता था कि खाँ साहब के लिये किशोरीलाल उनसे लड़ पड़ते थे जिनकी राय को वह सदैव शिरोधार्य करने के लिये प्रस्तुत रहते थे। जब खाँ साहब को उनके इस प्रकार लड़ने की बात ज्ञात होती थी तो कुछ मृदुहास्य-मिश्रित अप्रसन्नता के साथ कहा करते 'भाई किशोरीलाल! तुम्हारी यह आदत मुझे पसंद नही। तुम बिला वजह मेरे पीछे लड़ते फिरते हो। आखिर तुम्हें इस लड़ाई झगड़े से मिलता क्या है? ख़्वाह—मख़्वाह किसी से दुश्मनी पैदा करना कौन सी अक्लमंदी है?'

किशोरीलाल इसके उत्तर में उत्तेजित होकर कहते थे—खाँ साहब! आपकी कोई शख़्स बुराई करे और मैं ख़ामोश सुना करूं? मुझसे तो यह हरगिज नहीं हो सकता कि लोग आपकी जात (व्यक्तित्व) पर हमला करें और मैं चुप रहूं।

खाँ साहब हँस कर कहते—भाई तुम्हारा लड़कपन नहीं जाता यह अफ़सोस की बात है। अरे क्यों किसी के हमला करने से होता ही क्या है? मैं तो जैसा हूं खुदा के फ़ज्लो करम से वैसा ही रहूँगा। लोग अपना दिल खुश करते हैं-करने दो। अगर मेरी बुराई करने से किसी का दिल खुश होता है, किसी को नफा पहुँचता हो तो क्या हर्ज है? मगर तुम्हें मैं सलाह नहीं देता कि तुम मेरे लिये तमाम जमाने से दुश्मनी मोल लेते फिरो।

इस पर किशोरीलाल निरुत्तर होकर कह दिया करते थे—आपका फ़र्माना बजा व दुरुस्त है मगर करूँ क्या मेरी तबियत नहीं मानती।

किशोरीलाल का मकान खाँ साहब के निकट ही था, अतएव कभी किशोरीलाल खाँ साहब के यहाँ और कभी खाँ साहब किशोरीलाल के पास जा बैठते थे। दोनों घरों की स्त्रियों में परस्पर मेल था और घर में आना जाना भी रहता था। होली दिवाली पर किशोरीलाल खाँ साहब के यहाँ मिठाई भेजा करते थे और ईद-बक़रीद पर खाँ साहब किशोरीलाल के यहां।

खाँ साहब के एक पुत्र थे जिनका नाम बशीर अहमद खाँ था। वह अलीगढ़ कॉलेज में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। इस वर्ष फोर्थ-इअर की परीक्षा देकर घर आये हुए थे। उन्हें खाँ साहब का हिन्दुओं के साथ इस प्रकार मिलना-जुलना बड़ा बुरा मालूम पड़ता था। उन्होंने खाँ साहब से इस बात की शिकायत भी की, किन्तु खाँ साहब सदैव उनकी बात को हँसकर टाल दिया करते थे।

(२)

बशीर अहमद खाँ अपने एक मित्र से मिलने गये हुए थे। वहाँ से वह उस समय लौटे जब कि खाँ साहब स्नान कर रहे

थे। उनके द्वार पर पैर रखते ही ग़फ़ूर ने कहा,—छोटे हुज़ूर, आज तो बड़े हुज़ूर ने गज़ब किया—होली खेल कर आये हैं।

बशीर अहमद चौंक कर बोले——क्या कहा ? होली खेल कर ?

ग़फ़ूर—हुज़ूर खुद जाकर देख लीजिये। ग़लत निकले तो चोर की सजा वह मेरी सजा। उस वक्त आप होते तो तमाशा देखते।

बशीर अहमद—मुझे ऐसी हरकतें पसंद नहीं मैं मज़हब के मुआमले में बहुत सख्त हूँ।

ग़फ़ूर ने सुअवसर पाकर बशीर अहमद को भड़काने के लिए कहा—ख़ैर जाने दीजिये जो हुआ सो हुआ।

बशीर—मुझे अब्बाजान की समझ पर अफ़सोस आता है।

ग़फ़ूर—तो खुदा के लिए जाते ही न उलझ पड़ियेगा, वरना बड़े हुज़ूर समझ जावेंगे कि ग़फ़ूर ने कच्चा चिट्ठा जड़ दिया। आप और वह तो लड़ भिड़ कर एक हो जावेंगे, मुफ्त में मथ्थे मुझ ग़रीब की जायगी।

बशीर अहमद ने इसका कुछ उत्तर न दिया और क्रोध में भरे हुए अंदर पहुँचे। खाँ साहब स्नान कर के तौलिया से शरीर पोछ रहे थे। बशीर अहमद ने ग़फ़ूर के कारण क्रोध को दबा कर नम्रता पूर्वक पूछा—आज यह बेवक्त ग़ुस्ल कैसा ?

खाँ साहब बशीर अहमद के स्वभाव और उसके विचारों से भली भांति परिचित थे। हृदय कड़ा कर के हँस दिये और केवल इतना कहा—क्या कहें, एक इत्तफ़ाकिया जरूरत पेश आ गई।

बशीर अहमद ने किंचित कर्कशस्वर में कहा—इत्तफ़ाक़ कैसा कुछ मालूम भी तो हो ?

बशीर अहमद की माँ दालान में बैठी पान बना रही थी;

उन्होंने वहीं से कहा—"ऐ तो अब छिपाने से क्या फायदा ? बतला क्यों नहीं देते। तुम तो ऐसे छिपाते हो जैसे क़सदन (स्वेच्छा से) होली खेलकर आये हो।" खाँ साहब कुछ अप्रसन्न होकर बोले तुम्हारी अक़्ल को तो घुन लग गया है। भला मैं क़सदन होली खेलूंगा ? कहते भी शर्म नहीं लगती। लो इस बुढ़ापे में होली खेलूंगा, तौबा तौबा !

बशीरअहमद अपने क्रोध की बाग़ें ढीला कर के बोले—लो यह कहिये आज आपने होली भी खेल डाली।

खाँ साहब घबराकर बोले—बेटा तुम भी इनकी बातों में आ गये। औरतें तो नासमझ होती ही हैं। क्या तुम्हें मुझसे उम्मीद है कि मैं होली खेलूंगा।

बशीर—अब्बाजान क़सूर मुआफ़ हो, आपके मिजाज से यह बात कुछ दूर नहीं है।

खाँ साहब—लाहौलबलाकूअत, क्या कुफ़्र बकते हो ?

बशीर—जब आप ही कुफ़्र के हामी (सहायक) हो रहे हैं तो मैं अगर कुफ़्र बकूँ तो क्या गुनाह है ?

खाँ साहब—भाई पूरी बात भी सुनोगे या अपनी ही कहे जाओगे। किशोरीलाल के यहां मैं बैठा हुआ था। वहां उनके एक दोस्त आये। उन बेचारों को यह न मालूम था कि मैं मुसलमान हूँ—धोके से मुझ पर भी रंग डाल दिया। अब तुम्हीं बताओ इसमें मेरा क्या क़ुसूर है। कुसूर उनका भी नहीं। उन्हें मेरे मुसलमान होने का इल्म (ज्ञान) ही न था।

बशीर—कुसूर सरासर आपका है। आप अपनी वज़ा (वेष) ऐसी क्यों रखते हैं जिससे धोका हो ? अम्मीजान ! उस रोज मेरे दोस्त अहमद मिर्ज़ा आये थे। उन्होंने दबी जबान से कहा था, भाई बशीर बुरा न मानना तुम्हारे वालिद साहब आधे हिन्दू हैं। अल्लाह जानता है उस वक्त मैं शर्म के मारे

अर्क़-अर्क़ (पानी पानी) हो गया। मेरे मुँह से जवाब न निकला और जवाब हो ही क्या सकता था, उनके सामने तो मिसाल मौजूद थी। और एक अहमद मिर्ज़ा ही पर क्या जो सच्चा मुसलमान देखता है वही यह बात कहता है। छोटे चचा (चाचा) भी बारहा (अनेक बार) यही बात कह चुके हैं ? कई बार उनसे और अब्बाजान से इसी बात पर बहस-मुबाहसा भी हो चुका है।

खाँ साहब बोले—तुम्हारे छोटे चचा में तो तास्सुब (धार्मिक द्वेष) कूट-कूट कर भरा है और मुझे तास्सुब से नफ़रत है। मेरा तो उसूल यह है कि हिन्दू मुसलमानों को इस तरह रहना चाहिए गोया दोनों भाई-भाई हैं। रहा मज़हब उसके लिए इतना काफ़ी है कि दोनों अपने-अपने मज़हब पर क़ायम रहें।

बशीर—सुभान अल्लाह ! क्या अच्छा उसूल है।

खाँ साहब—चौकी से उतर आये और अपना कुरता पहनते हुए बोले—अब आज कल जब कि हिन्दु-मुसलिम इत्तहाद (मेल) का सवाल इस ज़ोर शोर से छिड़ा हुआ है और हमारे व हिन्दुओं के बड़े बड़े उल्मा (विद्वान) और लीडर इसके हामी हैं तब तुम इस उसूल को ग़लत नहीं कह सकते।

बशीर—मैं कहता हूँ सब फ़िज़ूल है। हिन्दू मुसलिम यूनिटी का सवाल एक ऐसा सवाल है जो कभी हल नहीं हो सकता। इस्लाम कभी कुफ़्र का शरीक नहीं हो सकता।

खाँ साहब—अगर हम लोगों को हिन्दुस्तान में रह कर आज़ादी हासिल करना है तो ऐसा ज़रूर करना पड़ेगा।

बशीर—मैं पूछता हूँ कि क्या हिन्दू आपकी शिरकत तसलीम करेंगे ? हिन्दू मुसलिम युनिटी के सवाल में सब से ज़्यादा

खलफ़ल हिन्दुओं की जानिब से पैदा की जाती है। जरा गौर तो कीजिये कि हम लोग तो हिन्दुओं के घर का पका हुआ खाना खालें और वह हमारे छुए हुए बर्तन में पानी तक न पियें। अभी उस रोज़ रेल में जिस बर्थ पर मैं बैठा हुआ था उस पर एक हिन्दू भी बैठे हुए थे उन्होंने इटावा के स्टेशन पर पूरियाँ खरीदीं। ऊपर के बर्थ पर मेरी शेरवानी रक्खी थी। उसका एक कोना लटका हुआ था। इत्तफ़ाक शेरवानी का कोना पूरियों के दोनों से छू गया। बस उन्होंने फौरन पूरियां फेंक दीं दूसरी खरीदीं। बखुदा मेरी आँखों में खून उतर आया। मैंने उसी समय यह अहेद (प्रण) कर लिया कि मैं भी कभी किसी हिन्दू की छुई चीज न खाऊंगा। अगर खाऊँगा तो सिर्फ उस हिन्दू की चीज जिसको मेरी छुई हुई चीज खाने से परहेज न होगा। जो लोग हम लोगों से इतनी नफ़रत करते हों भला उनसे हम किस तरह मिल सकते हैं?

बशीरअहमद की माता बोलीं—बेटा यह बात तो तुमने खूब कही। सच कहती हूँ मुझे भी यह बात बड़ी बुरी लगती है। मैं जब किशोरीलाल के यहाँ जाती हूँ और वह कोई चीज देती हैं तो इस तरह जैसे अपने हिसाब किसी मेहतरानी को दे रहीं हों। दूर से। कुछ खिलावेंगी तो अलग बिठा कर। मुझे बड़ी शर्म मालूम होती है; मगर करूँ क्या जब्त करती हूँ। मुई आँखों की मुहब्बत से सहना पड़ता है। सोचती हूँ कि इन लोगों के यहाँ ऐसा ही दस्तूर है, ये बेचारी क्या करें।

बशीर—मेरे कहने का और मतलब क्या है? मैं भी तो यही कहता हूँ। हम लोग अपना क़ायदा क्यों छोड़ें। ताली दोनों हाथों से बजती है।

अब खाँ साहब निरुत्तर हो गये। मनुष्य स्वभाव के अनुसार उन्हें हृदय में यह बात स्वीकार करनी पड़ी। उन्होंने इसकी

सच्चाई को महसूस किया। बोले—तुम्हारे दलायल (दलीलें) ठीक हैं मगर चारा ही क्या है। यह बात तो जमानें सलफ़ (प्राचीन काल) से चली आ रही है। कोई नई बात नहीं। इसे वह लोग कैसे छोड़ सकते हैं ?

बशीर—तो मुआफ़ कीजिए हमारे यहाँ भी जो बात सलफ़ से चली आ रही है, उसे हम भी नहीं छोड़ सकते।

बशीर की माता बोलीं—ऐ वो इस बहस मुबाहिसे से क्या हासिल-मुफ्त की ठाँय ठाँय ! बशीर बेटा जाओ तुम कपड़े बदलो। मुझे इन बातों से नफ़रत है। एक बात को लेकर घंटों रहना। जो हुआ सो हुआ।

बशीर—हाँ जो हुआ सो हुआ लेकिन आयन्दा ख़्याल रहे। यह कह कर बशीर अपने कमरे में चले गये।

(३)

"हुजूर—बाबू किशोरीलाल के यहाँ से मिठाई आई है।" खाँ साहब घर में थे नहीं। बशीर अहमद ग़फ़ूर की बात सुनते ही बाहर निकल आये और ग़फ़ूर से बोले-कौन लाया है ? ग़फ़ूर ने उत्तर दिया-"उनका नौकर दरवाज़े पर खड़ा है। अन्दर से कोई बरतन मगंवा दीजिये तो उसमें ले लूँ। अच्छा अच्छा आप क्यों तकलीफ़ करेंगे मैं ही मामा (दासी) को बुलाये देता हूँ।

यह कह कर ग़फ़ूर जनानी ड्योढ़ी की ओर बढ़ा। बशीर अहमद बोल उठे—रहने दो मामा (भोजन पकाने वाली) को आवाज़ देने की कोई ज़रूरत नहीं-वापिस कर दो।

ग़फ़ूर चकित होकर बोला—वापिस कर दूँ ?

बशीर—हाँ वापिस कर दो।

ग़फ़ूर—क्यों ?

बशीरअहमद—भ्रकुटी चढ़ाकर बोले—जो मैं कहता हूँ

वह करो।

गफ़ूर—गुलाम की क्या मजाल जो आपका हुक्म टाले, मगर बड़े हुजूर सुनेंगे तो बहुत नाराज होंगे।

बशीर—तुम तो मेरे हुक्म की तामील कर रहे हो, जिम्मेदारी तो मुझ पर है।

गफ़ूर—मुझे हुक्म की तामील में कोई उज्र नहीं मगर हुजूर अच्छी तरह इस पर गौर कर लें। बड़े हुजूर की और बाबू किशोरी········।

बशीर—हाँ हाँ यह सब मुझे मालूम है पर कोई परवाह नहीं वापिस कर दो।

ग़फ़ूर—जैसी हुजूर की मर्जी।

यह कह कर चला गया। थोड़ी देर पश्चात लौटकर बोला वापिस कर दी, मगर गुस्ताखी मुआफ़ हजूर ने गजब किया बाबू किशोरीलाल को बड़ा सदमा होगा।

बशीर—होने दो, ये लोग इसी क़ाबिल हैं। हमारा और उनका मेल क्या?

ग़फ़ूर—यह बात तो हुजूर एक बार फिर कहें-रात और दिन का भी कहीं मेल हुआ है, स्याही और सफ़ेदी भी कहीं एक हो सकती हैं?

बशीर—अब्बाजान हिन्दुओं से शीरो शकर (सम्मिलित) होना चाहते हैं, मगर मैं यह कहता हूँ कि यह बात गैर मुमकिन है।

ग़फ़ूर—क्या बात कही है हुजूर ने! वल्लाह क़सम है दादी जान की, यही बात कई बार मेरे दिल में आई मगर हुजूर जबान पर लाने की हिम्मत न पड़ी। काहे से कि हुजूर मेरी बिसात क्या, टके का आदमी। पढ़ा लिखा भी कुछ नहीं हुजूर की जूतियों के सदके में आध सेर आटे से लगा हुआ

हूं। ख़ुदा बख़्शे अब्बाजान से बहुतेरा चाहा लाख लाख कोशिश की मगर हमें न पढ़ना था, न पढ़े। घर से बस्ता दबाया स्कूल के लिए चले और परेड़ पर आकर डट गये। दिन भर गुल्ली डण्डा खेला, पतंगें उड़ाईं। शाम हुई और घर जा पहुँचे। सो हुजूर जैसा किया वैसा भुगत रहे हैं। मगर ख़ुदा का लाख लाख शुक्र है कि हुजूर की जूतियों के तुफ़ैल में रोटी कपड़ा मिल जाता है। मगर देखिये आज बड़े हुजूर का और आपकी कैसी निपटे। क़सम क़ुरान की सुनते ही आग बबूला हो जायंगे।

बशीर—देखा जायगा।

यह कह कर बशीर अहमद मकान के अन्दर चले गए। दो घण्टे पश्चात् जब खाँ साहब लौटे तब उन्हें ज्ञान हुआ कि किशोरीलाल के यहाँ से मिठाई आई थी परन्तु, बशीर अहमद ने लौटा दी। सुनते ही खाँ साहब का मुख रक्त वर्ण हो गया। बोले किसके हुक्म से वापिस की गई।

बशीर अहमद सामने आकर बोला—यह गुस्ताखी मुझसे हुई।

खाँ साहब—तुमने ऐसा क्यों किया?

बशीर—इसलिये कि मैं उनसे किसी प्रकार का ताल्लुक नहीं रखना चाहता और आपसे भी ऐसा ही करने की इस्तदुआ (प्रार्थना) करता हूं।

खाँ साहब—तो तुम्हारा मनशा यह है कि मैं इस बुढ़ौती में किसी को मुंह दिखाने के क़ाबिल न रहूँ।

बशीर—हरगिज़ नहीं, ख़ुदा न करे।

खाँ साहब—क्यों नहीं? किशोरीलाल अपने जी में क्या कहेंगे और जो कोई सुनेगा वह क्या कहेगा?

बशीर—ज़माने के कहने की परवा करना फ़िज़ूल है।

अलबत्ता किशोरीलाल की नाखुशी का मैं जिम्मेदार हूँ। जब कुछ कहें तो आप सारा क़सूर मेरे सर पर डाल दीजियेगा—मैं उनसे बात चीत कर लूँगा। अगर इसके बाद भी वह मेरी इस हालत को ना मुनासिब समझें, तो मैं क़सूरवार।

खाँ साहब का क्रोध इस तर्क के सामने, जो अत्यन्त शिष्टता तथा नम्रता पूर्वक उपस्थित किया गया था, व्यर्थ हो गया, उन्होंने सोचा जो होना था वह तो हो ही गया, बशीर भी कोई ना समझ बच्चा नहीं, सुशिक्षित है। मेरी बदनामी न चाहेगा। इसने अवश्य कोई बचत का मार्ग रक्खा होगा।

यह सोचकर खाँ साहब ने अपना बड़प्पन स्थिर रखने के लिए कहा—कुछ भी हो तुम्हारी यह नाशायस्ता हरकत मुझे बहुत नागवार गुज़री और अगर तुम अपनी गुफ्तगू से बाबू किशोरीलाल का दिल साफ़ न कर सके तो मुझे सख्त सदमा होगा।

यह कह कर खाँ साहब कमरे में चले गये। शाम को बाबू किशोरीलाल खाँ साहब के पास दौड़े आये और आते ही कहा—अजी खाँ साहब यह क्या बात है? आपने मिठाई क्यों लौटा दी? यह बात क्या है? मुझसे क्या क़सूर हुआ? मैं तब से एक उलझन में हूँ, कारण समझ में नहीं आता।

खाँ साहब लज्जित होकर बोले—भाई किशोरीलाल व खुदा मैं मकान पर मौजूद न था, मेरी ना मौजूदगी में बशीर यह गुस्ताखी कर बैठा—खुदा जाने क्यों? इसकी जवाब-देही उसी पर है। बैठो अभी उसे बुलाता हूँ (ग़फ़ूर को बुलाकर) ग़फ़ूर जरा बशीर को बुला लेना। क्या कहूँ मुझे भी बड़ा ताज्जुब हुआ, गुस्सा भी बहुत आया, मगर बशीर ने कहा कि वह तुम्हें इसकी वजह समझा देगा, इसीलिये गुस्सा रोके बैठा हूँ। क्या कहूं! बराबर का बेटा है और फिर लिखा पढ़ा उसकी बात भी सुन लेना चाहिए, देखो क्या कहता है।

किशोरीलाल ने कहा—बशीर मुझसे क्यों नाराज़ हो गये?

मैंने तो उनकी.........

किशोरीलाल की बात पूरी होने के पहले ही बशीर अहमद आ गये।

बशीर को देखते ही खाँ साहब बोले—भाई बशीर! किशोरीलाल शिकायत लाये हैं और इनकी शिकायत मेरे सर आँखों पर। लेकिन सारे काँटे तुम्हारे ही बोये हुये हैं।

बशीर अहमद किशोरीलाल से बोले—बिलाशक इसमें अब्बाजान का कोई क़ुसूर नहीं, मैंने अपनी मर्जी से मिठाई वापिस की थी।

किशोरीलाल ने कहा—मगर इसकी वजह?

बशीर—बहुत बड़ी वजह तो यह है कि जब आप हमारे घर की और हमारी छुई हुई चीज नहीं खाते तो हम आपकी छुई हुई चीज क्यों खावें?

किशोरीलाल को ऐसा उत्तर मिलने की आशा स्वप्न में भी नहीं थी कुछ देर तक वह सन्नाटे में बैठे रहे कुछ समझ में नहीं आता था कि क्या जवाब दें।

बशीर—यह कोई दलील नहीं है। मेल मुहब्बत की पहली बात तो यह है कि वक्त पड़ने पर हम आपको और आप हमें अपने हाथ से खिला सकें। जब आप हमारे हाथ का छुआ हुआ पानी भी नहीं पी सकते तो फिर मेल मुहब्बत का क्या जिक्र? हम इस तौहीनी को कभी नहीं सह सकते कि एक तरफ तो आप यह कहते फिरें कि खाँ साहब को हम अपना सगा भाई समझते हैं और दूसरी तरफ यह कि अगर खाँ साहब का कपड़ा आपकी किसी भी चीज से छू जाय तो आप उसे नाली में फेंक दें।

किशोरीलाल—आप तो मजहबी बातों पर आ गये।

बशीर—मजहब को ताक पर रख दीजिये, मुल्की (राजनैतिक) मुआमिलात की नजर से इस पर गौर कीजिए। यह जमाना तरक्की का है। हमको चाहिये कि हम जमाने के साथ

चल कर अपनी हस्ती (अस्तित्व) क़ायम रखने की कोशिश करें और दूसरी क़ौम के सामने मुमताज़ (प्रतिष्ठित) बनें। पुरानी लकीरें पीटने से अब काम नहीं चल सकता। क्या आप बतला सकते हैं कि अगर हमको ब्रिटिश क़ौम की गुलामी से छुटकारा मिल गया तो हिन्दू मुसलमानों के या मुसलमान हिन्दुओं के मातहत होकर रह सकेंगे? मैं तो कहता हूं यह ग़ैर मुमकिन है। इसलिये यह नतीजा निकलता है कि अगर हिन्दुस्तान आज आज़ाद हो तो हिन्दू मुसलमानों में तास्सुब और छुआ छूत के ऐसे झगड़े उठ खड़े होंगे कि हम एक बला से निकल कर दूसरी बला में फँस जायँगे, जो पहली से ज्यादा खतरनाक है।

किशोरीलाल बोले—"आप लोगों पर जो इल्ज़ाम रखते हैं, वही इल्ज़ाम आप पर भी आता है। क्या आप ठण्डे दिल से कह सकते हैं कि आप लोग हमको उसी नज़र से देखते हैं, जिस नज़र से कि एक मुसलमान को देखते हैं? मान लीजिये कि आज मैं आपके साथ बैठकर खालूं तो क्या आपके दिल से यह ख्याल जाता रहेगा कि मैं क़ाफ़िर हूँ? आप गाय की क़ुर्बानी करते हैं, इससे हम लोगों को कितना दुःख होता है। क्या आप हमेशा के लिए छोड़ सकते हैं?

यह तो मज़हबी बात हुई मुल्की बात यह है आप हिन्दुस्तान में पैदा हुए, हिन्दुस्तान के अन्न से पले, हिन्दुस्तान में रहते हैं, लेकिन आपकी मुल्की दिलचस्पी टर्की के साथ रहती है। अगर आज हिन्दुस्तान आज़ाद हो जावे और कल टर्की हिन्दुस्तान पर क़ब्ज़ा जमाने की नीयत से इस पर हमला करे तो क्या आप हिन्दुस्तान के साथ खड़े होकर हिन्दुस्तान को टर्की के पंजे से बचाने की कोशिश करेंगे?" किशोरीलाल के इन प्रश्नों से बशीर अहमद चकराये। उनको ज्ञात हो गया कि किशोरीलाल को भूल से उन्होंने मुलायम चारा समझ रक्खा था। वह कुछ

देर तक चुप रहे तत्पश्चात् बोले—इसमें कोई शक नहीं कि सारा क़सूर आपही लोगों का नहीं कुछ हम लोगों की भी खता है।

किशोरीलाल—अब आप राह पर आये। जनाब सच बात तो यह है कि आप लोगों को उस समय हम लोगों पर इल्जाम रखने का हक़ हासिल होगा जब आप अपने जी से इन बातों का खयाल दूर कर देंगे। किसी हद तक मजहबी इख्तलाफ (धार्मिक भेद भाव) बुरा नहीं है। आप लोगों में भी ७२ फिरक़े हैं और हर एक उनमें से अपने को अच्छा समझता है। हम लोगों में भी सैकड़ों मत हैं, ईसाइयों में भी रोमन-केथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट का झगड़ा है, मगर इनको उनसे कोई नुकसान नहीं पहुँच सकता। सवाल तो यह है कि आप अपने को हिन्दुस्तानी समझें। हिन्दुस्तान के हर एक आदमी को, चाहे वह किसी मजहब का हो, अपना भाई समझें और उसकी जानो माल की हिफाजत के लिये आप जमाने भर के मुक़ाबिले में खड़े हो सकें। उसके हक़ भी उतने ही हों जितने आपके हैं। उसकी आबरू को आप अपनी आबरू समझें। उसके दुख को आप अपना दुख: समझें। जिस दिन आप इन बातों को दिलसे मानने लगेंगे उस दिन हम लोग भी आपके यहाँ खाना अपने लिये फ़ख्र (गौरव) की बात समझेंगे। पर अगर आप सिर्फ यह कहें कि आप हमारे घर का खा लेते हैं, इसलिये हम भी आपके घर का पका हुआ खालें तो जनाब यह बात ग़ैर मुमकिन है। आपका जी चाहे खाइये, आपका जी चाहे न खाइये, हम खुश हमारे ईश्वर खुश। जब आप अपनी चाल नहीं बदलते तो हम क्यों बदलें?

बशीर अहमद बहुत लज्जित हुए—गये थे नमाज बख्शवाने उल्टे रोजे गले पड़े। बड़ी देर तक सिर झुकाये सोचते रहे। इसके पश्चात् सिर उठाकर बोले—अगर मैं अपनी ओर से इन बातों का इतमीनान दिला दूं तो?

किशोरी—"अगर आप मुझे यह विश्वास दिलादें कि आज से आप हिन्दुस्तान तथा हिन्दुस्तानियों को उसी नजर से देखने लगे जिस नजर से कि मैं या कोई भी सच्चा हिन्दुस्तानी देख सकता है तो मैं आपके साथ खाना खाने के लिये तय्यार हूँ।"

"मैं इसके लिये तय्यार हूँ।"

यह कह कर बशीर उठकर अपने कमरे में गये और क़ुरान शरीफ़ की एक प्रति ले आये। क़ुरान शरीफ़ की प्रति किशोरीलाल को दिखा कर बोले—इससे आपको यकीन हो जायगा?

किशोरीलाल—बेशक!

बशीरअहमद ने क़ुरान शरीफ़ की प्रति पर हाथ रख कर कहा—मैं क़ुरान शरीफ़ को गवाह कर के क़सम खाता हूँ कि आज से मैं अपने को हिन्दुस्तानी समझूंगा। हिन्दुस्तानियों को दुनियां की समस्त क़ौमों से, चाहे वह तुर्क हों चाहे अरब, अच्छा समझूँगा और हमेशा उनकी जानोमाल की हिफ़ाजत में दूसरी क़ौमों के मुक़ाबिले खड़े होने के लिये तयार रहूँगा। गाय की कुर्बानी कभी न करूंगा और उन तमाम बातों को दिल से मानूंगा जो एक सच्चे हिन्दुस्तानी के लिए मानना जरूरी हैं कहिये अब आपको यकीन आ गया?

किशोरीलाल—बेशक अब आप दस्तरख्वान बिछवाइये, मैं आपके साथ खाना खाऊँगा।

तुरन्त दस्तरख्वान बिछाया गया। खाँ साहब, बशीरअहमद तथा किशोरीलाल ने एक साथ बैठकर भोजन किया। उस समय उन दोनों में न कोई हिन्दू था न मुसलमान, बरन् तीन हिन्दुस्तानी थे जो अपने हिन्दुस्तानी होने का प्रमाण कार्य रूप में दे रहे थे।

[illegible]